आधीरात

[मौलिक ऐतिहासिक नाटक]

: लेखक :

जनार्दन राय

बनारस
सरस्वती-प्रेस

समर्पण

सेवामें—

श्रीमती अ. सौ. विजियालक्ष्मी प्राणलाल पोटा

मा,

अपनी यह पहली कृति और किसे दूँ ? तुम्हीं ने मुझे जन्म दिया और अपने जीवन की साधना के द्वारा मेरे अंतर को महती प्रेरणाएँ भी दीं। मा, स्वयं तुमने सुख-दुःख के अनुभवोंके उठाने में कसर नहीं रखी। मुझे तुमने अज्ञात ही विद्या दी, संतोष दिया, विवेक दिया और इस रंगभूमि में जीने की एक कला दी।

अतः अपने पतित और क्षुद्र पुत्र की यह तुच्छ पंखुरी स्वीकार करो।

तुम्हारा विनीत,

उदयपुर } **जनार्दन राय**

आधी रात

मुख्य-पात्र

१. महाराणा कुम्भा—मेदपाट के वयोवृद्ध आत्मदर्शी राणा।
२. उदयसिंह (ऊदा)—युवराज, पीछे महाराणा।
३. रायमल—द्वितीय राजकुमार।
४. क्षेत्रसिंह—तृतीय राजकुमार।
५. जेतसिंह—चतुर्थ राजकुमार।
६. गोपालसिंह— पंचम राजकुमार।
७. काँधल—सेनापति।
८. आसकरण—मांडव्यराव।
९. महारावण—नागोर राव।
१०. अमर सिंह—बम्भावदा राव।
११. रावलगोपाल—गिरिपुर नरेश।
१२. रणवीर विक्रम—हम्मीरपुर नरेश।
१३. नरेनसिंह—सिंहपुर नरेश।
१४. क्षेमनृपति—क्षेमकर्ण—सादड़ी राव।
१५. अचल दास—महामात्य।
१६. विमलदान चारण—राज-भाट।
१७. कवि महेश—राजकवि।
१८. पुरोहित—राजपुरोहित।

१९. भवानीशंकर—प्रजा-नेता ।

२०. पाँच सात नागरिक, वाराङ्गनायें, द्वारपाल गंगा का पति। छत्र चम्वँरवाले ।

२१. कापालिक तथा तीन अघोरी ।

२२. कुम्भल देवी, अपूर्व देवी । महाराणा कुम्भा की रानियाँ ।

२३. पीतम कुँवर—ऊदा की राणी ।

२४. जश देवी—जैतसिंह की राणी ।

२५. गंगा—म० ऊदा की दासी ।

२६. छोटा राज कुँवर सूरज—ऊदा का पुत्र ।

प्रथम अंक

दृश्य पहला

[समय, दीपक-वेला, स्थान—घने जंगल में अघोरियों का अड्डा, पर्वत की गुफा]

पहला अघोरी—(दाँत पीस कर)—रात होने आई और अभी तक कोई न लौटा ! आह ! न जाने कब तक प्यासा मरता रहूँगा !

दूसरा अघोरी—(व्यंग से मुलक)—खून योंही थोड़े मिल जाता है ? गरदन काटनी पड़ती है, गरदन—उसके लिए ! कौन काटेगा तेरे लिए रोज नई-नई गरदन ?

पहला अघोरी—(ध्यान-लीन)—क्या फायदा है, इतने चेले इकट्ठे करने से—ओह ! अनुष्ठान कभी का हो चुका ; पर अभी तक रक्त-पान नसीब न हुआ ! क्या प्यासा ही मरता रहूँगा रात भर ?

तीसरा अघोरी—(स्वलीन)—हुम् !......

पहला अघोरी—राह देखते-देखते तंग आ गया ; ओह ! जहन्नुम में चले गये सबके सब, क्या ?

दूसरा अघोरी—ख़ून पीयेंगे साले !

पहला अघोरी—(चिढ़ कर)—तो, तो क्या आज भी बासी ख़ून पीऊँ ? बोल, वे ! हमेशा सूखी हड्डियाँ कुड़का सबर कर लेता हूँ, आज भी कर लूँ ? अनुष्ठान की समाप्ति हुई है कि मखौल है, हरामज़ादे ! बोल ! क्या आज भी चोंच से खुदी हुई बासी मुर्दे की आँखें चबा सन्तोष मान लूँ ? बोलता क्यों नहीं ? हें ! बोल, जवाब दे ! नहीं तो, भैरव के नाम पर अभी तुझे...

तीसरा अघोरी—(ध्यान से जागता हुआ)—'चुप ! हुम् ! चुप !!'

पहला अघोरी—आह ! अभी तक न आए, सूअर ! (दूसरे की ओर देख) हूँ ? बोलता क्यों नहीं—क्या आज भी...

तीसरा अघोरी—(जग कर)—चुप भी रह, चुप ! भैरव के नाम पर—

पहला अघोरी—(आँखें निकाल स-दर्प)—क्यों रहूँ ? बड़ा आया है, चुप करने वाला ! अभी तक—अभी तक कोई न लौटा—

तीसरा अघोरी—(सहसा, आकाश की ओर खप्पर उठाता हुआ) चुप ! भैरव-पूत की जय हो ! जय भैरव की ! सिद्धि ! सिद्धि !! सिद्धि !!! जय भैरव की...

दूसरा अघोरी—चिल्ला रहा है, साला! सिद्धि! रास्ते में पड़ी है सिद्धि जैसे! मर गये यहाँ तो; फिर भी......

तीसरा अघोरी—(जलाकर)—हुम्! छाती पीट ले-छाती! हा-हा-हा!! सिद्धि! सिद्धि!! भैरव-पूत की जय हो! अब मेरे इशारे पर बादल आकाश में उमड़-घुमड़ पानी की जगह आग बरसायेंगे। भैरव-कृपाण सी चम-चमाती हुई बिजली टूट पड़ेगी कड़कड़ा कर किसी अलमस्त पाड़े पर। और चामुण्डा के नितम्ब पर थाप मार, समुद्र की छाती चीर, धँस आती हुई हवा पौधों के प्राण सुखा देगी। झोपड़ियाँ जल उठेंगी दावानल से, समझा? हुम्! आँधी के थपेड़ों से बड़ के झुण्ड झूमर खा उठेंगे; उन पर पिशाचिनियों के ध्यान में बेसुध वैताल और जिन लड़खड़ा उठेंगे, और—और चीत्कार करते हुए भूकम्प से फटी हुई पृथ्वी में दब मरेंगे। प्रलय होगा—प्रलय!! समझता है?'

पहला अघोरी—'प्यासा—(सिर धुन कर)—प्यासा मर रहा हूँ, हाय!'

दूसरा अघोरी—यह ख़ून पीयेगा सारी दुनिया का, और यह प्रलय करेगा! हुँ? अरे ऐ! पहले इस मरदूद की प्यास तो बुझा देखें; फिर प्रलय की सोचना!

तीसरा अघोरी—(उखड़ कर)—तब क्या तू करेगा? सूअर का मूत कहीं का! बता, तू करेगा? हा, हा, हा! अरे शून्यम्! भैरव की दया से वह सिद्धि पाई है आज मैंने कि चाहूँ, वह कर दूँ! देखना है प्रताप मेरी शक्ति का? बता, बढ़-चढ़ कर बातें बनाने वाले?

पहला अघोरी—शेखीख़ोर! हाँ, बता! मैं देखना चाहता हूँ तेरा प्रताप! ओह! अब क्या लौटें हराम के पिल्ले!...उससे क्या पूछता है उससे—उस निरर्थक से! मुझे बता—तब जानूँ! आह! नहीं लौटे! अच्छा, करता हूँ मूक आकर्षण; अब सहा नहीं जाता!

दूसरा अघोरी—घमण्डी मेंढ़े कहीं के! जानते-वानते कुछ नहीं और शेख़ी ज़माने भर की!

तीसरा अघोरी—मैं चाहूँ तो कुम्भलगढ़ को आकाश में गेंद-सा उछाल मारूँ, समझता है? चाहूँ तो महाराना कुम्भा को—नाश हो उसका—उल्लू, अन्धा उल्लू बना डालूँ! सज्जनों के पीछे डाकिनियाँ लगा दूँ! मेरी हाक सुनते ही चीचियाते हुए वैताल और हिंकारते हुए जिन रौंद दें भू-मण्डल को! तू ऐंठता क्या है?

दूसरा अघोरी—बकने के सिवाय आता क्या है तुझे? उँह! ज़रा भैरव-पूत ने दया-दृष्टि क्या कर दी, आसमान में ही उड़ने लगा! घमण्डी कहीं का!

पहला अघोरी—अब तक न आये—अब तक!

तीसरा अघोरी—चुप भी मरेगा या नहीं!...

पहला अघोरी—(धैर्य खोकर)—क्यों रहूँ चुप? क्यों? क्या मैं किसी कदर तुझसे कम हूँ? चाहूँ तो संसार भर की नदियों को काले विष मिले लहू से रँग दूँ—रँग दूँ, समझा?

तीसरा अघोरी—बस कर बस! रंग दिये! हज़ार वर्ष तक

सर्प योनि में रह, हवा फाँकने पर भी तू मेरी छ दाम शक्ति तो पाले, देखूँ! भैरव-पूत का पट्ट-शिष्य हूँ, समझा?

दूसरा अघोरी—भैरव की सौगन्ध! यह सर्वथा सच है! हुँ! भैरव-पूत की कृपा-दृष्टि तुझ पर बहुत है, बहुत; यह मैं जानता हूँ—जानता हूँ, जी!

पहला अघोरी—(बमक कर)—जानता हूँ, जानता हूँ—क्या जानता है? बता, क्या जानता है तू, हराम के पिल्ले! आह! प्यास—पर तू तो बता, क्या जानता है? बता—

तीसरा अघोरी—(दाँत पीस कर) बताऊँ? क्या आँखें दिखाता है इसे, सूअर!

पहला अघोरी—तू किसे आँखें दिखाता है—आँखें निकाल लूँगा; चूस लूँगा प्राण, याद रखना!

तीसरा अघोरी—अच्छा, तब तुझे ही बिजली-भैरवी का कलेवा बनाता हूँ। ठहर, आँधी की थपेड़ों से तेरी हड्डी-हड्डी चूर-चूर कर देता हूँ, ठहर! तेरे हृत्पिण्ड को भूकम्प-फटे रसातल में गाड़ दूँ—

दूसरा अघोरी—हूँ, देखूँ, तैय्यार—

पहला अघोरी—तब क्या मैं तुझ से कम हूँ? खड़ा रह, तेरी जिह्वा का नरम-नरम लहू चूसे लेता हूँ—खड़ा रह, तेरी जंघा का मट्ठे सा गाढ़ा रक्त चुस्की भर में खींचे लेता हूँ; प्यासा मरता हूँ तो क्या? तुझे तो दिखा दूँगा! साले! पट्ट-शिष्य बना फिरता है!

दूसरा अघोरी—सावधान ! कर दिखा जो कह रहा है—कपाल-भैरव का शिष्य हो तो, कर दिखा !

तीसरा अघोरी—आ जा ! मेरे अभिमंत्रणों के कराल पाशों में बँध कर, क्रोध के वज्र से जर्रा-जर्रा हो जा ! आ जा—

पहला अघोरी—(उठकर) 'आ जा, आ जा ! बहुत हो गया अब, बहुत हरामजादे !

तीसरा अघोरी—(अंग-अंग को उभाड़ता हुआ) जय भैरव-पूत की जय भैरव-स्वरूप की ! (अभिमंत्रण कर, अट्टहास के साथ) जय भैरवनाथ की !!!

पहला अघोरी—(सँभल कर)—जय कपाल स्वामी की ! (सिर धुन कर) जय रक्त-जगदम्बा की !!

[दोनों एक दूसरे पर अभिमंत्रण करते हैं।]

दूसरा अघोरी—कितना मजा आ रहा है। ये दो सूअर, घमण्ड के पुतले आपस में लड़ नष्ट हो जाएँ, तो बन्दे की चेते ! साधना-मद में ये साले उड़े-उड़े फिरते हैं; जमीन पर पैर नही रखते ! (घृणा पूर्वक सोल्लास देखता हुआ) कैसे उछल रहे है ! भैरव-स्वरूप इन्हें छोड़ मुझे अच्छी दृष्टि से भी नहीं देखते ! जबतक ये नीच जिन्दा है, तब तक—हें—हें.........

तीसरा अघोरी—(उछल कर) यह देख, (हड्डी फैंक) आँधी !

[ज़ोरो की हवा का चलना।

दूसरा अघोरी—(साश्चर्य भीत हो)—ओ तेरी......

पहला अघोरी—(रक्तांजली फेंक कर)—यह ले, अंधेरा—

[अंधकार का होना।

तीसरा अघोरी—(उसी तरह हुँकार कर) 'यह ले भूकम्प, विजली—आग के सोते !

[पृथ्वी-धूजन; विद्युत् तथा जंगल के एक भाग में आग लगना]

दूसरा अघोरी—(आँखें हाथ से वन्द कर, चिल्लाता हुआ)—ओ ओ, मरा रे ! ओ वाप रे ! दौड़ो कोई ! मरा ! रक्षा करो गुरु देव ! दौड़ो—दौड़ो—

तीसरा अघोरी—(भयानक चीत्कार-कर)—यह ले मरण-बन्ध—

(वायु-वेग से कापालिक का प्रवेश।)

कापालिक—(रोकता हुआ)—'शान्त ! सबर !! भैरव-शिष्यों का कमाल हो ! शाबाश !!

दोनों—(रुक, स्तम्भित हो घूम) गुरुदेव ? (झुकते हैं) जय ! जय !!'

कापालिक—(स्थिर)—हुम् ! शक्ति, इस जगत का विकराल जादू—जादू !—महा जीवन की ज्वाला है, सावधान !

दोनों—(दीन स्वर में) कृपा हो, नाथ !

कापालिक—(वैसे ही)—'भैरव नाथ की महिमा से जगत की यह पिशाचिनी स्वयं-योगी के महापतन में दत्तचित्त है ! वस, इतना ही बल है। हुम् ! राक्षस की ठोकरें खा स्वयं-जन्मित

भैरव शरण में आता है, प्रणिपात करता है। शिष्यो ! तुम्हारे प्रताप से भैरव की तूती काँप उठी है ! शाबाश...........

दोनों—(सगौरव)—हे अनन्त व्यापक पैशाच्य ! तुम्हारे अट्टहास से प्रसन्न हो काल भैरव ने इस महाश्मशान संसार की रचना की। हे भैरव-स्वरूप।! प्रमथ वैताल ने तुम्हारी दया पाकर पृथ्वी की छाती में भूकम्प की लात मारी। आकाश ने आग उगली ! दिशायें फुफकार उठीं। हे कापालिक-नाथ ! हम पर अनुग्रह हो।

[कुछ अवोरियों का प्रवेश।]

दो-तीन—जय जय।

एक अ०—(आगे बढ़कर)—हाज़र, उपस्थित, सप्तदश पाड़ों का ताज़ा रक्त !

दूसरा—कुत्तों के हृदय-पिण्डों की मदिरा !

तीसरा—आवारा स्त्री-मुर्दे के स्तन !

कापालिक—स्वयं योगी कुम्भा का नाश हो ! हुम ! चलो, भैरव भोगे के लिए तैयार ! तैयार हो जाओ ! भाग्य की लिपि ! मृत्यु के अक्षर !! हा-हा-हा !!! जल्दी करो ! (कुछ घूमकर) पहले ! अभी और साधन में जमो ! कुछ कसर है, अभी ! तीसरे ! ठीक है, हम् ! ठीक है... (बिजली के साथ मेघ गर्जना) क्या है, भैरवी ? बहुत अच्छा ! भैरव बुला रहे हैं ? चलो ! जल्दी करो, भैरव बुला रहे हैं !! ठीक ! जय, जय राक्षस की जय ......

[सब का गुफा में प्रस्थान]

दूसरा दृश्य

[स्थान, उसी जंगल का अड्डे के पास का निकटवर्ती दूसरा भाग, समय, फैलती हुई रात्रि]

चेत्र सिंह—(नेपथ्य में घोड़े से उतरता हुआ, प्रवेश कर)—न जाने किस साइत से निकले थे, जो हाथ में आया हुआ शिकार निकल गया !...'

गोपाल सिंह—(पीछे-पीछे आता हुआ)—'मेरे जीव ! कुछ समझ में भी तो आवे ! कुछ समझ में भी तो आवे ! मुझे रमल फेंकना आता होता, तो अभी बता देता कि......'

चेत्र सिंह—(आकाश की ओर देख)—अभी भी बादल वैसे ही हैं ; न जाने कब टूट बरसें ! अच्छे-खासे दो चीते थे... अन्धड़ पानी का सत्यानाश हो ! बेचारे जानवर हाँफ उठे !

जैत सिंह—(ऊदा के साथ, मसाल सँभालता हुआ प्रवेश कर)

अँधेरा हो चला ! ऐं ! चकमक कहाँ रख दिया ? (खोज निकालता हुआ) यह रहा ! (रगड़ कर आग जलाता हुआ) आज का शिकार अच्छा रहा ! ख़ाली पिदे ! इससे तो क्या ही अच्छा होता, हज़ूर के यहाँ कविता सुनते ! (मसाल जलाकर) अब कुछ दिखा ओह ! कितना भयानक जंगल है......!

ऊदा—(ढाल उतार एक ओर बैठता हुआ)—हुम् ! थक कर लोथ हो गये ! ओह, शरीर से भी थक गया और जीवन से भी ! (सध्यान सचिन्ता) चारों ओर अन्धकार उमड़ रहा है, जैसे मेरा भविष्य हो, जैतसिंह !

जैतसिंह—(मसाल पास के वृक्ष की डाली से कस बाँधता हुआ)—श्रीमान का भविष्य तो सौ सूरज है—सूरज ! अच्छी मिट्टीपलीद हुई आज ! मारे अफ़सोस के चेत्रसिंह तो गोपाल से मन बहला रहे हैं ! वही तो खींच लाये थे सबको ; बाक़ी मेरा मन बिलकुल न था आज ! हाँ, श्रीमान ने सुना, कवि अत्रि की देखते-देखते मौत हो गई—कहते हैं, प्रशस्ति रचते-रचते उसका हृदय बन्द हो गया। परसों उसके पुत्र महेश के सम्मान में अन्तरंग बैठक होगी—सेनापति काँधल भी उपस्थित रहेंगे !'

ऊदा—(वैसे ही)—और क्या होगा ? (उत्तेजित हो) आज प्रतापी बप्पा रावल का दरबार तुक्कड़ों और पागलों से भर गया ! सारा मेदपाट आलसियों का बिछौना हो गया जैसे ! (पुनः शान्त हो, पर चिन्ताकुल) क्या ही लीला है जैतसिंह ! कहाँ तो—तुम से क्या कहूँ—कहाँ तो मालवा और गुजरात

पर जा टूटने की बातें और, ऊँह ! कहाँ शंकर और कणाद की गप्पें !

जैत सिंह—(झोली टटोलता हुआ)—सच फ़रमा रहे हैं ! हुज़ूर को समझावे कौन ? जब देखो तब मृदंग बजता ही रहता है ! निन्दा-खोर बुढ़िया की तरह पखावज बजती ही रहती है; चुप रहती ही नहीं ! महीने में दस दफ़ा नाच हो ही जाता है ! यह न भी हो, तो महाराणा को महात्माओं और साधुओं से कहाँ फ़ुर्सत ! न जाने क्या हो गया है, मेवाड़ नाथ को !......मेरा अनुमान है, और सब रास्ता पा गये; हमारे पीछे होते तो अब तक यहाँ आ गये होते ! घोर अन्धकार है ! मेरी मति अच्छी थी, जो एक मसाल ले ली—नहीं तो !......

ऊदा—(उसी तरह)—मेरा बस चले तो सच कहता हूँ, एक-एक को पकड़-पकड़ कर भूखे शेरों को डाल दूँ; मुफ्त ख़ोर कहीं के !

गोपाल सिंह—(कुछ दूर, लेटने की चेष्टा करता हुआ) कुछ समझ में भी तो आवे ! आज दाता फ़रमा रहे थे, वारांगनायें राजधानी की शोभा हैं। मेरे जीव ! फिर ये रण्डियाँ राजधानी की शोभा कैसे हैं ! उहुँ ! ईश्वर मुझ से दुनिया बनवाता, तो सच कहता हूँ, मैं औरतें बनाता ही नहीं........

क्षेत्र सिंह—(चिन्ता से जाग कर)—फिर तुमने औरतों की बात छेड़ी ? दिन रात यही रटन है, बस ! विवेक तो जैसे कसूंबे की तरह घोल कर पी गये ! जो मन में उठा, मुँह से बक गये !

औरतें अन्त:पुर की चीज़ हैं; यहाँ उनकी चर्चा कैसी! लेना और देना! दिन भर मारे-मारे फिरे........

गोपाल सिंह—(ध्यान न देता हुआ)—और क्या! औरतें बनाता भी, तो गिनीचुनी! किसी बृहस्पति ने ठीक ही कहा है 'औरतें न होतीं, तो सब को एक क्षण में मुक्ति मिल जाती!' मेरे जीव! कुछ समझ में भी तो आवे! बुद्ध देव ने भी तो यही कहा था! यही-यही! मेरे जीव! कुछ समझ में भी तो आवे......

क्षेत्र सिंह—(कुछ चिढ़ कर)—फिर तुमने मेरा कहा नहीं माना, न? अच्छा, अब लेना मुझ से सहायता! (पुनः विचारोत्तेजित हो) सब एक साथ—आँधी-पानी-बारिश, एक साथ सब! मालूम होता है, कोई देवता रूठे हुए हैं! कितना बढ़िया शिकार हाथ से निकल गया? (ऊदा की ओर देख कर) सब को घसीट लाया—भैय्या क्या समझेंगे? जैतसिंह ने रंग रक्खा, वाक़ई!........

ऊदा—(आत्म-विस्मृति से चौंका हो, जैसे)—हाँ ठीक कहा, जैतसिह! ठीक ही कहा! महाराणा को कौन समझावे! उससे होगा क्या—बुड्ढा पागल हो गया है; और क्या होगा? ये मौज-शौक़ मेदपाट को ले डूबेंगे! सच कहता हूँ—(निस्वास रख कर) सच कहता हूँ जैतसिंह! ये रंग-राग महाराज्य का सत्यानाश कर देंगे! सूर्यवंशियों में महाराणा जैसा कोई न हुआ, जिस ने चारों हाथों से मुफ़्तख़ोर नालायकों को राज लुटा दिया हो! ये दार्शनिक, महात्मा-फात्मा बैठे ठाले लगौ नहीं है तो क्या

हैं? अफसोस, मेवाड़ की तलवार एक ब्राह्मण के हाथों पड़ गई !.......

जैत सिंह—अक्षरश: सच फरमा रहे हैं, बुड्ढा सठिया गया है।

चैत्र सिंह—(पास आ निकल)—कौन सठिया गया है, जैत सिंह?

जैत सिंह—(शून्य-सा)—महाराणा, उहँ!

चैत्र सिंह—महाराणा? क्यों? मेरे ख्याल से महाराणा जैसा गौ-ब्राह्मण-प्रतिपाल, प्रजाहितैषी, वीर, धर्म-धीर और दिग् विजयी नर-सिंह मेदपाट की गद्दी पर न अवतरा! (ऊदा से) दादा, किस राजवी ने आत्म-साक्षात् किया है इस वंश में सिवाय पितृदेव कुम्भा के, मुझे दिखा तो दो?

ऊदा—(व्यंग से)—राग-रंग को तुम आत्म-दर्शन मानते हो क्यों? होगा—पर आज इस समय कह रखता हूँ, मौज़-शौक़ की बदली मेवाड़ को ले डूबेगी!

गोपाल सिंह—(बीच ही में)—बदली ले डूबेगी? मेवाड़ को? सो कैसे? मेरे जीव, कुछ समझ में भी तो आवे!

ऊदा—(टटार होकर)—मैं समझता हूँ, किस तरह! कांधल क्या करे? राणा ने दिखावे के लिए सेना बहाल रक्खी है! सुना था, लोदीशाह के दाँत खट्टे करने के लिए कांधल कूद रहा है; पर राणा कान में तेल डाले बैठे हैं! तुमसे क्या कहूँ? मेवाड़ स्वप्नवादियों से भर गया! तुम्हें बुरा तो लगा चैत्र! पर ज़रा ध्यान से मेदपाटेश्वर के हाल तो देखो!

क्षेत्र सिंह—(सतर्क)—अपने साम्राज्य की कमाई सम्राट न भोगें ? क्यों, यही न ? इस वृद्धावस्था में भी महाराणा भगवद्-भजन न करें ? आप तो शायद अन्त तक राज जीतते चले जाएँगे ?

ऊदा—(कुछ चमक कर)—बताऊँगा ! समय और अवसर की मुँहजोई है। (सहसा निश्वास) पर न मालूम कब यह शुभ अवसर प्राप्त हो ? (उत्साह से) मैं तो भूत बन कर भी रण-भूमि जगाये रक्खूँगा ! (उठकर प्रबल प्रेरणा के साथ) सच कहता हूँ ! साम्राज्य और तारों से लदालद आकाश में अन्तर ही क्या ? क्या ? कुछ नहीं, रत्ती भर नहीं ! दिन था क्षेत्रसिंह ! सूर्यवंशियों ने समस्त भू-मण्डल का राज्य किया था—सारी पृथ्वी पर ! समझे ? ओह ! जरा उन पूर्वजों की महिमा का ध्यान करो—विमलदानजी एक दिन कह रहे थे कि जन्मोत्सव के दिन हजारों वन्दीजन हाथ बाँधे, एक स्वर से उनकी कीर्ति, उनके प्रताप, एह ! उनके यश की बिरदावलियाँ पढ़ते थे ! जब सेना चलती थी, तो ध्वजाओं से मेघ-मण्डल कटता चलता था !! हाथियों की चिग्घाड़ से समुद्र के समुद्र काँप—हहर उठते थे। सच कहता हूँ, उनकी कल्पना मात्र से मेरा रोम-रोम थिरक उठता है। (कुछ संयत हो, व्यंग पूर्ण घृणा के साथ) यह तो दस-पाँच राज्य जीते कि राग-रंग में बह गये ! यही भगवद् भजन है न क्यों ? क्या कहा जाय, क्या किया जाय ? समझ में नहीं आता, क्षेत्र सिंह !...(निस्वास के साथ, स्वगत-सा) ईश्वर ने राजाओं को अमर नहीं बनाया, बहुत कुछ यही सन्तोष है...(कुछ सजग तीव्र

स्वर में) पर यह तो मैं भविष्य भाँप रहा हूँ, मेवाड़ का भविष्य डाँवाडोल है ! मेवाड़ का राणा आज एक विलासी महन्त है—एक साधुड़े के हाथ में विधाता ने राज्य-दण्ड दे रक्खा है...

जैतसिंह—मैं दावे के साथ कहता हूँ, दादा राज करने के लिए ही अवतरे हैं ; यही तो सच्चे राजवी की निशानी है ! मैं तो जैसा देखता हूँ, वैसा कह देता हूँ—कोई सुने, न सुने, माने-न-माने ! बाक़ी सच कहने में मुझे कोई स्वार्थ नहीं ! यहाँ तो यों ही बदनाम हैं, झूठ बोल कर अधिक बदनामी क्यों मोल लूँ ? हमें तो आजन्म मेवाड़-नाथ की चाकरी करना और मगन रहना है—मेरी माँ युद्ध की ख़ैरात थी तो क्या हुआ ? उसने मुझे कभी झूठ बोलना न सिखाया ! श्रीमान् ! भूख सता रही हो तो कुछ चना-चबेना निकालूँ—चैत्रसिंह ! राजा और सती जन्म से ही होते हैं—

गोपालसिंह—(फिर बीच में)—चना-चबेना तो घोड़े खाते हैं, जैतसिंह ! राजपुत्र नहीं, आ हा हा हा ! मेरे जीव ! कुछ समझ में भी तो आवे ! तुम तो अश्व-जाति के पुरुष मालूम होते हो , देखूँ ? हा हा हा......

[दूसरे अघोरी का अन्यमनस्क भाव से प्रवेश]

दूसरा अघोरी—(क्रोध, रोष, ग्लानि, तीव्रता तथा असहाय झुँझलाहट के साथ)—भैरव-भोग के समय मुझे तर्पण का अधिकार न दिया गया ! क्यों, मैं पूछता हूँ, क्यों ? जवाब दे, मुण्ड स्वामी ! हुक़ ! जवाब दे ? क्या मैं भैरव का सेवक नहीं ? नहीं हूँ

क्या ? बोल ? (सिर धुन, आकाश की ओर देख, मुट्ठी बाँधकर) बोल, उत्तर दे ! क्या मैंने अधजले शव पर लेट एक शत अहो-रात्रियों तक पिशाच-भैरवी का जाप नहीं किया ? नहीं किया ?... (दुःखी और अपमानित स्वमान के साथ) योंही तब मुझे शिष्यत्व की दीक्षा दी गई थी, यों ही ? मेरा अपमान करने, क्यों ? इसीलिए मुझे अघोर-योग की दीक्षा दी गई थी—इसीलिए ? ओफ़ ! इस अपमान को कैसे सहूँ ? (उत्ताल स्वर में) कैसे सहूँ ? (भभकती हुई ईर्षा के साथ दर्प भरे स्वर में) उस पहले के बच्चे को आता क्या है ? दो चार कर्पण भर कर लेने से वह साला भैरव-स्वरूप की पूँछ बन बैठा, क्यों ? ओह ! (निराशा के साथ घूमता हुआ) भूल गये वे दिन जब पाँच प्रहर तक मैंने एक सौ गीदड़ों के हृतपिंड कुचलकर भैरव-पूत की मन-चाही मदिरा तैयार की थी—भूल गये वह दिन ? भूल गये उस दिन दिया हुआ अपना वरदान ? क्यों न भूल जाओगे, जी ! यों तो, प्यास लगे तब मैं—भूख सतावे तब मैं ! पर शक्ति देने के समय दूसरे (उत्तेजित जनून के साथ) सब समझता हूँ, सब ! पर—पर मैं भी बता दूँगा कि मैं क्या हूँ—(सहसा) हैं ! कौन ? कौन है ? पिशाच-पूत की जय ! अन्धेरे में ये मुर्दे कैसे खड़े हैं ? कौन ? भैरव-पूत की जय हो ! जय हो मुण्डमाली........(भयानक दृष्टि से घूरकर मूक पिशाच-हास्य के साथ) आहा हा हा ! भैरव—भैरव !!

गोपालसिंह—(सम्पूर्णतया भयभीत हो, थर-थर काँपता हुआ

कुछ सचेत-सा होकर)—ओ-ो-ो, बाप-प रे! म-म मेरे जीव! म्हैं...

क्षेत्र सिंह—(सम्पट साध, हिम्मत बटोरता हुआ)—तुम, तुम कौन हो?

ऊदा—(उठ, सहज भाव धारण करता हुआ)—जय भैरव की! दास प्रणाम करता है! (हाथ जोड़ता है)

अ० दूसरा—(आशीर्वाद देता हुआ)—जय, जय!! स्वयं योगी कुम्भा का नाश हो! जय, मुण्ड स्वामी! जय!! मनुष्य!! भैरव-शरण में आ—

ऊदा—(सहसा विचार ग्रसित हो)—हें? स्व-यं-योगी कुम्भा-का-नाश?

क्षेत्र सिंह—(सहसा सक्रोध धँसता हुआ)—क्या कहा, अघोरी के बच्चे? किसका नाश हो? राजर्षि महात्मा कुम्भा का? ठहर, शिकार-भूखी मेरी बरछी तब तेरा ही कलेवा......

ऊदा—(बीच ही में रोक कर)—हाँ, हाँ! क्या कर रहे हो? पागल न बनो! भैरव की महिमा वेदों तक ने गाई है! भैरव-स्वरूप की जय हो! भैरव-पूत हमारे मनोरथ पूर्ण करें! (पुनः प्रणाम करता है)

दूसरा अघोरी—जय-जय, जय भैरव की! जा तेरा कमाल हो, कमाल! शीघ्र हो तुझे भैरव-भाव की प्राप्ति! जा! अमावस्या के दिन, रात को पहले प्रहर में एक-शत मेंढ़ों के पुट्ठे भेज देना, यहाँ! समझा? नहीं तो एक अंजली भैरवी का वज्र बन कर तुझे भख लेगी! नाश कर डालेगी तेरा! समझा? हुफ़ जय

हो, जय ! स्वयं योगी कुम्भा ! तेरा नाश हो—नाश ! जय-जय मुण्डमाली ! जय !! (सवेग प्रस्थान)

[ऊदा के सिवाय सब स्तम्भित]

ऊदा—(कुछ क्षण की नीरवता तोड़ कर)—पहेली ! ओह, कैसा घोर अन्धकार भयानक बीहड़ पल ! और जैसे दिशाशूल से घायल किसी यात्री की प्रतिहिंसा-पूर्ण छाया-मूर्ति हो। यह सिद्ध ! ओह ! कैसी वाणी......

जैतसिंह—(जाग, पर अपने आप को खोया समझ कर जैसे)—एक भयानक सपना आया हो मुझे जैसे—ओह !'

गोपालसिंह—(सभीत—स-कम्प)—'मूर्तिमान पिशाच मेरी छाती पर आ चढ़ा हो—हे जगदम्बे ! रक्षा कर, रक्षा ! मेरे जीव......

क्षेत्रसिंह—(घृणा मय क्रोध के साथ)—नीच नर्क कहीं का !

ऊदा—(स्वगत पर प्रगट)—कुछ समझ में नहीं आता ! कैसा रोमांचकारी योग है ? शिकार को निकलना, मारे-मारे फिरना ; आँधी-पानी में मारा-मारा डोलना ; अघोरियों के अड्डे के पास स्वतः हो आ निकलना, रुकना—और, और यह भविष्य-वाणी सुनना ! जैसे भूला हुआ स्वप्न स्वतः ही आपसे-आप सच हो रहा हो ! ओह ! क्षेत्र ! अच्छा हुआ, जो तुमने मेरा मान लिया ; नहीं तो जाने क्या होता !...

क्षेत्र सिंह—(घूरता हुआ उसी तरह)—ख़ून-ख़राबी हो जाती और क्या होता ? ज़बान खींच लेता नीच कलमुँहे बदमाश की !

ऊदा—(टहलता हुआ)—सच कहता हूँ, मुझे भी ऐसा क्रोध आया कि उसकी गरदन मरोड़ दूँ; पर—पर ये योगियों के मामले हैं। योगियों के, अतः रुक गया! नहीं तो, क्या देर लगती इस दुबले-पतले पिशाच को ढेर करते? मेरी तलवार (वीरावेष के साथ) सैंकड़ों पठानों के मुण्ड घचाक् से पृथ्वी पर पाट दे सकती है! मेरा भाला मदमस्त चिंग्घाड़ते हुए हाथियों के गण्डस्थल भेद सकता है—सच कहता हूँ, हिनहिनाते, वायुवेग से दौड़ते हुए कातिल घोड़ों को मैं एक ही वार में कमर से दो टूक कर सकता हूँ पर संसार का संचालन करने वाले इन आफ़त के परकालों का नाम सुनते ही मेरे देवता कूच कर जाते हैं। (पुनः शान्त-सा हो, संयत गाम्भीर्य से) अभी तक—अभी तक, मेरे कानों में उसकी भविष्य-वाणी गूँज रही है, उफ़! कैसी घातक वाणी थी वह? मानो—सच कहता हूँ—क्षेत्र! मैं उसे सजीव देख रहा हूँ—सजीव, मूर्तिमान। जैतसिंह! तुम कुछ बता सकोगे? क्या राजर्षि पितृदेव पर कोई मरणान्तक विपदा झूम रही है......?

क्षेत्रसिंह—(सावधान पर निर्भय-सा)—अन्नदाता करोड़ दिवाली राज करें! किस शक्ति ने सेर सोंठ खाई है, जो महाराणा का बाल भी बाँका करे? विपदा। विपदा लाने वाली ऐसी अरबों भविष्य वाणियों की ऐसी-तैसी? ऐसे भविष्य वेत्ताओं को मैं जीते जी हाथियों के पैरों तले रौंदवा दूँ। विपदा......

जैतसिंह—(कुछ सोचता हुआ)—मेरे मत में अब यहाँ एक पल भर भी ठहरना उचित नहीं है।

गोपालसिंह—(चलने को उद्यत हो)—अवश्य मेरे जीव! कुछ समझ में भी तो आवे! मेरे तो हाथ-पाँव ठंडे हो गये! किसका मुँह देखा था आज, जो इस राक्षस के दर्शन हुए! चलो—यहाँ ठहरे ही क्यों!...

ऊदा—(प्रस्थान-तत्पर)—चलो! (उद्यत, सचेष्ट हो, कुछ रुककर) पर, जैतसिंह! मैं आज का दिवस कभी भी न भूल सकूँगा, जैसे! भूल नहीं सकता—कैसे भूलूँ? मुझे तो ऐसा ज्ञात हो रहा है, जैसे यह भविष्यवाणी बहुत-बहुत पुरानी हो! आज मेवाड़ के सिंहासन पर एक अमर ब्राह्मण ने अधिकार कर लिया है जैसे! हुम्! होगा—चलो! यहाँ मुफ्त में ठहरे! क्षेत्रसिंह! मैं भी कहता हूँ, मैं भी कि अन्नदाता करोड़ दिवाली राज करें—इससे अच्छा और क्या होगा? तुम्हारे मुँह में राम! पर, पर सच कहता हूँ, भैरव-शिष्य की वाणी में विधना बोल रही है—विधाता! ओह! मेरा रोम-रोम काँप रहा है। चलो! पर क्या मेदपाट पर कोई संकट, उल्कापात लूम रहा है। हतभाग्य महाराज्य! तेरा न जाने क्या होना है—हाँ, अच्छा हो हम यह बात अन्य किसी से भी न कहें!

गोपाल सिंह—(जैसे जान बचाना हो)—हाँ, जरूर-जरूर! मेरे जीव! मैंने योगदर्पण में पढ़ा है, योगी त्रिकाल की बात जान लेते हैं! कुछ समझ में भी तो आवे! कहीं यह राक्षस हमें

आज की बात कहते जान ले, तो—तो गज़ब हो जायगा! कहीं वह हम पर बिजली न पटक दे! कहीं आकर हमें जीवित न जला दे, मेरे जीव......

जैतसिंह—(आगे बढ़ता हुआ)—कहीं आज का भूकम्प इन्हीं पिचाशों का तो काम नहीं है?

ऊदा—(पैर बढ़ाता हुआ)—एक ही बात कही तुमने सोचकर!......

चैत्रसिंह—कुछ नहीं, क्या खाकर साले भूकम्प करेंगे? ये रौरव नर्क के कीड़े भी भूकम्प ला देंगे, तो हो रहा! ईश्वर इतना मूर्ख नहीं है, जो इन मांस-मदिरा के भोगियों को कोई शक्ति देगा—

(सबका धीरे-धीरे प्रस्थान)

तीसरा दृश्य

[समय प्रभात, स्थान, महाराणा कुम्भा की अन्तरंग मर्दानी-बैठक। कवि महेश, महाराणा आदि]

कवि महेश—(विनय और हर्षातिरेक से)—पृथ्वीपति ने मुझे अपने पिता का पद और सम्मान प्रदान कर जो गुण-ग्राहकता प्रगट की है, उसे निरखकर रत्नों के पिता समुद्र देव की छाती मारे आनन्द के हिलोरें ले उठी हैं, चन्द्रमा तन-मन बिसर गया है और अन्नदाता के चरणारविन्दों में अमृत की भेंट रखने सोलहों कलाओं में सजना उसने विचारा है! आज वसुन्धरा धन-भाग हो गई, राजन्!......

विमलदान—वाह! कैसी मनोरंजक कल्पना है। कैसी प्रांजल भाषा है। अजी वाह। क्यों न हो, है तो कविवर अत्रि का बेटा।

कुम्भा—(हँसकर)—कविजी ! इतनी प्रशंसा क्यों करते हो मेरी ? मैं तो कुछ नहीं—कुछ भी नहीं हूँ। (आँखें उन्मीलितकर) मैं क्या हो सकता हूँ, इस विराट्-विराट् महिमामय जगत में ? उस परम पिता की एक छोटो-सी कृति हूँ—उसकी दया का भिखारी ! हाँ, हमारे सेनापति की कीर्ति कहो, जिन्होंने प्रतापी पर क्रान्ति के धूमकेतु खण्डेलों को आज गाय वना दिया। ऐसे ही वीरों की भुजाओं में समृद्ध और विजेता राष्ट्रों के झण्डे रहते और सूरज को हवा करते फहराया करते हैं ! यश-गान करो तो ऐसे मर्दों का करो ; सरस्वती धन्य-धन्य हो उठेगी !......

काँधल—(सविनय, सओज)—सेवक की यह विजय भी हुजूर का प्रताप है, भगवान् रुद्र की शाक्षी ! नहीं तो कहाँ, रण-बाँकुरे खण्डेले और कहाँ महाराज्य के भ्रमणार्थ निकली हुई कुछ गुल्मों की सेना। पर भगवान रुद्र की साक्षी, अन्नदाता के नमक में, हिन्दू-सुर-त्राण के नाम में सैंकड़ों इन्द्रों का सामर्थ्य भरा है—हुजूर के अन्न का एक कण नपुंसक को दस युद्ध जीतने की शक्ति देता है।

कुम्भा—(सिर हिलाते हुए अनुराग-पूर्ण स्मित के साथ)—रज-पूती तुम्हारा पानी है, काँधल ! हिम्मत तुम्हारा धर्म, स्वामिभक्ति तुम्हारी टेक है ! हँ-हँ-हँ ! ये ही गुण हैं, जिनके कारण मेवाड़ की ध्वजा के नीचे आज मानवता के ये शत्रु गाय वने खड़े हैं ! मेरा अन्न ? (पुनः जैसे ध्यानगत, अन्य मनस्क से, विरक्ति के साथ) अन्न मैं मोल भर लेता हूँ, पैदा नहीं करता। आदमी मिहनत कर

प्राप्त भर करता है—पैदा क्या कर सकेगा वह ? निर्माण और नाश तो उसी मेरे प्रभु, घट-घट के अन्तर्यामी के हाथ है—(दोनों हाथ ऊँचाकर)—मेरे नाथ के !...

कवि महेश—(सराहना के अतिरञ्जित भाव से)—इस सरलता पर त्रिभुवन-मोहिनी अप्सराएँ, लोक-त्राता सिद्धियाँ न्यौछावर होती हैं, न्यौछावर ! पृथ्वीपति की यह साधुता आज संसार को छाया देनेवाली कल्पवृक्ष की मनोरथदायिनो घटा बन गई ! हिन्दू-पातशाह की यह उज्ज्वलता मानों सूर्य को शर्मा गई...

विमलदान—वाह ! क्या ही उत्प्रेक्षा कही है, भट्ट ने वाह !...

काँधल—(तलवार यों ही छूकर)—यह अपनत्व, यह गुणग्राहकता यह निरभिमानता भगवान रुद्र की शाक्षी ! वीरों में एक मस्ती भर देती है। ऐसा मालिक जिसके माथे हो, वह भाला फेंक कर चाँद को बींध देगा ; सूरज को कैद कर लेगा ! संसार भर के बादशाहों के कभी न झुकने वाले माथे, ऐसे स्वामी के चरणों में ला झुकायगा ! भगवान रुद्र की साक्षी ! आज पता पड़ा, राजा का हृदय भी इतना निस्पृह, इतना निस्वार्थ हो सकता है।

कुम्भा—(ध्यानस्थ-सा)—राजा ! राजत्व......।

विमलायन—हुजूर सा नरेश तो ईश्वर का अवतार है।...

कवि महेश—(कल्पना से मानो जगता हुआ)—धर्म का सेतु प्रजा का पिता !...

काँधल—(वीरावेश में)—इसमें क्या शक ? अन्नदाता के लिए कौन सिर न देगा ? सेना पिछड़ रही हो, सनन-सनन तीरों

की बौछार से श्वाँस रुँध रहा हो, भगवान रुद्र की साक्षी! जिस समय राष्ट्र-ध्वज घायल के हाथ में गिरूँ-गिरूँ हो रहा हो; गर्द और चीत्कारों से रणभूमि का आकाश काँप रहा हो—उस समय सच कहता हूँ, पृथ्वीपति के नाम की जय-जय कार वह जोरों का धावा करवा देगी कि विजय-स्वप्न में झूमते हुए शत्रु चारो-खाने चित्त हो जायँ। आज्ञा हो एक बार और सेवक लोदी शाह को बता दे कि भारतवर्ष का रक्त जब चाहे तब हिन्दू-साम्राज्य सींच सकता है।...

रायमल—(शान्त गँभीर स्वर में)—सेनापति की महत्वाकांक्षा तो आदरणीय है!...

[गोपालसिंह का प्रवेश।]

गोपालसिंह—शाष्टांग स्वीकार हो! क्या यहाँ कोई नाट्य-प्रयोग हो रहा था? मेरे जीव! कुछ समझ में भी तो आवे? मैंने रमाशंकर ज्योतिषी से 'रमल-प्रकाश' की प्रतिलिपि मँगवा ली है; यह रही! (पुस्तक खोलता है। शेष मुलकते हैं।)

कुम्भा—(पास बैठने का प्रेम भरा इशारा कर)—नहीं गोपाल! वह तो सेनापति युद्ध का दृश्य-सा खींच रहे थे। काँधल जैसे तलवार चलाने में कुशल हैं, वैसे ही लड़ाई का वर्णन करने में भी। क्यों न हों? रणभूमि ही जिसका घर हो, वह उसका सजीव वर्णन न करेगा, तो और कौन करेगा? क्यों, कवि जी! मैं ठीक कहता हूँ न? अनुभव! अनुभव के बिना साहित्य-रचना नहीं हो सकती! मैं ठीक कहता हूँ—नहीं हो सकती! सर्वथा

नहीं, जैसे गहरे ध्यान और प्रेम-पूर्ण मनन के विना परम पिता का ज्ञान नहीं हो सकता !......

काँधल—(आवेशोचित उत्तेजना के साथ)—पृथ्वीपति के महाराज्य का यह सेवक तलवार का धनी है, कल्पना का नहीं ! आज्ञा हो, अनुचर समर्थ मेदपाट-राष्ट्र की दिग्विजय में एक पैर और आगे बढ़े। इन्द्रप्रस्थ को अपनी बपौती माने बैठे हुए सुल्तान को दो-दो हाथ दिखा दिये जाँय !......

कुम्भा—(ध्यानावस्थित-सा)—मैं ठीक ही कहता हूँ, ठीक ही ! परम पिता का ज्ञान ! आहा, चारोंओर कण-कण में, तुम में, मुझमें—इनमें, अखिल भू-मण्डल में, चारोंओर जो रम रहा है उस मेरे नाथ का ज्ञान !!...

रायमल—(कुछ सतर्क सावधान)—पूज्य ?...

कुम्भा—(उसी तरह)—सत्य की पूजा के विना उसका ज्ञान कैसे होगा ? कैसे ? मैं महाराणा हूँ न ? महाराणा, राज्य का कर्ता-भर्ता-पालक—सब कुछ क्यों ? हाँ—हाँ, ठीक ही तो ठीक ही तो ! तब तो सबसे पहले मुझे सत्य का पालन करना चाहिए—सत्य का पालन ! काँधल ! मैं जन्म भर द्रौपदी के चीर की तरह मेवाड़ बढ़ाये गया—बढ़ाये गया पर अभी तक जैसे उस चीर का पल्ला ही हाथ आया हो—

काँधल—(सहर्ष स-ओज)—मैं तो चाहता हूँ, भगवान रुद्र की साक्षी ! समस्त भारतवर्ष हम जीत लें ! एक अजर-अमर महाराष्ट्र की, साम्राज्य की फिर स्थापना हो, अन्नदाता !

रायमल—(योंही जैसे)—चक्रवर्ती साम्राज्य क्यों ?

कुम्भा—(कुछ उत्तेजित)—मनुष्य का रक्त बहाकर राज स्थापे चलना, कैसी बलवती रक्त-प्यासी तृष्णा है यह ? यह मैं जानता हूँ, मैं ! स्त्री से, धन से और मदिरा से मनुष्य सन्तुष्ट हो सकता है—यह सम्भव है, पर इस राज्य-पिपासा से नहीं ; कभी नहीं । (सावधान तथा सस्नेह) मेरे वीर सेनापति ! क्षोभ मत करना ; पर मैंने निश्चय किया है, अन्तःकरण के देवता को साक्षी रख कर सपथ ली है कि मेदपाट के नाम पर अब एक बूँद भी रक्त-तर्पण न होगा !! एक बूँद भी ! क्यों हो—क्यों हो ? (स्व-लीन विकलता पूर्वक) हे जगत्पिता ! हमें, अपने अज्ञान बच्चों को प्रकाश दो ! हमारे हृदयों में ज्ञान की, प्रेम की प्यास भर दो—भर दो !......

काँधल—(साश्चर्य)—पृथ्वी पति ! यह—

कुम्भा—(बीच ही में सहसा खड़े होकर)—विरोध मत करो कोई ; कोई मत करो ! मैं कहता हूँ, हाथ जोड़ता हूँ, कोई इसका विरोध मत करो ! (सब घबड़ा कर खड़े हो जाते हैं । रायमल लपक कर कुम्भा को थाम-सा लेते हैं ।)

रायमल—पूज्य ? ज़रा शान्ति—

कुम्भा—(जैसे किसी की नहीं सुनना चाहते)—यह नहीं हो सकता, नहीं हो सकता ! (सिर धुनकर) कदापि नहीं ! कैसे हो सकता है यह कि मनुष्य-मनुष्य की गरदन काटे ! अपने स्वार्थ के लिए, अपने विलास के लिए ! ओह ! जान चली जाए, यह

नहीं कर सकता मैं अब ! बहुत किया यह सब भीषण हत्याकांड; अब नहीं, अब नहीं—नहीं !...(पुनः थककर जैसे बैठ जाते हैं) अब नहीं हो सकेगा मुझसे यह, काँधल ! मनुष्य मनुष्य को क्यों मारे ? उसका रक्त चूसे ? कहो तुम्हीं कहो ! मनुष्य ! परम करुणामय की सुन्दर सहृदय कृति ! ओह ! वह अपने भाई की, अपने ही समान, अपने दूसरे स्वरूप का हत्या क्यों करे—रे ! कैसे करे ? नहीं करेगा ; कर नहीं सकता ! बोलो ! सब प्यार से बोलो, नहीं कर सकता ! बोलो, मनुष्यो ! प्रेम से, दिल खोल कर कहो—असतो मा सद्गमय ! बोलो मेरे अन्तर्यामी के हृदय-धन ! बोलो ! पुकार दो—मृतोमांऽमृतम् गमय !! नहीं बोलता कोई ? अच्छा-अच्छा !! तो मैं क्या करूं ? (चुप ; पुनः जैसे सहसा) तो मैं क्या करूं ? मैंने निश्चय किया है, दृढ़-संकल्प कि अब कोई राज्य न जीतूँगा ; किसी भी राष्ट्र को गुलाम, नाम मात्र के भी लिए न बनाऊँगा ! समझे तुम सब ? किसे गुलाम, पराधीन बनाऊँ ; क्यों बनाऊँ ? सब स्वतंत्र हैं ; सब स्वाधीन हैं ! मैं कहता हूँ, कोई किसी को गुलाम नहीं बना सकता—नहीं बना सकता ! यह सब सारा चराचर उसी मेरे प्रभु की लीला है—लीला ! ओह ! आनन्दमय, ज्ञानमय, चेतनामय !! हे-घट-घट व्यापी !! (अर्धमूर्छित से ढल और तकिये से ढुँगला पड़ते हैं)

विमलदान—(चिंता, विवशता तथा असहाय-भावना के साथ)—अन्नदाता ! मेरे धणी ! धीरज धारण हो ! हम सब पृथ्वीपति के चरणों की रज हैं—

कवि महेश—(जैसे समझा रहा हो)—हुजूर की आज्ञा टाल कौन सकता है। फिर अन्नदाता तो पृथ्वी पर भगवान का अवतार है—ईश्वर के प्रतिनिधि !...

कुम्भा—(जागते हुए जैसे)—ईश्वर का प्रतिनिधि ! नहीं नहीं ! एक नराधम, राक्षस ! इतनी प्रजाएँ तूने गुलाम बनाईं, नदियों रक्त बहाया यह सब नारकीयता, पैशाचिक लीला अपने स्वार्थ के लिए, अपने रंग-राग के लिए ! कितना हीन, तुच्छ और पतित हूँ मैं ? (सोचते से) ईश्वर का प्रतिनिधि ! अच्छा, वेद-शास्त्र यही कहते हैं ; तुम सब यही कहते हो ; अच्छा ! (तीव्रता तथा उत्तेजना पूर्वक) तो मैं नहीं चाहता, संसार में इतना अत्याचार हो ! कोई किसी को पराधीन बनाये और पराधीन रखे ! मैं नहीं चाहता ! बिलकुल नहीं, मैं स्वयं इस सत्य का पालन करूंगा ! अवसर आने दो, जीते हुए सब राज्य स्वतन्त्र कर दूँगा ! चहको, फलो-फूलो—अपने आप रहो, राज करो ! यही मरते-मरते, यह शरीर त्याग करते-करते सभी पापों का प्रायश्चित होगा ! बस—यही ! हे नाथ ! यह अवसर शीघ्र दे कि जब मैं अपना यह अन्तिम मनोरथ पूरा करूँ । शीघ्र दे—मेरे स्वामी ! इस पतित को, इस नराधम को, पापी को—हीन को उबार ले ; अब तो इसका उद्धार कर ले, दीन बन्धो ! जल्दी अवसर दे—अवसर—अवसर......(मूर्छित) ।

रायमल—(विकलता पूर्वक)—'अरे कोई है ?...(द्वारपाल का शीघ्रता पूर्वक प्रवेश) जाओ, भाग कर अन्तःपुर से दासियों

को बुला भेजो ! अन्नदाता को अन्दर पधरा दें—जल्दी करो !

द्वार—(जैसे सर पर पैर रख कर)—जो आज्ञा, अन्नदाता ! (जाता है)।

काँधल—(हतोत्साह से)—इच्छा थी, घमण्ड के अवतार, धर्म और राष्ट्र के शत्रु सुल्तान को रजपूती तमाचा लग जाता ! पर महाराणाकी इस विचित्र हालत ने मुझे जैसे कहीं का न रखा !

विमलदान—(सकरुण, चिंतित स्वर में)—आज वर्ष भर से यही हालत है ! हे जगदम्बे ! अनुग्रह कर माड़ी ! आरोग्य प्रदान कर मेवाड़ के इस नाथ को मां !

गोपाल सिंह—(सकपका कर)—सब जीते हुए राज्य स्वतन्त्र कर देंगे ! मेरे जीव ! कुछ समझ में भी तो आवे !! फिर जीते ही क्यों थे ?...(सबके मुँह की ओर बारी-बारी देखता है)

[पालकी के साथ दासियों का प्रवेश]

रायमल—(दूर हटते हुए)—बड़ी सावधानी से ले जाना !...

[दासियाँ कुम्भा को यथावत् पालकी में लिटा ले जाती हैं !]

रायमल— (निःश्वास लेकर)—रात्रि का प्रथम पहर शान्त विजन विरागी की भाँति बीत गया—हम लोग चलें !........ (चिन्तित प्रस्थान) ।

काँधल—विमलदानजी ! क्या यह भी हो सकता है ? सैकड़ों वर्षों से जो जाति राज्य जीतती चली आई, जिसने अपने मँहगे रक्त से सदा साम्राज्यों को सींचा, उसकी इस सिद्धि को यों पलक में फूंक कर दिया जायगा क्या ? जीते हुए देश स्वाधीन कर देंगे—

किसी को गुलाम न रखेंगे! ऊँह! हमें तो महाराणा की यह बात पसन्द न आई। फिर वह चाहे किसी भी अवस्था में कही गई हो, भगवान रुद्र की साक्षी!......

कवि महेश—(जैसे स्वप्न से जागता हो)—कवि की आत्मा से पूछो—वह तो यही गायेगी, यही—मन्दार की माला पहिने हर-सिंगार की वेणी बाँधे बिम्बाधरों में सुधा सींचे, नैनों में जुग-नुओं-सा चांचल्य रमाये स्वतंत्र मानव-जीवन की सुन्दरी सुख की समृद्धियों के गीत गाती है—कवि की मनसा से पूछो! अन्न-दाता का यह मनोरथ पूर्ण हो; यह महिमा चंद्र-सूर्य-सी अमर हो—

काँधल—(सक्रोध)—पर कविजी! ईश्वर का प्रतिनिधि होते हुए भी—राजा को अपना राष्ट्र छिन्न-भिन्न कर डालने का अधिकार नहीं है, समझे! राज्य समस्त राष्ट्र का है। न तो कल्पना से राज्य का कारभार निभता है और न ऐसी बहकों से!

विमलयान—(चलने को उद्यत होकर)—बात तो कुछ-कुछ ठीक है; यह होना तो न चाहिए! जब से धरणी बनी, तलवार की पटे-बाजियाँ होती आई हैं, और फिर क्षत्रिय का तो धर्म है राज्यों को जीत अपनी अधीनता में लाना। बहुत देर हो रही है, चलें...

काँधल—(स्थिर देखता हुआ)—विमलयानजी! मैं कहता था न, राज तो जनता का ही होना चाहिए! (घूमने की चेष्टा कर) साधु भी कभी राज्य कर सकेंगे? करेंगे भी तो इस तरह! मर गये—शत्रुओं की गरदन काटते-काटते पीढ़ियों खर्च हो गईं!

अब ऐसे सनकियों के हाथों शायद सब चौपट हुआ जाएगा! (पुनः स्थिर) मैं यह न होने दूँगा, यानजी! भगवान रुद्र को साक्षी! मेरे जीते-जी यह न हो सकेगा, कभी नहीं! राष्ट्र की रक्षा के लिए मैं प्राणों की बाज़ी लगा दूँगा—मैं इस महा-राष्ट्र का सेवक हूँ; राजा मेरे लिए राष्ट्र का मनोनीत देवता है—पर जब वही समूचे राष्ट्र पर वरदान के बजाय अभिशाप बरसाना चाहता हो, तब मैं उस मूर्ति को चूर-चूर—भूला, तब मैं उसे कह देना चाहूँगा यह न होगा! सौ-बात की एक बात, जब तक राष्ट्र का एक व्यक्ति भी ऐसे प्रस्तावों का विरोधी होगा, तबाँ तक एक पत्ता तक तोड़ा नहीं जा सकता, भगवान रुद्र की साक्षी!

कवि महेश—(कुछ भयभीत सा)—राजा की आन बड़ी बलवान् है; उसके सामने किसकी चलती है, फिर?

काँधल—(आवेश में)—भूलते हैं, कविजी! राजाज्ञा से बलवान् (तलवार पर हाथ रख) इसको आज्ञा! इससेभी अधिक बलवान् है संघटित राष्ट्र की इच्छा, उसका महासंकल्प! काँधल चाटुकारिता नहीं जानता!

कवि महेश (कुछ सहम कर)—यह तो सब ठीक है पर मान लो, अन्नदाता ने भरी सभा में ऐसी घोषणा कर ही दी, तो आप करेंगे क्या?

काँधल—(उसी तरह)—मैं क्या कर सकता हूँ, वह समय बता देगा!......

विमलयान—(घबराया-सा)—हमसे कोई न पूछे, और यों

अपने-आप वर का बाप ! 'मान-न-मान मैं तेरा मेहमान !' चलो भी, होनहार होकर ही रहेगा !......

काँधल—(जल कर)—नमक खाया है ; नहीं तो बता देता, होनहार कैसे होकर रहता है। (कुछ नम्र होकर) हुँ ! पर अभी हाय-हाय करने से फ़ायदा ? चलिए, देखा जाएगा—अन्नदाता अपने में भी तो न थे ! चलिए—(जाते हैं।)

गोपाल सिंह—(अकेला दूसरी ओर जाता हुआ)—राणा सबको स्वतंत्र कर देते हैं तो इन सबके बाप का क्या बिगड़ा जाता है ? उन्होंने जीता, उनकी मरज़ी ! पर मेरे जीव ! कुछ समझ में भी तो आवे ! जीते हुए देश स्वतंत्र कर देंगे तो फिर जीते ही क्यों थे ? बच्चे को दूसरों की गोद ही रख देना था, तो पैदा ही क्यों किया ?...

(प्रस्थान)

चौथा दृश्य

[समय आधी रात । स्थान—ऊदा के अन्तःपुर का तीसरा मंज़िल । ऊदा और रानी ।]

ऊदा—(अकेला, हाथ कमर से बाँधे घूमता हुआ)—क्या करूँ, क्या न करूँ? किससे पुछूँ, किधर जाऊँ? सब को स्वाधीन कर देंगे महाराणा? मेरा रोम-रोम जल रहा है, जब से मैंने तुम्हारी यह विनाश-वाणी सुनी है! ओह! बुड्ढे! तुझे क्या सूझा है यह? (रुक कर) क्या यह तेरा प्रलाप है? गोपालसिंह! तुम मूर्ख हो, और जेतसिंह! तुम क्या खाकर समझोगे! ये चालें मैं खूब समझता हूँ, यह उस दिवालिये का प्रलाप नहीं है! (वापस घूमने का उपक्रम कर) साधु महात्माओं का सत्यानाश हो, जिनके सिखाये, जिनकी संगति में रह कर यह खुर्राट मेरा निकन्दन निकालने बैठा है (रुक कर) क्या करूँ? अच्छी आफ़त

में फँसा है तू हतभाग्य ! (निःश्वास रखकर) यह हृदय काँप उठता है, तुम्हारा प्यार, तुम्हारी ममता लात मार देती है, उस भयानक स्वप्न को, नहीं तो (सिर घूमना, झुंझलाकर चारों ओर देख) यह रात भी जैसे हृदयहीन एक राक्षसी है, जो बादलों के बाल खोले ताण्डव करती है ! मेरा मनोरथ—मेरा मनोरथ ! मेरा स्वप्न श्मशान की अधजली चिता की भाँति धाँय-धाँय हो रहा है ! मार दे ऊदा ! ये मोह के बन्धन हैं—झूठे ! बिलकुल गलत, माया ! मार दे लात, दे दे तिलांजलि ! (स्थिर, पर उत्तेजना के साथ) पुरुषार्थियों को सिद्धि के सिवाय दूसरा नाता कैसा ?(घूमता हुआ) ठीक है, सिद्धि के सिवाय दूसरा नाता कैसा ? माँ-बाप ? कुछ नहीं—सब झूठ ! ओह ! भैरव ! मेरे रोम-रोम में पैशाची उन्माद भर दो ! नोच लो, इन आँखों में उभरती हुई अनुराग की स्मृतियों को ! तेरा सुहाग, माँ ! ओह ऊदा ! (पुनः चारोंओर देख) सारे संसार को वशीकरण मन्त्र से बाँध देनेवाली यह रात मुझे सुख की नींद न दे सकी ! क्या यह मेरा हतभाग्य कल्पित कर लज्जाहीन की तरह हँस रही है ? जैसे कोई पिशाचिनी हो ! क्या भैरव-शिष्य की वाणी सत्य न होगी ? (कुछ घूमता हुआ) क्यों नहीं ? जिसके जादू से उनकी जीवन हीन छाती से अभि-शाप की वाणी निकलती है, उसकी कृपा क्या नहीं कर सकती ? अमावस्या को पुट्ठे भेज दूँगा, अवश्य भेज दूँगा—शायद भैरव प्रसन्न हो जायँ, तब—तब क्या चाहिए ? (कुछ स्वमुखरित हो, कुछ रुककर) ओह ! भैरव, मुझ पर अनुग्रह करो ! इस बूढ़े का

जल्दी नाश कर दो! अकेले अन्धकूप से मेवाड़ को लेकर करूँगा क्या? क्या रखा है, झोपड़ों, जंगलों और पहाड़ों का अदना राणा बनने में! क्या सर फोड़ूँ पहाड़ों से? भैरव!......

[रानी का धीरे-धीरे, पर विकलता-पूर्वक प्रवेश।]

यह बुड्ढा सब कुछ लुटाने बैठा है—तब क्या साम्राज्य मेरे भाग्य में नहीं है? भैरव-भैरव! मेरी सहायता करो! नाश कर दो इस मूर्ख प्रलापी वृद्ध का!...

रानी—(शांत, पर डरावने स्वर में)—स्वामि!...

ऊदा—(वैसे ही)—कुछ नहीं! यह बुज़दिली है—कायरता है; नामर्दी है! उदय! तुम मर्द हो मर्द! धान्यपुर के युद्ध में तुमने भागते घोड़ों को चीर डाला है! दूर कर दो, यह नपुंसकता! कुछ नहीं, पिता-विता कुछ नहीं! काली, हे भैरवी! मेरे कलेजे में आ बैठो! मेरे हृदय को सूखा मांस-पिण्ड बना दो! मेरा आत्मा अन्धकार से भर दो—भर दो!...

रानी—(चौंक कर डरती हुई)—नाथ...! (कुछ पास जाती है।)

ऊदा—(जैसे खुद को उत्तर दे रहा हो)—हुँ? भर दो भीषणता से मेरा कलेजा! भूल जाऊँ, जिससे ये ही मोह-पाश! कहीं—कहीं वह घोषणा न कर बैठे! ऊदा!! पर—पर कैसे कर बैठेगा? कदापि नहीं हो सकती वह घोषणा! कैसे निकलती है वह विनाशी वाणी, देखता हूँ! यह मेरी कटार...

रानी—(पास आ कन्धे हिलाकर)—सुनते हो?

ऊदा—(चौंककर स्वप्न-जाग्रत सा)—हुँ? क्यों? ऐं?...

कौन? तुम हो? मेरे पीछे-पीछे क्यों आई? पूरे दिन पर इस तरह आधी रात तक जागते रहना ठीक नहीं है, प्रिये!...(निश्वास रख आकाश की ओर देख)—दिन में हिलोरें मारनेवाला शशि-कला-सरोवर अन्धकार में कैसा छिप गया, नहीं?...

रानी—(आतुर व्यग्रता-पूर्वक)—अभी-अभी आप क्या बोल रहे थे, अकेले?

ऊदा—(आत्म-संवरण करता हुआ)—कुछ नहीं, कुछ भी नहीं! बहुत कोशिश करने पर भी नींद न आई—उठ आया! इन टिमटिमाते हुए तारों को देख कर जी बहला रहा था। तुम जाओ; सो जाओ। उसे दुःख मत दो, जो थोड़े ही दिवसों में इस विपंची अन्धकार-पूर्ण संसार में अवतरेगा। इस कामना-जर्जर जीवन को जीने अँह! होगा; जाओ; इस समय मुझे अकेला छोड़ दो, प्यारी!

रानी—(कुछ याद कर जैसे डरती हो)—आप-आप बड़े भयानक दिखते हैं! जैसे—जैसे, ओह! तब क्या वह सपना न था? (हहर ऊदा के कन्धे पर शिर टिका) प्रियतम! मुझे अभी, अभी बड़ा भयानक सपना आया, स्वामी! चिल्ला कर जाग पड़ी!...

ऊदा—(अपने विचार में लीन होता हुआ)—भयानक स्वप्न! हँ-हँ-हँ!! मैं स्वयं जैसे एक महाभयानक सपना हो गया हूँ! कैसे कर पाऊँगा वह? मैं—हाँ, तो सपने से इतनी घबरा क्या रही हो? सपने भी कभी सच होते हैं—होंगे? (अन्धकार में देखता है) .. . .

इतना प्रेम, ओह ! राणी, पर तुम नहीं जानतीं कि मेरा महल आँधी के थपेड़ों से गिरने को है ! 'मत चूके चौहान' ऊदा ! तुम पुरुष हो, पुरुष ! और यह भी शायद विधाता का इशारा है ! विधाता, (चारों ओर देखता हुआ) काले—चिताओं की ढेरियों से भरे ऊबड़-खाबड़ श्मशान के समान संसार को चलाने वाली—विधाता—असीम साहस की देवी विधाता—भी यही चाहती है ! तब ऐसा ही होगा ! तुम मर्द हो, वीर हो ! सोते हुए शेर को ठोकर से जगा तुमने उसकी आँखें निकाली हैं ; तब इस ब्राह्मण की गरदन दबा देना क्या कठिन है ? कुछ नहीं—(कटारी निकाल जैसे भोंक रहा हो) क्या कठिन है ? बस, इतना ही तो काम है, इतना ही—

राणी—(मूर्छा में ही)—ओ माँ !...

ऊदा—(जगाने की चेष्टा करता हुआ)—शी...ई...ई ! आँखें खोलो ! क्या फिर वही सपना ?

राणी—(सहसा जाग कर)—कहाँ गया ? कहाँ—?

ऊदा—महाराणी !

राणी—महाराणी ? उसने भी इसी तरह—इसी तरह बुलाया था !...

ऊदा—(टटार खड़ा करता हुआ)—सुनो !...

राणी—(भयभीत खड़ी रह कर)—हैं ?...

ऊदा—(कठोर तीव्र स्वर में)—मेरी बात सुनो ! राणा मेरा नाश कर देना चाहता है, समझों ? सारे जीते हुए राज स्वाधीन कर

देगा—स्वतन्त्र कर देगा ! शुभ अवसर की राह देख रहा है वह !

रानी—(कुछ समझ कर)—अच्छा ? ऐसा ! (शान्ति की जैसे स्वांस ले रही हो) इतना महान् त्याग !......

ऊदा—(जैसे बिच्छू ने डंक मारा हो)—रानी !...

रानी—(गंभीरता-पूर्वक)—यह तो देवता ही कर सकता है, महात्मा ! ओह ! यदि मुझे लड़का होगा, तो मैं भी उसे यही सिखाऊँगी ! कितना महान आदर्श ! ऐसा श्वसुर किस महाभाग को मिला होगा ? मेरे प्राणों के धन, मेरे जीवन के आदर्श सीता जी को भी नहीं—

ऊदा—(क्रुद्ध और भीषण स्वर में)—व्यर्थ की बकवाद मत करो और ध्यान देकर सुनो ! मैंने भैरव की सौगन्ध खाकर यह निश्चय किया है कि वह घोषणा न होने दूँगा ! उसे रोकने के लिए जो कुछ करना होगा, करूँगा—पृथ्वी को आकाश और आकाश को पृथ्वी में बदल दूँगा ! देखता हुआ भी मैं साँप नहीं पाल सकता ! समझती हो तुम ?...

रानी—तो-तो क्या ?...(अवाक्-सी देखती है)

ऊदा—(उसी तरह दृढ़ता के साथ)—तो क्या ? मुझे मदद न दे सको तो मेरे मार्ग में काँटे भी मत बिछाओ ! चुप रहो—मुँह बंद किये, मूक, समझी । मैंने—मैंने तो माया और ममता के सुनहले धागे तोड़ कर, छिन्न-भिन्न कर फेंक दिये हैं । उदय मेवाड़ का प्रथम सम्राट होगा—सम्राट ! मनुष्यों में महाराजा, देवताओं में भैरव, सर्पों में नागराज ! मेरे इशारे पर चौदहों

ब्रह्माण्ड बनेंगे—बिगड़ेंगे ! क्या धरा है इस जीवन में जो मैं चक्रवर्ती न हुआ तो ? कटरे से मेवाड़ का स्वामी होने से तो मर जाना अच्छा है ! मैं अपना मनोरथ पूरा करूँगा—चाहे सूर्य पश्चिम में उगे ! उसकी पूर्ति के बिना यह जीवन उल्लुओं की आँखों से देखते हुए अन्धकार के समान है ।

राणी—(भयभीत स्वर में)—क्या कहा ? अपने देवता-स्वरूप पिता की हत्या करोगे ? राज्य के लिए ?......(काँपने लग जाती है)

ऊदा—(अपने में उतरता हुआ)—चुप ! चुप !! चुप रहो !!! इस अँधेरी रात की घिनौनी हवा जाकर उसे सचेत कर देगी ! चुप ! कहीं काँधल को सपना दे आवेगी, साधु रायमल को मक्कार बना आयेगी ! चुप !! क्षेत्र की आँखों में शंका की आग जला देगी—खबरदार ! चलो, अन्दर चलो ! क्या देखती हो, यों पत्थर की मूर्ति की तरह मेरी ओर ? सिद्धि ! सिद्धि !! सिद्धि !!! घने अन्धकार में मुझे—मुझे ऐसा दिख रहा है, मानों—मानों मैं विशाल सिंहासन पर बैठा हूँ, अनेकों चँवरें ढुल रही हैं ! प्रथम वैताल मेरी कीर्ति गा रहे हैं ! काँप रही हो, क्षत्राणी होकर ? छिः ! दूर कर दो, अनुराग के इस आवेश को, ममता के बन्धनों को तोड़ दो, वज्र कर दो इस कमज़ोर हृदय को ! चलो—दिखा दूँगा कि मैं समस्त संसार पर राज करता हूँ ! जीवन की इस गुफ़ा में अधिकार की मदिरा पिओ—चलो ! बहुत देर हो गई ....। [मंत्र-मुग्ध सी रानी ऊदा के पीछे जाती है, जैसे अभिमन्त्रित]

पाँचवाँ दृश्य

[काँधल का आवास। समय, मध्याह्न। काँधल, चैत्रसिंह, विमलयान, आसकरण, महारावण]

काँधल—(चैत्रसिंह से)—सुना? सुना, आपने? अन्नदाता ने खण्डेलों से फिर विद्रोह न करने की प्रतिज्ञा करवा मुक्ति दे दी! लीजिये, आज वर्षों से जिनके मारे नींद तक न आती थी, उन वागियों को जीवित पाकर छोड़ दिया! कुछ गया इनका?'

चैत्र—(उछल कर जैसे)—अच्छा? मेंदपाटेश्वर की इस उदारता पर मैं तो न्यौछावर हो गया, दोस्त!'

काँधल—(घूरकर जैसे)—उदारता! मित्र, मैं उत्तेजित हूँ—अपने आपे में नहीं हूँ, क्षमा करना! मैं इसे आराजकता, उच्छृङ्खलता और न मालूम क्या-क्या कहता हूँ! यह उदारता है!

ऑं: ! उदारता आई है ! राणाजी का कुछ विगड़ा ? सैकड़ों सैनिकों ने हथेली पर जान ले, अपना रक्त वहा कर, इन उड़ते गीधों को पकड़ा, आज वेवकूफ़ी के मारे सारा परिश्रम व्यर्थ हो गया ! मुझे तो आज विश्वास हो गया, कहीं महाराणा वह मन्तव्य भी पूरा न करें ! वह भी उदारता होगी, क्यों ? महान् उदारता है न ? ऑंह् ! सैड़कों वर्षों से हमारे पूर्वजों के पवित्र और अमूल्य रक्त से, मँहगे माथे भरकर जो महाराज्य स्थापित किया गया है, वह ऐसी थोथी उदारता के गुब्बारों में उड़ा दिया जायगा ! भगवान् रुद्र की साक्षी ! मैं इसे देख नहीं सकता, मैं स्वदेश लौट जाऊँगा —

आसकरण—क्यों, क्यों ? काँधल जी ! इसमें गुस्सा होने की फिर क्या वात है ? मैं महाजन हूँ, आप मुनीम ; आप पीढ़ी की व्यवस्था कीजिये, मैं चाहूँ, वह लूँ- दूँ ! इसमें फिर नाराज़ होने की ज़रूरत ही कहाँ है ? जिसका राज, उसकी मरज़ी ! तिलांजलि रखो ऐसी भांज-घड़ पर ! मैं तो आपको अपने यहाँ का निमंत्रण देने आया था— ख़ुद आया, क्या करूँ ?......

विमलदान—(ध्यान पूर्वक आसकरण की ओर देख कर) आज सुना है, मैं तो अभी गया नहीं—कि हुज़ूर की तबियत अधिक ख़राब हो रही है । सेनापति का ऐसी अवस्था में रहना बहुत आवश्यक है । मैं तो यही कहूँगा कि.......

महारावण—(सहसा)—अब और अधिक क्या ख़राब होगी फिर ? अब तो करताल लेकर नाचना बचा है ! ऐसे झक्की

को राजा क्यों बनाया परमात्मा ने ? यह परमात्मा मुझे मिल जाता, तो गले की सौगन्द ! उसे विशाखापोल के पास कोड़ों से पीटता ! ईश्वर !!......

काँधल—(गंभीर मुद्रा के साथ)—अच्छा होता हुजूर वाण-प्रस्थ ग्रहण कर लेते ! मैं यह मानता हूँ, ईश्वर में लौ लगाना सच्चे वीरों का काम है; पर राजा का रामनाम राष्ट्र की सेवा है—

विमलदान—बात तो बावन तोले पाव रत्ती कही ! भला, इसमें भी कोई सन्देह है ? मेरे विचार से हम लोग चलकर अन्न-दाता से वाणप्रस्थ ग्रहण के लिए प्रार्थना करें, क्यों ?

काँधल—(अपने आपसे लड़ता हुआ जैसे)—मैं भी यही सोच रहा हूँ—

चेत्रसिंह—(सशंक सबको घूरकर)—क्यों ? हम यह कहने-वाले कौन होते हैं ?

काँधल—(चौंक, उत्तेजित हो)—प्रजा, जनता ! राज के हितेच्छु ! राष्ट्र के आधार !! और सुनना चाहते हो ?

चेत्रसिंह—(सहकर, स्थिर करता हुआ)—काँधल ! मैं देख रहा हूँ, जैसे आपने ही पितृदेव को गद्दी पर बिठाया है !......

काँधल—(जैसे तमाचा लगता है)—चेत्रसिंह ?

चेत्रसिंह—(उसी तरह)—मैं साफ़-साफ़ सुना देना चाहता हूँ, काँधलजी ! हम, आप केवल चिट्ठी के चाकर हैं, और कुछ भी नहीं। उनका राज्य है, उनकी भूमि है, उनकी प्रजा है !! सब

कुछ उनका है; हमें लेना और देना! उनकी इच्छा होगी वह होगा; होता आया है और हुआ करेगा!

कांधल—(आत्म-संवरण करता हुआ)—यह बात है! अच्छा, भगवान् रुद्र की शाक्षी! क्षेत्रसिंह जी! यह व्यंग्य मैं अपने लिए सह लेता हूँ; पर कह देता हूँ, राष्ट्र के लिए कदापि नहीं सह सकता! यह थप्पड़ गहरा लगाया, आपने! सब कुछ उनका है, उनकी इच्छा होगी, वह होगा! अच्छा, पर मैं आज अभी कह देना चाहता हूँ, मैं राजा इसलिए हूँ कि प्रजा का हृदय मुझे अपना राजा—अपना पिता, अपना पालक माने बैठा है; मानता है! अन्यथा, राजा प्रजा के हाथों का मनचाहा खिलौना भर है! जब आपने साफ़-साफ़ कह दिया; तो मैं भी साफ़-साफ़ सुना देता हूँ, राजा प्रजा से है; राजा से प्रजा नहीं! प्रजा के लिए राजा है, राजा के लिए प्रजा नहीं है। समझे? महाराणा ने अपना वह मन्तव्य पूरा किया, तो परिणाम अच्छा न होगा......

क्षेत्र सिंह—(व्यंग्य से)—तो क्या आप विद्रोह करना चाहते हैं?......

कांधल—विद्रोह! किसके विरुद्ध विद्रोह करूं? धर्म-संकट है। जिसके अन्न से यह देह पला, जिसकी छत्र-छाया में मेरे बाप-दादे फले-फूले, जिसके चारों हाथ मेरे ऊपर हैं उस स्वामी के विरुद्ध उठना? हे भगवन्! कांधल को सुमति देना!! यह नमकहरामी मुझ से न होगी! (स्वगत) पर वीरों के परिश्रम को यों अँजलियों में ढुलते मैं क्या देख सकूँगा? नहीं—नहीं,

भगवान रुद्र की साक्षी ! नहीं ! पर क्या करूँ ? खण्डेलों की मुक्ति के बाद मुझे विश्वास हो गया, महाराणा अवश्य अपना कहा करेंगे। अवश्य ! आह ! उस समय मेरी यह छाती टुकड़े-टुकड़े हो जाएगी......'

विमलदान—श्रीमान को इतना विकल होने जैसी तो कोई बात—

काँधल—(न सुनकर) मैं जीऊँगा कैसे ? रणभूमि के बिना यहाँ नींद किसे आती है ? साम्राज्य-हीन राष्ट्र ! युद्ध-भीरु जाति ! निर्बल, कायर पशुओं का एक झुण्ड ! उफ़ ! काँधल ! जब विजय का अवसान हो जाएगा, वीर प्यार करेंगे किससे ? क्षेत्र-सिंह जी ! वीरों से हीन, योद्धाओं से रिक्त मेदपाट उस समय मेरे काम का न रहेगा, भगवान रुद्र की साक्षी ! सचमुच, सच-मुच ! मैं इस दिन को देखने के पूर्व ही स्वदेश लौट जाऊँगा—स्वदेश ! मन तो होता है, जनता को यों भूल अपने हौसले पूरे करने वाले इन ऐसे मौरूसी शासकों के विरुद्ध......पर क्या करूँ ? मरते हुए पिता की सद्गति के लिए दिया गया वचन आज मुझे यों तटस्थ रख रहा है। वचन, मित्र !......

विमलदान—(कुछ हँसने की चेष्टा कर) स्वदेश पधार जायेंगे, तो आजीवन चाकरी की प्रतिज्ञा कैसे निभेगी ? यह हो थोड़ा सकता है !

काँधल—नहीं, यही होगा—यों तो जिस दिन, जिस घड़ी मेवाड़ को काँधल की आवश्यकता होगी, काँधल कमल-पूजा

करने दौड़ा आयगा। (सहसा ऊदा का प्रवेश।) हें ! श्रीमान् !...,

[सब खड़े हो जाते हैं और अभिवादन करते हैं।]

चेत्रसिंह—पधारिये, अच्छे आये दादा ! काँधल जी स्वदेश लौटे जा रहे हैं—कुछ समझाइए !

ऊदा—(सबका सलाम झेलकर)—आप लोग चौंकिये नहीं। शिकार के लिए निकला था, सोचा मिलता चलूँ। घर के लोगों से फिर राज्य-विवेक कैसा ? क्यों ? स्वदेश क्यों लौटना चाहते हो, काँधल जी ? महाराणा के जय-जयकारों से तो सारा कुम्हल-गढ़ डोल उठा है ! फिर ? क्या दाता ने उचित स्वागत-सम्मान न किया...... (आसन ग्रहण करता है।)

काँधल—(कुछ विनय-भाव से)—मुझे खण्डेलों की मुक्ति खटक रही है, श्रीमान् ! यों तो प्रेम की मीठी नज़र ज़हरीले घावों तक को रुझा देती है—

ऊदा—(अध्ययन करता हुआ)—हुम् ! पर खण्डेलों तक ही महाराणा औदार्य रुक रहे, यह बात नहीं है, काँधल जी ! सुना है, महाराणा अब तो वह कार्य करना चाहते हैं, जो आज दिन तक किसी सम्राट ने न किया होगा !

महारावण—और करेंगे क्या ? अपने पैरों आप कुल्हाड़ी मारेंगे ! सब विजित देश स्वाधीन कर देंगे ! तो कर दो न—छुट्टी तो मिले !

ऊदा—(संयत मुलक के साथ)—हमें चाहिए, तन-मन-प्राण

से अन्नदाता को मदद दें ! वीरों के बिना ऐसे अलौकिक कार्य पूरे नहीं पड़ते।...

महारावण—(उत्तेजित-सा)—अविनय क्षमा हो ; पर मैं अलौकिक-फलौकिक नहीं जानता ! मेवाड़ के अधीन कोई न रहेगा, तो मैं प्रश्न करता हूँ, महाराणा के अधीन कौन रहेगा ? यह तो साँप को दूध पिलाना है, दूध !

ऊदा—आप लोग अन्नदाता पर अन्याय कर रहे हैं ! वे तो संसार भर को मुक्ति देना चाहते हैं।

काँधल—(सहसा उत्तेजित होकर बीच ही में)—पहले अपने-आप को और अपने राष्ट्र को तो मुक्ति दे लो ; फिर सारे संसार की सोचना !

ऊदा—(शान्त)—महाराणा चाहते हैं कि सब को मुक्त कर, स्वतन्त्र कर मेदपाट के सब पाप धो डाले जाएँ ! साम्राज्य भोगने वाली जाति के पाप काट डालने का यह सुगम-से-सुगम मार्ग है ! वे तो चाहते हैं, सारे राष्ट्र को ब्रह्मानुभव हो जाय ! तो इसमें बुराई ही क्या है ? अशोक ने रण-भूमि को उद्यान बना डाला ; महाराणा यह कर रहे हैं—

काँधल—(वैसे ही)—राष्ट्र की मुक्ति ? वह तो एक शंख में, एक गदा में है ! उसका निर्वाण लम्बे-चौड़े साम्राज्य में है ! भगवान रुद्र की साक्षी ! जिस जाति के पास अपने पुरुषार्थ के फल-स्वरूप साम्राज्य नहीं, वह भी क्या महान जाति है ? जिस के पास अनुचर नहीं, सेवक नहीं—अधीनस्थ नहीं, उसकी प्रभुता की क्या निशानी ? राष्ट्र की मुक्ति ? अँह, वह ब्रह्म में मिल कर नहीं,

उसकी मुक्ति तो उसकी श्री—सम्पन्नता में है ! राष्ट्र की उन्नति राष्ट्र की वाहिनीयों की कूच के साथ-साथ प्रगति करती चलती है ! श्रीमान् ! महाराणा से क्या कहा जाय ? युगों का यह भवन यों ढाह देना चाहते हैं ! मेरी तो नस-नस ठंडी हो जाती यह सोच कर ! पर क्या किया जाय ? हमारी शमशीरें, हमारा बल सब कुछ आज बेबस है ! इस महात्मा का अपमान करने की हिम्मत मेरी छाती में नहीं ।......

ऊदा—(घूर कर)—यह तो है ही ! मैं स्वस्थ्य चित्त महाराणा से मिल कर यहाँ चला आ रहा हूँ । वे फ़रमाते हैं, संसार पागल है । हम लोगों का, हम सांसारिकों का स्वार्थ हमें उनके इस दिव्य और अमर कार्य की ज्योति नहीं देखने देता और आप यह कह रहे हैं—

काँधल—संसार पागल है, मैं नहीं मानता यह ! संसार मूर्ख है ! श्रीमान् ! यदि हमारे पूर्वज आर्यावर्त के निवासियों से विजय-युद्ध न करते, तो आज हम यहाँ होते ? स्वयं आर्य-धर्म आर्य-नृपति को पृथ्वी-पति कहता है ! और फिर—

[गोपाल सिंह का सहसा प्रवेश ।]

गोपाल सिंह—(हर्षोल्लासित)—मेरे जीव ! नाचो, कूदो ! राग-रंग रचो ! मेरे जीव ! कुछ समझ में भी तो आये । मेरे भतीजा हुआ, अभी दो घंटे पहले ! मैं श्रीमान को खोजता-खोजता यहाँ दौड़ा आया हूँ, पुरस्कार लेने !—(पल्ला फैला ऊदा के सामने घुटने बैठने की चेष्टा करता है ।)

विमलदान—(विभोर से)—वाह ! रे एकलिंगनाथ ! वाह !! अन्त में अन्नदाता का बुढ़ापा सुधार दिया ! धन्य है मेरे नाथ ! धन्य, जुग-जुग जीओ मेरे राजवी !! अजर रहो, अमर रहो !!

काँधल—बहुत शुभ हुआ ! सचमुच, भगवान रुद्र की शाक्षी! बहुत अच्छी खबर लाये गोपाल सिंह जी ! स्वदेश जाने के पहले हुज़ूर को बधाई दे आऊँ ! हो सका, तो समझा भी आऊँगा, क्यों क्षेत्रसिंह जी ?

आसकरण—(साश्चर्य ऊदा से)—श्रीमान् तो जैसे सुख-दुःख से उदासीन हों ! पुत्र होने की ऐसी मंगल ख़बर सुनी, पर ख़ुशी की झलक तक न आई ।

ऊदा—(शान्त भाव, गोपाल के साथ)—इसमें ख़ुश होकर नाचने की बात ही क्या है ? ये तो संसार के काम हैं, होते आये हैं; होते रहेंगे ! महाराणा की बातों ने मुझे जैसे प्रकाश दे दिया ! आप लोग मोह में हैं, मैं ठीक कहता हूँ !......

क्षेत्रसिंह—(हर्ष प्रगट करता हुआ)—हर्ष के अवसर पर गड़े मुर्दे उखाड़ने से क्या फ़ायदा दादा ! ? इस समय श्रीमान् की ख़ुशी में हमारी ख़ुशी है—श्रीमान ही जब यों—

काँधल—यह तो है ही ! जीवन में ऐसे अवसर हमेशा नहीं आते !......

विमलदान—वृद्ध शरीर के साथ वैराग्य ऐसे प्रलापों का कारण हो ही जाता है। श्रीमान् को यह कहाँ कहना पड़ेगा ?

स्वयं सब समझते हैं! महाराणा की अवस्था भी तो देखिये—

महारावण—हाँ, इसे हम पागलपन कह सकेंगे, और क्या? चलो, अभी बातों-बातों में इस विषय पर......

आसकरण—(बीच ही में) समझा भी दिया जाय!...

काँधल—अवश्य! अवश्य! चलिये श्रीमान्! इस समय सब भूल जाइये! यह विपत्ति आप ही की नहीं, सारे मेदपाट महाराज्य की है। राष्ट्र पर जीवन-मरण की घड़ियाँ झूम रही हैं जैसे! पर आनन्द के इस मांगलिक प्रसंग पर हम अपना कर्तव्य न भूलें—

ऊदा—आप लोग व्यर्थ खुशियाँ मना रहे हैं। राष्ट्र की विपदा! अहँ! मुझे उसका तनिक भी विचार नहीं! जो भाग्य में बदा है; होगा! हमें चाहिए, जीवन की ऐसी घटनाओं को तूल न दें! महारावण कहते थे—स्त्री, पुत्र, धन, राज्यपाट, सभी अचित्य हैं; अतः उन्हें त्याग देना चाहिये! वे फ़रमाते हैं, स्वतन्त्रता की प्रतिष्ठा से मनुष्य-जाति के कई रोग मिट जाएँगे! अन्नदाता झूठ थोड़े ही कहते हैं—चलिये! कहिये वहाँ चलें! हर्ष और शोक, राजी और ख़ुशी फिर इस झूठे जीवन में क्या? यह देह और दुनियाँ नाशमान है! ऐसा महाराणा कह रहे थे—

[जैतसिंह का प्रवेश।]

जैतसिंह—सुना कुछ? क्या कहूँ? कुछ नहीं कहा जा सकता! जब से दाता ने पौत्र होने की ख़बर सुनी है, पागल की तरह कभी नाचते हैं; कभी हँसते हैं; कभी रोते हैं! कभी चिल्ला

कर कहते हैं—सभी को मुक्ति मिलेगी; स्वतन्त्र ! स्वतन्त्र !! अवसर आ गया—अवसर आ गया ! और कभी फूट-फूट कर रोते हैं—

महारावण—देखा ? मैं कहता था न ! पागल हो गये !......

क्षेत्रसिंह—(चिढ़ कर)—न भी हुए होंगे, तो आप कर देंगे। कोसने के सिवाय हम दूसरा जानते ही क्या हैं ?......

[नगाड़े बजना; शंख ध्वनि।]

काँधल—जय मेदपाठेश्वर की ! जय एकलिंगनाथ की !...

विमलदान—चलो, अन्तरंग बैठक का यह......[नेपथ्य में डौंड़ी पीटने की आवाज़] फिर यह क्या ?......(सब रुक जाते हैं और ध्यान से सुनते हैं।)

ऊदा—ठीक नीचे से गुज़र रहा है—(आतुर साँस बाँधे सुनता है।)

(नेपथ्य में) गौ-ब्राह्मण-प्रतिपाल राजराजेन्द्र ईश्वर प्रतिनिधि हिन्दू-कुल-कमल-दिवाकर मेदपाटेश्वर की आज्ञा शिरोधार्य हो ! युवराज महाराज कुँवर जी के यहाँ पुत्र-जन्म के उत्सव पर दिवाली के दिन उसके मान में बड़ा दरबार होगा ! सबको यह आज्ञा शिरोधार्य हो ! सब को विदित हो ! उस दिन ख़ुशी में क़ैदियों को रिहाई दी जायगी। दान-पुण्य होंगे। साम्राज्य भर में उत्सव और जीते हुए सब इलाक़ों को सर्वदा के लिए स्वाधीनता प्रदान की जाएगी ! हुज़ूर को एकलिंगनाथ का ऐसा हुकुम है ! सब को यह आज्ञा वेद वाक्य हो—(डिमडिमा कर)

ऊदा—(क्षणभर स्तम्भित)—सुनिये, कान खोलकर सुनिये।

काँधल—(मौन तोड़)—शोक ! असीम शोक ! सच कहता हूँ, मुझे अब तक विश्वास न था, भगवान रुद्र की साक्षी ! कि महाराणा पागल हो गये हैं ! ओ ईश्वर ! मेदपाट पर तूने किस जन्म के पाप ला उतारे !......

विमलदान—हे जगदम्बे ! माड़ी ?......

काँधल—(सिर धुनकर)—यह पागलपन नहीं तो क्या है ? ओह ! तब क्या—कुछ ही दिवसों में यह लम्बा-चौड़ा, समुद्र की तरह भरा हुआ मेवाड़ छोटा-सा प्रान्त भर रह जायगा ? यह कैसे सहा जायगा ? कुछ ही वर्षों में शत्रुओं के रक्त की आदी वीरों की तलवारें, नराधमों के हृदय बींध देनेवाले शूरों के तीर जंग खा जायँगे ! रण-वाद्य पड़े-पड़े बोदे हो जाएँगे ! जौहर के विना भाटों की वाणी गूँगी हो जाएगी और सतियों का सत् छाती कूट-कूट कर रोयेगा ! योद्धाओं की हर-हर बम् और जय महादेव की रक्त-प्यासी हुंकारें पहाड़ों से टकरा लौट आएँगीं ! (हाँथ की मुट्ठियाँ मींभ) ओह ! वीर भोग्यावसुन्धरे ! तेरा वह द्रारिद्र्य किससे देखा जाएगा ? आप लोग जाइये ! मैं अब नहीं चल सकता ! महाराणा से कह देना, काँधल धर्म बंधन से बँधा है ! पर उसकी आत्मा रो रही है—उबल रही है ! मैं उस दरबार में न आऊँगा, और इसी घड़ी अभी मेवाड़ छोड़ कर चला जाता हूँ ! निपूती, निधनी इस भूमि में मेरा गुजारा नहीं हो सकता। हतभाग्य मेदपाट ! और हतभाग्य मैं !! महाराणा ! यह क्या किया ?

ऊदा—(चलता हुआ)—महाराणा ! पागल !! झूठ-झूठ !!

चेत्रसिंह—करोड़ दिवाली राज करो, अन्नदाता ! जो कार्य चन्द्रगुप्त ने, अरे जो राम ने न किया, वह आज मेदपाटेश्वर कर रहे हैं ! सच्ची मानवता यही है—यही ! ऐसा पागलपन सभी सम्राटों को नसीब हो ! कैसी शान्तिपूर्ण, स्मृक, पवित्र, सभ्य दुनियाँ होगी वह ? मैं भी सौगन्ध लूँगा, शिकार के अपने सब पशुओं को रिहाई दे दूँ।

[पर्दा पड़ता है ।]

छठवाँ दृश्य

[महल का आवास-मार्ग]

ऊदा—(जाते-जाते रुककर)—ठीक है, यही ठीक है ! काँधल जा रहा है, जाने दो ! विरुद्ध होता हुआ भी वह मेरा साथ न दे सकेगा ! उसके ललाट पर मैं स्वामिभक्ति के मंत्र लिखे देख रहा हूँ, स्वामिभक्ति ! (अपने आप प्रश्न) कहाँ तक—कहाँ तक बहा जाऊँ मैं ऐसी पागल नदी की निरुद्देश्य धारा में—कब तक ? कुछ भी तो निश्चित हो ! कोई भी आशा तो फले-फूले, कोई भी तो ! आज पैंतीसवाँ साल चल रहा है, आधा जीवन पूरा होने आया, आधा—ऊदा ! देखते-देखते यह रात, कुछ घंटों की यह रात समाप्त हो जायेगी और ये तारे—टिमटिमाती हुई अकेली कामनायें—ग़ायब हो जायेंगी । ओह यह जीवन; विवश, बँधा और हारा-सा जीवन भी ऐसा ही रहस्य हो गया ! (निश्वास भरकर) वह

दिन जैसे वह रहा, जिस दिन अपनी उमंगे कलेजे में दबा मुझे चला जाना पड़ेगा ! यह वृद्ध तो न जाने कब तक श्वास लेता रहे—न जाने कहाँ तक ? बड़ा योगी बना बैठा है ; शरीर से इतना मोह ! (घूमता हुआ, जैसे अपने आप से जिरह कर रहा हो) मैं धीरज रखे बैठा रह सकता था, चुपचाप रहने का प्रयत्न करता, पर जब सत्यानाश की बाढ़ आ रही हो—किसान चुपचाप कैसे बैठा रह जायगा ? संभव है यह ? कदापि नहीं ! (पुनः रुक कुछ खीझकर) अभी तक सभी समझे हुए थे कि राणा बहक रहा है—पागल भर है ; शहर की गली-गली में जब से डौंडिये की—सत्यानाश हो उसका—पिशाचवाणी गूँज उठी, तब से इस दुश्मन को पागल माने बैठना कहाँ की बुद्धिमानी होगा ? (असह्य-भाव से) ऊदा ! रग-रग में साहस भर ले ; बटोर ले रोम-रोम से कम्प और निकाल फेंक दे। पूछ ले इन नामर्दों के स्वेद-कणों को ! नहीं तो, विनाश, सर्वनाश के सिवाय कुछ हाथ न आयेगा ! पर—राणी ? मत देखो, मत देखो उस हिला देनेवाली दीन—अनुनय भरी कातर दृष्टि से मेरी ओर ; कुछ दिनों के लिए हो सके, तो मुझे अपने इस अटूट प्रेम-पाश से मुक्त कर दो, ईश्वर के लिए ! और मैं किसके लिए रुकूँगा, भला ? किसके अभाग की चीत्कार मुझे सिहरा देगी ; किसका नाश मेरे पैर पकड़ लेगा ? किसका ?? माँ-बाप, हूँ ? बाप ? यह बाप है ! नीच राक्षस नहीं तो क्या है ! आज वही उठकर मेरा यों शत्रु बना बैठा है, मेरा जड़-मूल से सर्वनाश कर दे रहा है ! फिर मैं

ही क्यों उसके लिए यों पिसता चला जाऊँ ? क्यों ? यह नहीं होगा—हर्गिज़ नहीं ! बहुत प्यार करता था, तो अब ? बड़ी ममता थी मुझसे ! हुँ ? यह घोषणा शायद उसी का उज्ज्वल उदाहरण है ! मेरी गरदन पर मेरी ही छुरी फेरते हुए बुड्ढे ! तुझे अरराटी न हुई—कम्पन न हुआ तुझे, धोखेबाज़ ! (कुछ चलकर आघात खाकर रुक कर) यह क्या दुर्दैव का थप्पड़ है ? जो ठीक महीने भर बाद ऊदा ! तुम एक प्रान्त के स्वामी भर रह जाओगे ! और वह भी न-जाने कब होगा ? शायद यह भी न बदा हो, इस निर्लेख भाग्य में, कौन जानता है ? क्या करूँ ? क्या करूँ तब, भैरव ! कुछ तो कहो—अरे, कोई तो कुछ कहो ! सभी मूक-सभी ! (चुपचाप कुछ दूर तक चलकर) माता ! जिसने जन्म दिया, पाला-पोसा, बड़ा किया ; पत्नी ! जिसका प्रेम स्वर्ग से बढ़कर है ; सन्तान ! जिसने जन्म सफल किया, मृत्यु सुधार दी—इतने, इतने कठोर भारी-भारी विषम बन्धन तेरे पुरुषार्थ के पैरों में । इतनी बेड़ियाँ ! हत्भाग्य ऊदा ! टटार हो ! अनुभव कर कि भैरव तुझ में राक्षसीय जड़ता भर रहे हैं ! कुचल कर, टूक-टूक कर फेंक दे सब कोमल भावनाओं को ! जब अवसर बीत जायगा, जीवन का स्वर्ग दुर्दैव की दुर्गन्धसनी लपटों में जल कर राख हो जायगा ! तब—तब क्या तू जी सकेगा ? नहीं—सम्राट ऊदा ! यह निर्बलता कैसी ! यह कापुरुषता कैसी ? साफ़ बचो इस विकराल भ्रान्ति से ! समझ ले, दिल में उतार ले इस समय कि यदि इस संसार में कोई सत्य है तो वह तू है—तेरा मनोरथ

और तेरी सिद्धि ! सावधान हो जा ! नामर्द न हो—महाराणा ! छत्रपति !! चक्रवर्ती महाराणा !! ऐसी छलाँग मार कि ये सप्त समुद्र लाँघ कर तू अपने स्वप्न के नन्दन में जा पड़ ! यही—यह कौन आ रहा है ? इधर ? रायमल ?...(अन्धेरे में हो जाता है)

[रायमल का चिन्तित भाव से बड़बड़ाते हुए प्रवेश ।]

रायमल—(अपने-आप सहज भाव से ठहर कर)—चाहे कोई महाराणा की पीठ न ठोंके—सारी दुनिया भले ही उन्हें भला-बुरा कहे—मैंने ऐसा देवता अभी तक न देखा। सच्चा त्याग, सच्ची क़दर, अरे ! सच्ची मानवता यही है ! यही—जवानी भर अथक परिश्रम कर साम्राज्य का भुवन खड़ा किया, वह यों सहज ही में—एक क्षण में सत्य की महिमा के लिए छोड़ दिया ! यह तो चन्दन के वृक्ष की तरह उदात्त कार्य है ; पतझड़ के समान झड़ कर सुखद मानवता के लिए जगह करना है ! (ओतपूर्ण आवेश के साथ) मैं तो नख-शिख में प्रेरणा से भर गया हूँ। अपना निराश जीवन आज जैसे प्रकाश से जलहला उठा ; जैसे—जैसे मैंने शान्ति पा ली ; नस-नस में संजीवन रम गया ! नहीं तो—छोड़ो उस दयनीय स्मृति को ! दयनीय हो तो ? (कुछ चल कर पुनः रुक कर) और क्या ? राजपुत्र ! कितनी बड़ी क़ैद है यह एक आत्मा के लिए ? कितनी भयंकर ; कितनी दुखद, कितनी संकीर्ण, घिनौनी, जी ?...जीवन क्या है, रायमल ? क्या है ? क्या वह शासन है ? नहीं ; क्या वह स्वेच्छा है ? अवश्य, नहीं ! तब क्या वह अहंकारपूर्ण सुखभोग—लाखों, करोड़ों

प्रणियों का बलिदान पाकर एक राक्षस की भाँति ऐश्वर्योपभोग है? राम-राम! छिः! कितना नीच विचार है, रायमल? मानों मस्तिष्क दुर्गन्ध से भर जायगा; हृदय निर्जीव हो उठेगा! रायमल, रायमल! (कुछ दूर चल कर पुनः कुछ घूमकर) तुझे मनुष्य बनना है, मनुष्य! छोड़ दे अपनी वासनान्धता को! जीत ले अपनी इन्द्रियों को, जो जीवन-मरण का कारण है; जीत ले! और तो क्या? हम तो प्रेम के ठुकराये, दुर्दैव के मारे हैं! अब क्या रह गया इस राज्य-सुख में, सारे संसार से अधिकृत सम्मान पाने में? सन्मान? श्री-सिद्धि? सम्पन्नता?? मैं इन सब को क्या करूँ? दयानिधान! मुझे मामूली किसान क्यों न बनाया? उसे पा तो सकता था? कितना मनोरम प्रभात था वह...... (चारों ओर देख कर) जैसे यह रात्रि पूर्णिमा में बदल गई! नीरव, आँचल के समान बिछा हुआ श्वेत-सौम्य खलियान और पुलाव की आग; रिमझिम ठण्डी! हृदय में त्याग, आजीवन ऐक्य की उष्णता! पर नाश हो इस राज-पुत्रत्व का—हे ईश्वर! अब रायमल के जीवन में क्या रह गया? उसके गुण, उसकी विद्या, उसका चरित्र—ओह, पचीस वर्षों की कठोर साधना वृथा गई, रण में बरसने वाली वर्षा की तरह वृथा! (फिर घूम चलना चाहता है।) आज संसार में एक अभिनव परिवर्तन होना चाहता है! वैसा परिवर्तन जो आज दिन आकाश-कुसुमवत् था; पर जैसे मैं वही हूँ, वही! हाय! रायमल! तुझे क्या हो गया? सचमुच! प्रेम से हीन जीवन पशुत्व है—विरह की आग में जलना काले

पापों का फल भोगना है। ओह! कहीं वे मूक, सदादिव्य स्मृतियाँ न होतीं तो—

[ऊदा धीरे-धीरे प्रकाश में आता है।]

ऊदा—(स्थिर दृढ़ स्वर में)—रायमल ?

रायमल—(चौंक, घूमकर)—कौन ? उदय ! यहाँ—

ऊदा—अन्तर्पुर लौटा जा रहा हूँ; तुमने मेवाड़नाथ की राजाज्ञा सुनी, न !

रायमल—हाँ, तो ?...

ऊदा—(कुछ तीव्रता-पूर्वक)—सेनापति, परिजन, उमराव, प्रजाजन, इष्ट-मित्र सभी कलप रहे हैं, रायमल !

रायमल—स्वार्थ के घाव हृदय को आँसुओं से भर देते हैं !

ऊदा—(व्यंग्य से हँस कर)—ठीक है। तुम-सा निस्वार्थ कोई कैसे होगा ? अच्छा; मुझे हर्ष है, तुम प्रेम के बुख़ार में बेसुध हो—

रायमल—(अवाक् से)—उदय !......

ऊदा—रायमल ! मुझे अब तक तो विश्वास न था कि हमारे वयोवृद्ध महात्मा पिता एक पागल हैं ! पर अब एक मूर्ख भृत्य से भी पूछोगे तो वह यही कहेगा कि महाराणा की बुद्धि विलीन हो गई। अब देखता हूँ, उनका यह पागलपन पिशाच की हँसी की भाँति, मूर्ख शिकारी कुत्तों की झपट की तरह अबाध होगया है— अबाध, नृशंस, उच्छृङ्खल ! पर, पर ठहरो ! इस सामूहिक नियति ने मुझे जैसे कातर कर दिया है, रायमल ! मैं भूल ही गया था, (सँभल कर) हम हाथ बांधे सिर झुकाकर खड़े होने के सिवाय

और कर ही क्या सकते हैं ! जो विधाता को मंजूर है, वह होगा। हम कौन, तुम कौन ? विनाशकाले विपरीत बुद्धि ! संहारवेद का यह सूक्त कितना अजेय, कितना अमर है, इसका आज सबको पता पड़ जायगा। होगा—हम तो अशक्त, पराधीन भीखमंगों की तरह हैं, जो अपने फटे आँचल दानी विधाता के आगे फैला देते हैं ! होगा—(घड़ी बजती है) क्या दूसरा पहर प्रारम्भ हो गया ? अच्छा—

[दोनों दो ओर चले जाते हैं।]

—

सातवाँ दृश्य

[नगर-चौरा । समय, सन्ध्या ।]

कवि महेश—क्या कहूँ आप लोगों से, अन्नदाता सरस्वती के अवतार हैं, नहीं तो भला इस युग में ऐसा त्याग! जनक से भी बढ़ गये, जनक से भी!...

पूनमचन्द—क्या पत्थर त्याग है! यहाँ बोले बिना रहा नहीं जाता! पर मैं काँधल की जगह होता, तो इशारे में अवश्य समझा देता कि राजन्, गुड़ गोबर मत कर दीजिये! हम से फिर व्यापार कौन करेगा? इस समय तो जहाँ आँखें दिखाते हैं, कि झट बाज़ार हाथ लग जाता है—फिर कौन श्वसुर पूछेगा हमें?......

जगमल—गुलाम हैं साले सब! स्वतन्त्र हो जायँगे तो निश्चय ही अपना व्यापार आप बढ़ा लेंगे; और ऐसा धता बतायेंगे कि, कुछ कहूँ! जगदीश की सौगन्ध! एक धेले का निकास सपना हो जायेगा!......अन्धेर है!

कवि महेश—आप लोग बड़े स्वार्थी हैं! अपने आगे औरों को देखते तक नहीं। राम-राम!......

काशीनाथ—कौन ऐसा काले वालों वाला आदमी है जी, जो अपना लाभ नहीं कूतता! और फिर ये सब कर्मों के खेल हैं—खेल! पराधीन हुए, तो हुए! किये होंगे मुर्गी नचावणियों ने काले काम! हम तो न हुए पराधीन कभी! होते कैसे? पुरखों से ध्यान-धारणा करते आ रहे हैं यहाँ! अब ये जन्मे हैं, जाति के शत्रु! मेरा बस चले, तो अनशन किये बिना न मानूँ!...कितना आदर-सम्मान है? जहाँ जाते हैं वहाँ सिर आँखों पर रहते हैं। क्या कहूँ, यह पिछले चौमासे—हाँ यही तो दिन थे—ईडर की ओर शिष्यों के साथ निकल गया था। महाशय, जहाँ गया, वहाँ सिवाय मिष्ठान्न के बात नहीं! उन पर राज करते हैं कि मखौल है—ये तो अब पैदा हुए हैं घर के घातक! शिव-शिव!!...

भवानी शंकर—कहाँ तो मैं सोच रहा था कि वृहद मेदपाट भर में राज्य-भक्ति, विद्याधर्म और विश्व-संस्कृति के सध्धर सन्देश देने निकल पड़ूँ और कहाँ यह उल्कापात! धत् तेरे की विक्षिप्त! यह करने क्या जा रहा है तू। मैंने राज्यनीति में किसी भी आचार्य को नहीं छोड़ा; इतिहास भी चाटे बैठा हूँ, कवि जी! पर कह देता हूँ, यह वज्र मूर्खता हो रही है। ऐसा अब तक किसी भी जाति के इतिहास में न हुआ। क्रान्ति होगी क्रान्ति, कह रखता हूँ! अति सर्वत्र वर्जयेत्!......

कवि महेश—क्या रखा है यारो, इन बातों में! दूसरों

का भी तो कुछ ध्यान रखो! कहाँ तो यह समझना कि हमारे महाराणा ने सारे संसार को पाठ सिखा दिया! सच्ची स्वाधीन वह जाति है जो दूसरों को अपने समान स्वाधीन जीने देती है— यह सोचते नहीं और मुफ़्त में यह काँव-काँव मचा रखी है! (कुछ उत्तेजित) मालूम होता है, शाशक जाति के दिमाग़ सातवें आसमान पर रहा करते हैं। पर ध्यान रहे, यह सरस्वती का पूत बोल रहा है कि तुम आज तो दूसरों को ग़ुलाम रख रहे हो— दिन आयेगा तुम स्वयं एक दिन हथकड़ी-बेड़ी पहनोगे!......

सूर्यसिंह—(निस्तेज-सा)—बड़ी मुश्किल है। यहाँ तो जब से यह सुना है, तब से अक्ल चर्ख़ हो रही है! जैसे कुछ सूझता ही नहीं। समझ रहा था, मेरा चतुर काशी से लौटेगा, तो कहीं का मंत्री बनवा दूँगा! महामान्य दीवान मेरे घर के से आदमी हैं! पर अब क्या? वे खुद बेचारे पड़े कलप रहे हैं। कह रहे थे, कुछ करो मिलकर। उफ़! सब जैसे चौपट हो गये! इसे कहते हैं—दिनों का फेर!......

एक सैनिक—तुम सबको अपनी पड़ी है; यहाँ तो जान बची लाखों पाया! यह हरहमेश का उठ-उठ कर युद्ध के लिए भागना तो बन्द होगा।......

सूर्यसिंह—बड़ी मुश्किल है। मना क्या रहा था, हो क्या गया? यह तो मानना पड़ेगा कि अन्नदाता बड़े जीवट के आदमी हैं—बड़े हौसले के! बड़ी मुश्किल है। पेट और मौज, शौक़ मुँह पकड़ लेते हैं, पर अन्तरात्मा तो यही कहता है कि यह ठीक है,

यह ठीक है। उफ़ ! ये म्लेच्छ भारत में आते ही क्यों, जो एक दूसरे को जीतने की अभिलाषा न रखता। यह देखो, मेरी इकावन पीढ़ियाँ लड़ाई में खर्च हो गईं। यह तो अब मेरे और प्रधानजी के घर-घरू जो है—यह तो अबकी तलवार म्यान में सुला सका हूँ—बड़ी मुश्किल है ! मना रहा था मेरा चतुर—

कवि महेश—यह बात है, मेरे निजात्मन् ! यही तो अन्नदाताधिराज मुझसे आज कह रहे थे। दुनिया भर के राष्ट्र आपस में स्वाधीन और भाई-चारे से एक दूसरे को मदद देते रहें, तो यह संसार वह नन्दन वन हो जाय, जहाँ हमेशा सोलहों कलाओं का चन्द्र चमकता रहे, कोयल गाती रहे, सोने की ओप को ठुकरावे, ऐसी कोमलांगिनियाँ अजर-अमर बनी रहें ! मनुष्य पशु हो गया है, पशु ! गौ ब्राह्मण प्रतिपाल का कथन है, जो जानवर भी उससे अच्छे हैं—जानवर ! हुजूर फरमा रहे थे कि मनुष्य दूसरे को भी अपने जैसा माने तो दुख दारिद कट जाएँ, दुनिया के !......

पूनमचन्द—कवि हैं न आप ! कल्पना लोक की अप्सरा, परी ? घोषणा कृतार्थ तो होने दो—फिर पता पड़ेगा जैसे जादू की लकड़ी कोई चुरा गया ! हाँ जी, सूर्यसिंह जी ! आप तो राजद्वारी हैं। महाराज कुँवर का क्या अभिप्राय है इस लंकाकाण्ड पर ?

सूर्यसिंह—दीवानजी कह रहे थे—वे तो मेदपाटेश्वर के गुण गा रहे हैं। उहुँ, बड़ी मुश्किल है !...

पूनमचन्द—गुण गा रहे हैं, या अपने फूटे भाग्य को रो रहे हैं ? बेचारा अब एक छोटे-से मेवाड़ का मालिक होगा।

काशीनाथ—क्यों जी ? सुना है सेनापति इस घोषणा से नाराज़ होकर स्वदेश लौटे जा रहे हैं ; चले भी गये हों, तब भी कोई आश्चर्य नहीं। वह अड़ जाता, तो शायद कुछ बात बनती। जगदीश ! रक्षा करे ; इसका पागलपन तो सबको ले डूबा...

एक कलाल—मुझे मेरी मदिरा की बिक्री का भय है। महाराज भर में बिकती है ! फिर न जाने क्या हो ? सुना था, इस डौंडी के विरुद्ध कोई सभा-बभा होने वाली है। सोचा चलूँ कुछ कह-सुन आऊँ। ये जब अपनी उन्नति आप करेंगे, तो व्यसनों को अवश्य लात मारेंगे। हे कालीमाई ! कुछ भख ले, पर यह हत्याकाण्ड रोक, माई !

सैनिक—यह सभा ही हो रही है कि नहीं ! बहुत मँहगी मदिरा बेचता है, सूअर ! अब पता पड़ेगा तुझको ! महाराणा तो पागल हो गये हैं, तू क्यों बोखला रहा है ?

भवानी—महाशय ! जरा सभ्यतापूर्वक बोलिये। हम लोग यहाँ महत्व की बातें सोचने के लिए मिले हैं ; गाली-गलौज के लिए नहीं।...

[कुछ और नागरिकों का प्रवेश।]

जगमल—(सहसा कुछ दूर देख कर)—वह क्या ? काँधल !

[कुछ दूर पर काँधल का अपने सैनिकों के साथ पसार होना।]

सूर्यसिंह—हाँ, वही तो ! मुँह लेकर जा रहा है—मुँह लेकर !

पूनमचन्द—उसके अधर मानों फड़क रहे थे। आँखों में क्रोध देखा ? शेर है शेर ! जरूर गर्जेगा ! ओफ़ ओ ! जरा मुझे दिशा की हाजत हो आई—हो आऊँ ! जयजिनेन्द्र !...

काशीनाथ—(तन कर)—जय महादेव ! जय जगद्गुरु की ! देखा ? वणिक् सर पर पैर रख कर भागा। बड़ा भीरु है। अब इस वेचारे काँधल को कौन पूछेगा ? बुरा हुआ।

भवानी—मेदपाट सर्वदा उनका कृतज्ञ रहेगा। अब हम लोग...

कवि महेश—मेरे विचार से कुछ और उपस्थिति हो जाती...

जगमल—हाँ-हाँ ! क्यों भाई, क्या यह सच है कि पाताल-देश में ऐसा हत्याकाण्ड नहीं होता—हो ही नहीं सकता ? सुना है मैंने ऐसा !

काशीनाथ—होगा कैसे ? वहाँ देखें, कोई चूँ तो करे ! यों देखें एक गेहूँ का दाना भी दे दे ! वहाँ तो परमात्मा का नाम लेने पर फाँसी दे दी जाती है ! तुमने सुना नहीं ? अभी मेरा एक दोस्त सुमात्रा हो आया है ; वह सुनाता है उधर का कच्चा चिट्ठा। मुर्गी नचावणी के ग़जब हैं ! वह कहता था कि एक विज्ञानाचार्य—नाम भूल रहा हूँ—को यह कहने पर कि पृथ्वी घूमती है मार डाला गया ; एक महात्मा को फांसी दे दी गई और एक लोकामतवादी को जहर दे दिया गया। यह तो अच्छा किया। ऋणं कृत्वा घृतंपिवत् !......लो वेटा ! अब पीयो घृत ! हा-हा-हा !!

दो-तीन—ओहो ! इतना अन्धेर !......

[कुछ और नागरिकों का प्रवेश]

कवि महेश—लीजिये, आ गये ! अब सभा शुरू हो; बातें तो होती ही रहेंगी ।...

भवानी—हाँ, और क्या ? आप जरा प्रस्तावालेखन तो कीजिये, कविजी !

सूर्यसिंह—उपाय तो लक्ष स्वर्ण-मुद्रा का है। अवश्य प्रस्ताव स्वीकृत कर शीघ्र ही भेज देना चाहिए। प्रजा-प्रस्ताव एक क्षण रुक तो सकता ही नहीं। अभी स्वीकृत किया; अभी गया समझो। दीवानजी को खाते से उठना पड़े। बड़ी मुश्किल है ! महाराणा ने इन राज्याधिकारियों की नींद हर रखी है। यह प्रस्ताव जैसा दीवानजी के पास गया, वे सर पर पैर रख कर भागेंगे—एक क्षण की भी देरी नहीं हो सकती। बड़ी मुश्किल है !...

जगमल—अन्नदाता जैसा प्रजा का खयाल और सम्मान करने वाला और कौन नरेश होगा ? बड़े दयालु, प्रजा-वत्सल, यानी, धीर-गँभीर ! अपने पुत्रों से बढ़ कर प्रजा को रखने वाले। पर ऐसे धर्म-संकट के समय तो लाचारी है—

काशीनाथ—क्या देरी है, कवि जी ? प्रस्ताव लिखने में इतना समय ! पर हाँ, व्यासासन पर कौन सुशोभित हो रहा है ? जरा जल्दी हो जाय। मेरी विजया भवानी खोटी हो रही है—

भवानी—मेरे अभिप्राय में आज की इस महत्व-पूर्ण सभा के व्यासाधिपति हों लब्धप्रतिष्ठित नागरिक, सेठ जगमल !

आपकी जनतार्थ सेवायें कम-से-कम मुझे तो सदा याद रहेंगी। हमारा कर्तव्य है, ऐसे दानियों का सम्मान करें !

जगमल—(दीन स्वर में)—अजी नहीं ! यह तो श्रीमान् की महत्ता है। कहाँ मैं व्यवसायी और कहाँ आप तपोधनी विद्वान ! ज्ञान-विज्ञान के धुरंधर पण्डित जिनका डंका आज सारे महाराज्य में बज रहा है, जिसे स्वयं महाराणा उठ कर आदर देते हैं ! आप ही हमारे व्यासाधिपति हों—आप ही !

बहुतेरे—अवश्य-अवश्य !

एक—सभापति तो ब्राह्मण ही होना चाहिए, या क्षत्रिय ! वैश्य तो कोषाध्यक्ष ही अच्छे हैं !

भवानी—(तीव्रता से)—महाशय ! इतने संकीर्ण न हों। जो योग्य हो, उसे आगे आने दीजिये ! हाँ, तो सेठजी ! आप न होंगे ? क्यों भई, यह गुरुभार इस दुर्बल के कन्धे पर डाल रहे हो। मैं ठहरा स्पष्टवादी। प्रस्ताव में ज़रा भी नरमी पसन्द नहीं करता। सारे राष्ट्र का सत्यानाश हो रहा है कि कोई हँसी हो रही है ? मैं तो साफ़-साफ़ कह देने के पक्ष में हूँ—फिर चाहे जो हो ! स्पष्ट ! शुद्ध और उचित ! क्यों ? आप लोगों को यह स्वीकार है ?

दो-तीन—क्यों नहीं, महोदय ? क्यों नहीं ?

काशीनाथ—प्रजा प्रतिनिधित्व की मर्यादा में रत्ती भर भी भंग नहीं हो सकता।

भवानी—(उठ, व्यासासन पर बैठता हुआ)—अच्छी बात है !

तब यह महान उत्तरदायित्व मुझ दुर्बल के कंधों पर ही सही! यह गुरुतर, श्रेष्ठतम कार्य, जनता की सेवा, मुझे क्षमता तो स्वयं ही दे देगी। यों तो जगमल ठीक थे—यहाँ तो राज्याऽकृपा की पिशाचिनी पीछे लगी रहती है—पर निस्वार्थ को भय क्या! मेरा वह न्याय विधान-परिषद में दिया हुआ भाषण याद है न? तब से एक छाया अपनी और दूसरी जासूस की! होगा—यहाँ तो जन्मे तब से प्रजापक्षीय रहे हैं और मरेंगे तबतक रहेंगे!...

कवि महेश—(लिखना बन्द कर)—आलेखन हो गया। लिखना कोई हँसी थोड़े ही है। जिन्सें तौलना, तलवार चलाना, धनोपार्जन करना, सब—सब सहज साध्य हैं। पर यह लेखकत्व अप्सरा-प्राप्ति की भाँति दुस्साध्य है! हाँ तो क्या भवानी शंकर जी व्यासाधिपति वरण किये गये! चलो, अच्छा हुआ—धन-भाग्य, महिमन्!

[लिखित प्र० देता है]

भवानी—(प्रस्ताव लेता हुआ)—सज्जन, सहृदय, सन्नागरिको! सर्वप्रथम सच्चिदानन्द, सर्व व्याप्त, सर्व शक्तिमान, सर्वेश्वर, जगदाधार जगत्पिता परब्रह्म परमेश्वर को व्यक्ति, जाति और सर्वधर्म, ज्ञान-विज्ञान रिद्धि-सिद्धि राष्ट्र का तन्मय प्रणिपात निवेदित हो!

[जगमल का उठकर हार पहनाना, राष्ट्रध्वज तथा राज्य चिह्न व्यासासन पर रखना।]

कवि महेश तथा दो चार—जय! पृथ्वी पति की जय!!

व्यासाधिपति की जय !! समस्त शक्ति स्वरूपिणी सभा की जय !! राष्ट्र-ध्वज और महाराष्ट्र की जय !!........

भवानी—(गंभीरता पूर्वक)—कार्याधिकरण की आज्ञा प्रदान की जाती है। मनोनीत मंत्री और उपस्थित सभासद् पृथ्वोपति-दत्त अपने राष्ट्रीय नागरित्व के अधिकारों का स्मरण कर सध्यान सुस्थानित हों—शांति ! प्रस्ताव-वाचन !

कवि महेश—(प्रस्ताव पढ़ता है)—मेदपाट महाराज्य की सर्वश्रेष्ठ नागरिकत्व के सम्पूर्ण अधिकार भोगती हुई जनता की यह समष्टि महाराणा द्वारा घोषित राजाज्ञा का, जिसमें जीते हुए प्रान्तों की मुक्ति भापित है, महाराज्य के अस्तित्व, प्रसार तथा उन्नति की दृष्टि से, इस महाराष्ट्र के सभी और सर्वाङ्गी स्वार्थों की सम्पूर्ण रक्षा की दृष्टि से, तन-मन से घोर विरोध प्रगट करती है और सर्वसम्मति से साभार प्रार्थना करती है कि शीघ्र-से-शीघ्र यह विनाशकारी राज्याज्ञा वापस ले ली जाय।......

एक युवक—और यह भी लिखा जाय, कि यह सभा ऐसी घोषणाओं को अगौरवमय मानती है—

दो-तीन—हाँ, यह भी लिखा जाय......

भवानी—शान्त रहिए ! मैं ऐसे अगौरवमय वाक्य के ग्रहण की आज्ञा नहीं देता ! हमें समझ रखना चाहिए कि हम अपने दिव्य और महान् अधिकारों के बल पर अमर्यादित न हों—यह राष्ट्र-रक्षा-प्रार्थना सर्व—जन-मन मंगलमयी हो !......

कुछ सभासद—वह सर्वानुमति सुशोभित हो—

कुछ—हो, हो ! अवश्य हो—

व्यासाधिपति—तब परमात्मा की कृपा से वह स्वीकृति सम्पन्न होती है !

कुछेक—व्यासाधिपति का अनुग्रह !......

भवानी—राष्ट्र और भावी महाराणा के स्वार्थों की, हितों की रक्षा के लिए, हमारा यही कर्तव्य था कि हम साभार अपना यह अभिप्राय जता दें ! इस महासंकल्प को, इस पवित्र वांच्छा को महामाननीय दीवानजी के करकमलों में देकर परम सन्तोष लाभ करूँगा—सभा मंगल हो !

कुछ—जय ! जय !!......

[शोर-गुल के साथ सब तितर-वितर होते हैं ।]

कवि महेश—चलूँ, बहुत देर हो गई । प्रिया की क्रुधितभ्रू-कमान से साधित मानतीर के लिए यह रसाकुल छाती तैयार करता हुआ चलूँ !......(जाता है ।)

भवानी—विलासी कहीं का ! (स्वगत) चलूँ! यह पहला अवसर है जब मैं जनता में इतना उत्साह, इतना संधान देख रहा हूँ । जब से घोषणा हुई है, गली-गली में मानो हर-एक चिन्ता में उभरा उसी की चर्चा कर रहा है ! बात तो यह है, राष्ट्र के सामने जीवन-मरण का प्रश्न है । तब क्यों न हरेक नागरिक के हृदय में आग धधक उठे ? (कुछ चल कर) अच्छा ही हुआ, जो सभापति बन गया ! अब पता पड़ेगा, दीवान जी महोदय को कि मैं क्या हूँ ! बस ! जनता मेरी मुट्ठी में है, मुट्ठी में ! ऊपर से युवराज की कृपा !

अच्छी चपत पड़ी बचा को ! अभी जाकर दे आता हूँ ; (चारों ओर देख कर) जाने दो, अभी कौन बेचारे को दौड़ाये ? पर कल शाम को जाऊँगा—दौड़ो रात को, मेरी बला से ! भला हो महाराणा का जो यह हुक्म दे रखा है कि प्रजा का कोई भी महत्व पूर्ण प्रस्ताव आवे, उसी समय लेकर मेरे पास आओ। इसे कहते हैं, राज करना। तभी तो मैं तुम्हें रात को परा सकूँगा ! भूला थोड़े हूँ, वह दिन, जब तुमने मुझे उस मामूली पुस्तक के लिए दो प्रहर रात को खड़ा रक्खा था !...(चारों ओर देख) चलूँ, सारा नगर शान्त हो गया ! नीरव ! दिन में जो स्थान कोलाहल से चहक रहे थे, वहाँ इस समय कितनी भयावह शान्ति है। चिल्लाने पर भी जहाँ सुन न पड़ता था, वहाँ इस समय उत्तेजित साँस तक सुन लो ! विचित्र लीला है उसकी ! पर वह है कहाँ ? चलो अच्छा याद आया, वह अधूरी टिप्पणी पूरी करना है—

[शीघ्रता-पूर्वक प्रस्थान ।]

आठवाँ दृश्य

[ऊदा का निजी अन्तपुर। तीसरा प्रहर।]

ऊदा—(विचारावस्था में घूमता हुआ)—मेरे पत्र का क्या उत्तर आता है, देखता हूँ। यह भी कर देख लेता हूँ—देखता हूँ, उसके हृदय में मेरे—मेरे भावों के लिए कुछ भी सोच-विचार है, मेरे भले के लिये दिल में कुछ भी—रत्ती भर भी—भावना है या नहीं। यही देखता है! सब काँच की तरह साफ़ हो जायेगा, दीपक की तरह उजेला—यही देखना है! (कुछ रुककर) या अपने इस नीच उन्माद में वह सुध-बुध भूल बैठा है! उसकी मति मारी गई है, बुद्धि भ्रष्ट हो गई है। अब सुना है, महाशय एक हज़ार ब्राह्मणों को गृह-दान देना चाहते हैं। मेवाड़ भर में शिव-मन्दिरों की स्थापना के लिए दस लाख स्वर्ण-मुद्रा अलग रख रहे हैं! लुटा दे रहा है, जैसे मन आता है लुटा दे रहा है! सारा कोष ख़ाली,

सफ़ाचट कर के ही दम लेगा—मेरा सत्यानाश करके यह बुड्ढा शान्त होगा ! भैरव—हद हो रही है, हद ! कहाँ तक सबर करूँ ? (शीघ्रता पूर्वक घूमता हुआ) काँधल मेरी मदद करता, क्षेत्र मेरी ओर होता ! काँधल ? नहीं, उसका स्वभाव मुझे अच्छी तरह मालूम है और—और क्षेत्र की पितृ-भक्ति दूध है या उफान, समझ न सका ! पर क्या वह इस मार्ग पर पैर रक्खेगा ? कायर-कातर-भावुक ! जो अपने शिकार तक की चीख सुन लेने पर विकल-सा हो जाता है, वह—वह तीन तरु गहरी...ऊदा ! (रुक कर) सन्ध्या हो रही है, लोहित, रक्त-रंजित—लोमहर्षक ! गीदड़ और गीध की सेना सजाये डाकिनियाँ श्मशान की ओर कूच कर रही हैं ! गोधूलि ! मानो—मानो रक्त की नदी है ! और—और बादल घिनौने, काले, भींगे, विषभरे बादल की नाव में चढ़ रात चीत्कार करती हुई रात—इस जलते हुए मृत्युलोक की ओर झपट रही है ! तुम—तुम कहाँ हो ? किस जगह—किधर ? ऊदा !......(बेकल घूमता है) कल इस समय दरबार सज रहा होगा ! एक धमाल हो रही होगी ! सब—सब आ जमे हैं, वृहद मेवाड़ के सभी पटैत उमराव, राव, राजे सभी ! सभी !! मेरा लहू चूसने, मेरा हृदय सुखाने, मूर्तिमान पिशाच बन कर सभी—सभी ! (सहसा रुक कर) पर क्या दरबार होगा ? होगा ! ऊदा ! बोल ? बोल ? मान ले इस पत्र का उत्तर निराशाजनक हो—तो ? तो ? ओह ! भैरव ! भैरव !! अब तो यह बुज़दिली, खामोशी, डगमग दूर कर दो—अब तो ! (झरोखे के पास जा खड़ा होता

है) पहाड़ लहू में नहा रहे हैं, आशा की आँखों से बहते हुए लहू में और कल—कल मैं भी यों ही अपनी आँखों के लहू में नहाऊँगा ! यदि—यदि आज की रात—आज की रात !...चेत मुर्दे, चेत !!......आज की रात !!......

[गंगादासी का प्रवेश ।]

गंगा—अन्नदाता !...

ऊदा—(सजग हो)—क्यों ?...जाओ, अभी—अभी मुझे...

गंगा—यह चली, अन्नदाता ! पर रानी जी ने यह चिट्ठी चरणारविन्दों में...पधरवाई है...(सभय चिट्ठी नज़र करती है)... जवाब के लिए प्रार्थना की है, हुजूर !...

ऊदा—(पत्र लेता हुआ)—अच्छा ; जा तू ! फिर दूँगा जवाब ! जा—(गंगा का प्रस्थान) जीवन के इस युद्ध में मैं अकेला ! अकेला ! क्या ही अच्छा होता पीतम मेरे साथ—यहाँ भी मेरे साथ होती ! पर...पर, वह ! वह !! अपनी झोंक में बेसुध है !! मूर्ख और क्या ? उसकी उस दिन की भावनाओं को भूला नहीं हूँ...कैसे भूल सकूँगा ? उसी दिन मालूम हो गया, मुझे अपने भाग्य का फैसला अकेले ही करना होगा...अकेले लड़ना, अकेले मरना !...होगा !...होगा !!...क्या उसकी और बच्चे की तबियत खराब हो गई...यह पत्र क्यों ? (पत्र खोलता है । पढ़ता है । मन में कुछ पढ़ कर) इसका मतलब ? इसका मतलब ?? इस समय तुम भी मेरे मार्ग में अड़ना चाहती हो ; शूल की तरह मेरे पैरों में गड़ना, क्यों ? यह नहीं होगा—कदापि नहीं होगा !!

ओह राणी ! यह तुमने क्या लिखा—क्या लिख भेजा ! (मारे बेचैनी के चौकी पर बैठ जाता है) पीतम !! तुम्हें यह क्या सूझा ? रोऊँ या हँसूँ तुम्हारे इस पत्र पर, क्या करूँ ? भैरव ! भैरव !! सुना तुमने ? यह राणी क्या लिखती है—सुनो—सुनो—(पढ़ता है)—सुन तो लो क्या लिखती हैं ये मेरी हितचिन्तक इस समय—अपने इकलौते प्राणों से भी प्यारे पुत्र की गरदन पर सौगन्ध की छुरी रख कर मैं आप से प्रार्थना करती हूँ, स्वामिन् ! कि उस जघन्य राक्षसीय विचार को त्याग दें...(पढ़ना बन्द कर, मुँह बनाता हुआ) जघन्य !! राक्षसीय !!...अच्छा, आगे—(पढ़ता है)—राम ने पिता के लिए राज्य को लात मार दी और फिर यह मेवाड़ तो हम लोगों का ही तो है ! कहाँ जाता है वह ? मेरे नाथ...(फिर पढ़ना बन्द कर, घृणावत्) बड़ा आदर्श बघार रही है बैठी-बैठी ! दशरथ ने राम को वनवास ही भेजा था ; उसका साम्राज्य नष्ट नहीं किया उसने भी, समझी ! तुझे शर्म न आई यह लिखते—(पढ़ता है)—मेरे प्राणों की, मेरे प्रेम की, मेरे यौवन की, मेरे हृदय की सौगन्ध, जो हुजूर उस भयानक काम में हाथ लगावें ! जब-जब वह आधी रात, आपकी वह भयानक हँसी याद करती हूँ, तब-तब दूध जैसे सूख जाता है और कुँवर को इस जोर से छाती में भर लेती हूँ कि वह रो उठता है ! सौर घर की चहारदिवारियों में बन्द पड़ी हूँ, नहीं तो पैरों पड़ प्रार्थना करती...राणी ! राणी !!...पर मैं क्या करूँ ? (पुनः पढ़ता है)—बाप के खून में तर राज-मुकुट पहन कर मेरे सामने कैसे

आओगे ? पिता के रक्त से रँगी हथेली में अपने गाढ़ प्रेम के फल-स्वरूप इस फूल से कुँवर को कैसे लोगे ? वचन दो कि वैसा कुछ न करोगे ; नहीं तो, मैं और यह कुँवर विना मौत मर जायेंगे। मैं तो जल मरूँगी, कहे देती हूँ ! मैं जो कहती हूँ, करती हूँ, नाथ !......(काग़ज़ चूर-चूर कर फेंक देता है) अब न सुनाऊँगा, तुम्हें भैरव ! बस ! अधिक नहीं !! कहीं यह काँटा मेरा पैर न सुजा दे ! मेरी महीनों की हिम्मत को वहा न ले जाय यह भावना का नाला। नहीं, नहीं ! पीतम, यह न होगा ! दूर रहो, तुम मेरे मार्ग से, मैंने कहा न ? (सहसा उत्तेजित हो) धमकी—गले पड़ना, यह न होगा ! नालायक़ ! नासमझ ! बुरा किया उस दिन दिल खोलकर ; स्त्रियों में विश्वास करना झख मारना है ! अड़ गई आँधी की तरह ; बाढ़ की तरह बीच में आ अड़ी......(पुनः चौकी पर बैठ जाता है) ओह ! ऊदा ! जंज़ीरों बँधे देखो अपनी आँखों से। कल अपना सर्वनाश ! देखो, और क्या ! (चुप ड्योढ़ी पर शाम की शहनाई, तथा झालर, नगाड़ा बजता है ; फिर शंख-ध्वनि होती है। ऊदा जैसे तन्द्रा से जगा हो) जाग उठ, ऊदा ! तोड़ दे इन वेड़ियों को ! अपनी आँखों से अपना सत्यानाश मैं नहीं देख सकता ! सम्राट ऊदा ! महाराणा ! पृथ्वीपति ऊदा ! ओह...भैरव !......

[जैतसिंह का प्रवेश।]

जैतसिंह—क्या ख़बर लाये ? जल्दी बोलो—मैं तुम्हारी ही

राह देख रहा था—जल्दी—(दीपक लेकर गंगा का प्रवेश) मैंने कहा था न कि मत आना ? भाग जा जल्दी ! काम की बातें भी सुख से न करने दोगी तुम !......

गंगा—(भीत)—अन्नदाता !......(दीपक रखकर शीघ्रता पूर्वक प्रस्थान ।)

जैतसिंह—महाराणा ने पत्र पढ़ा तो अच्छी तरह, पर—

ऊदा—(बीच ही में)—पर, हूँ ?......कौन, कोई नहीं ! हाँ, फिर ?

जैतसिंह—पर, पर फिर खूब हँसे, ठहाका मार-मारकर हँसे । और फिर फ़रमाया कि अच्छा !......

ऊदा—(अधीरता को थिरता में बदलता हुआ)—भूमिका मत बाँधो—डरो मत—जो कुछ कहा हो साफ़-साफ़ कह दो ! साफ़-साफ़ !! मैं तो पहले ही जान गया था, पहले ही—हाँ, फिर ?

जैतसिंह—और फिर यह फ़रमाया कि राज मेरा है, इच्छा हो वह करूँगा—अधिक तंग किया सबने तो राज प्रजा को बाँट दूँगा, दे दूँगा—

ऊदा—(तीव्रतापूर्वक)—प्रजा को ! इसका मतलब ? समझा ! राई-रत्ती समझ गया, जैतसिंह ! यों काम पार न उतरेगा, कदापि नहीं ! काँधल के जाते समय के वचन दुहरा महाराणा अपनी महात्माई का अन्तिम परिचय दे देना चाहते हैं—अन्तिम ! अच्छा !! तुम जाओ—पर, नहीं, ठहरो ! जैतसिंह !...तुमने उस दिन—कोई है तो नहीं ? परदे डाल दो ; और पास आओ—समझते

हो, तुमने उस दिन कहा था कि तुम मेदपाटेश्वर की चाकरी में जीवन गुज़ारना चाहते हो। याद है ?......

जैतसिंह—(कुछ घूम, सकपका, रिक्त-सा)—हाँ जी !...यहाँ तो यही लिखवा आये हैं—

ऊदा—ठीक, बहुत ठीक ! कौन ?...मैं तुम्हारे लेख बदल दूँगा, (किवाड़ तक जा, लौट आते हुए) समझते हो ! (निश्चित तीव्रतापूर्वक) जैतसिंह ! जानते हो न, इस मेवाड़ का महाराणा मैं भी हूँगा—

जैतसिंह—क्या मैं यह नहीं जानता ? मेवाड़ के मालिक कर्ता-भर्ता श्रीमान् ही...

ऊदा—मुफ़्त की बातें छोड़ो ! निश्चय जानो, तुम मेरे हो, अपने ! समझे ! मैं तुम्हें अपने घाव भरने में मदद दूँगा। वह दिन याद है, जागीरों के पट्टे निकले और तुम्हें 'दासीपुत्र' कह कर भुला दिया गया था ?...

जैतसिंह—(सहसा कट कर)—क्या भूल जाऊँगा उसे भी, दाता ? मेरी माँ ख़ैरात—युद्ध की गुलामड़ी—थी, तो क्या हुआ ? पर क्या मेरी माँ दासी थी ? एक लाख के ठिकाने की लड़की दासी ? होगा, समझ लूँगा। जन्म भर तक याद रखूँगा इस अपमान को। वह ज़हर का घूँट अभी तक कण्ठ में है—

ऊदा—(उसके कन्धे पर हाथ रखकर)—मैं होता तुम्हारे स्थान पर तो बता देता, मेरी माँ को गाली देने वाले को। सच कहता हूँ !

जैतसिंह—वह अपमान मुझे टुकड़े-टुकड़े कर गया ! अभी

भी जैसे मैं रो पड़ूँगा ; ओह ! मुझ जैसा पतित और कौन होगा—

ऊदा—पतित ! कौन कहता है तुम पतित हो ? झूठ है यह ! जिसमें इतनी सरलता, भक्ति, विश्वास और नम्र-सहिष्णुता हो, वह पतित ? जो अपनी माँ का अपमान करने वाले को, क्या हुआ वह बाप ही हो तो, चबा जाना चाहता है, वह भी पतित ? तुमने आज दिन तक मेरी जो मदद और सेवा की है, वह मैं जानता हूँ। जैत ! तुम मुझसे, सच कहता हूँ, सौगुने महान् हो ! सच कह रहा हूँ, तुम्हारे कण्ठ की सौगन्ध !

जैतसिंह—(विभोर-सा)—मैं, मैं तो श्रीमान का सेवक हूँ ; जान तक दे सकता हूँ आपके लिए ! ओह ! मुझे मालूम न था, श्रीमान् मुझे अपना—इतने ऊँचे भाव के साथ अपना—मान रहे हैं। रायमल जी, क्षेत्रसिंह जी कोई मुझे अच्छी दृष्टि से देखते तक नहीं !

ऊदा—मैं तुमको महाराज्य मेदपाट का सबसे बड़ा जागीरदार बना दूँगा, सबसे बड़ा ! तुम-सा श्रद्धांकित और विस्वासू आत्मा मैंने दूसरा न देखा, भैरव की आन, जैतसिंह ! सच कह रहा हूँ—खरे अन्तःकरण से !......मुझे महाराणा तो बन जाने दो।

जैतसिंह—(घुटने पर होता हुआ) तब तो मैं हुजूर के लिए इस समय बिक सकता हूँ। मैं भी ठीक कह रहा हूँ। (खड़ा हो, आत्म-मुदित) आज पता पड़ा, जैसे मैं भी हूँ, मेरी भी कोई हस्ती है।

ऊदा—(शब्द-शब्द पर भार देकर)—तुम्हारा तो सर्वनाश किया,

पर तुम देख रहे हो, यह पागल मेरा भी सर्वनाश करना चाहता है। मेरा नाश अब क्या तुम्हारा नाश, मेरी हानि तुम्हारी हानि नहीं है अब? क्या नहीं है?—बोलो!

जैत—है, अवश्य है! हुज़ूर के बिना मुझे मुख-उमराव कौन बनावेगा?......

ऊदा—अब समझे। और पास आओ। केवल भैरव के सिवा हमारी बातें, कोई नहीं सुन रहा—पास आओ। कल दरबार नहीं होने देना है, समझे! अमावस्या की रात दीपावली से नहीं, शहर भर में सनसनी पूर्ण मुर्दनी से कल मनाई जायगी। चौंको मत! मुख-उमरावपन; ग्यारह लाख की जागीर; छत्र-चँवर का सम्मान! सवारी में दूसरा हाथी—खो बैठोगे सब! समझते हो?......

जैत—(भीत स्वर में सम्पट साधता हुआ)—हाँ—हाँ...

ऊदा—तो भैरव का स्मरण कर प्रतिज्ञा करो कि मुझे मदद दोगे! पास आओ, और सब भय झाड़ कर प्रतिज्ञा करो! डर रहे हो? वीर होकर—भट्ट होकर यों कायर हो रहे हो? छिः! याद करो अपनी अपमानित जनता को—ध्यान धरो उस ऐश्वर्य सम्मान तथा दबदबे का—ज़रा कल्पना तो करो उसका! आज मौक़ा मिलते ही राणा को कुण्ड पर जहाँ वह अक्सर जा बैठता है, समझे? वहाँ—वहाँ ला बिठाना, बस! और कुछ भी न करना होगा तुम्हें! दूसरा सब मैं सँभाल लूँगा—मैं! समझते हो?...बोलो!...

जैत—जी...जी, हाँ !...

ऊदा—आज की अन्तरंग महफ़िल के पहले या पीछे तुम उसके साथ रहना, साथ ! और घूमने के बहाने या—या...यों क्या ताक रहे हो मेरी ओर ? सारे राष्ट्र का, मेरा—तुम्हारा सभी का कल सत्यानाश हो जायगा, नहीं तो !...जैतसिंह, सुन रहे हो ? मूर्ख। और कोई उपाय नहीं—कोई उपाय नहीं। इस समय ज़रा चूक जाने पर हम कहीं के न रहेंगे। कहीं के—भीरु ! अपनी माता की मृत्यु याद करो—इससे अच्छा अवसर बदला लेने का और कब मिलेगा ?...याद करो—

जैत—जी हाँ, जी ! मैं तैय्यार हूँ !......

ऊदा—(असीम निर्भयता, तथा अडिगता पूर्वक)—उस दिन की भैरवपूत की भविष्यवाणी—याद करो ! करो याद ! आज दिन तक मैं नहीं भूला उसे—मेरी रग-रग में, रोम-रोम में मेरे वह मूर्तिमान बिजली दौड़ रही है ! क्या आज विधाता यहाँ नहीं खड़ी ? खड़ी है—मैं देख रहा हूँ, उसे—उस भैरवी को...और, और किसी के शव को उसके पैरों में पड़ा ! हम ! भैरव के लिए आगे बढ़ो, जैतसिंह !......जीवन भर तक मौज करोगे !

जैत—मैं जी-जान से तैयार हूँ ! अपनी माता की अन्तिम कामना—अपमान का बदला ! मुझे याद आ गया ! आ गया ! मैं तैयार हूँ !

ऊदा—तो बस, जाओ ! तरकीब से आज उसे अपने प्रिय कुंड पर ले जाना और फिर वहाँ से सरक जाना—बस ! फिर

में दिखा दूँगा । उस अमर ब्राह्मण को, योगी को—महात्मा को। दिखा दूँगा ! जाओ तुम अब !......ख़ूब ढाल लेना, ख़ूब ! ताकि हिम्मत न छूट जाय !...अब यदि ऊँ आँ करोगे, डगमगाओगे, कुछ भी गड़बड़ करोगे, तो मैं हूँ—वह भैरव पूत है— समझे !... जाओ !

जैतसिंह—निश्चिन्त रहें—

[जैतसिंह का उसकी ओर देखते हुए प्रस्थान ।]

ऊदा—अब तक मैं अकेला था—अकेला ! तबियत ख़राब होने का बहाना कर बिल्कुल अलग रहूँगा—अदृश्य ! ताकि चिल्लाती हुई मेवाड़ कल मेरी ओर इशारों की अँगुलियाँ न उठा सके !......(घूमता है)

[गंगा का प्रवेश ।]

गंगा—(प्रार्थना करती हुई)—शिकार की मार आई है, अन्नदाता !

ऊदा—(चौंक)—हूँ ? फिर भेजा उसने तुझे...अभी जा !... शिकार ?...इच्छा नहीं है ; मेरी तबियत ठीक नहीं है । थोड़ी तीव्र मदिरा लादे, ताकि...ताकि यह शिथिलता, यह थकावट, दूर हो जाय । रग-रग में स्फूर्ति भर जाय जिससे ! हृदय में बेहोशी—मस्तिष्क में तंद्रा ; आँखों में ख़ुमार चढ़ जाये...आज पीऊँगा, अवश्य पीऊँगा ! जा मदिरा ले आ...[गंगा जाती है] क्या मैं ही अकेला सम्राट बनूँगा और तुम कुछ भी न होगी ? मूर्खा कहीं की ! जो अपने पति—प्राणों से प्यारे पति और पुत्र

का हित-अहित न देखे वह भी क्या चतुर नारी है ? ओह ! (घूमता है) पीछे समझा दूँगा ; मना लूँगा ! (और शीघ्रतापूर्वक घूमता है) क्या देर लगती है उसे मनाते जो अपना है—तन से, मन से, हृदय से ! (चारों ओर देखता हुआ रुक कर) कुछ देर बाद रात—फिर सघन नीरव आधी रात—और—और फिर, प्रभात—(घूमता हुआ) रात—प्रभात ; प्रभात—रात ! ठीक है—सच ठीक है । माँ को राजमाता का पद सन्तुष्ट कर देगा ; उमरावों को जागीरें वश में करेंगी और जनता को ? (रुक) पागलपन—हाँ पागलपन असन्तुष्ट प्रजा को चुप कर देगी । उसे संभ्रमित करते क्या देर लगती है ? हा-हा-हा ! ऊदा ! सम्राट ऊदा ! महाराणा उदयसिंह !...

[मदिरा साज लिए गंगा का प्रवेश]

ऊदा—रखकर चली जा—मैं स्वयं पी लूँगा ! अपनी मालकिन से कह देना, उसके बिना मैं बीमार-सा रहता हूँ—कहीं भी मन नहीं लगता। इसलिए—इसलिए दो-तीन प्याले कादम्ब पीकर दिल बहलाना चाहता हूँ—समझी, गंगा ?......कहला दे, मेरी तबियत खराब है, चित्रशाला न जा सकूँगा, समझी ?......

गंगा—(जाती हुई)—जो आज्ञा अन्नदाता !...[प्रस्थान]

ऊदा (प्याली भर) भैरव ! भैरव !! (पीता हुआ चारों ओर देखता है, फिर पीकर)...और—और विधाता ! हँ-हँ ! एकलिंगावतार ! पृथ्वीपति !!...ओह ! मुण्डमाली ! मेरी रग-रग में भीषणता भर दे—भर दे !!......

[दूसरा प्याला पीने लगता है, पर्दा पड़ता है ।]

—

नवाँ दृश्य

[चित्रशाला-मार्ग, प्रथम प्रहर का अन्त ।]

कुम्भा—(प्रवेश कर, चलते-चलते रुक कर, जैतसिंह से, जिसके कन्धे का आधार लेकर खुद चल रहे हैं)—बुढ़ापा जैसे आज दिखा ! शरीर की वृद्धावस्था जैसे पोते के बचपन से खेलती है, हँ-हँ-हँ ! क्यों जैत ? (कुछ चल कर) तब उदय नहीं आयेगा ? अच्छा ! मेरा उदय बड़ा भाग्यवान है—बड़ा भाग्यवान ! तुम सबमें उसके समान चतुर और कोई न हुआ, रायमल तो भोलानाथ है ! बहुत कहने पर रंगशाला में आने को तैयार हुआ—उदय की तबियत खराब हो गई ? क्या हुआ उसे ? (कुछ सोच कर) मेरे जवाब ने कहीं, कहीं—सब पागल हैं, कोई समझता ही नहीं ! (थके से) ठहरो ! थोड़ा यहाँ ठहरूँगा ; थक गया—अब तो बिल्कुल थक गया ! हाँ, मैं क्या कह रहा था ? ठीक, काँधल चला ही गया ; कल दरबार—इतना बड़ा महान दरबार—उसके बिना

सूना दिखेगा। वह मेरे मेवाड़ की आवाज़ है। पर—पर वह भी नहीं समझता। अरे भई मामूली सी बात है। जिसे जो भूखण्ड मेरे नाथ ने पनपने दिया, उसे वहाँ पनपने दो! क्यों बेचारों की मिट्टी पलीद करते हो गुलाम बनाकर, और यों बुरे कर्मों के ढेर लगाते हो। मैं अपने आत्मा की आज्ञा कैसे टालूँ? हँ-हँ-हँ! तुम सब अभी बच्चे हो। कुछ समय बाद समझोगे, तुम्हारे बाप ने जो किया, वह बिल्कुल ठीक किया! बिल्कुल ठीक! हाँ, चलो भई! कितनी दूर रह गई चित्रशाला? मेरा उदय बड़ा भागवान् है—बड़ा भागवान्—(चलने को उद्यत)।

[दीवान का शीघ्रता पूर्वक प्रवेश]

दीवान—करोड़ दिवाली राज करें, अन्नदाता! दो क्षण भी देर से पहुँचता, तो श्रीमान् के चरणारविन्दों का दर्शन न होता। हुज़ूर! अभी-अभी यह प्रस्ताव भवानी शंकर जी दे गये; बड़ा महत्व का होने से सर पर पैर रख भागा आया! भगवती की दया से हुज़ूर से यहीं भेंट हो गई...

कुम्भा—(थम कर)—कौन? दीवानजी! क्यों? ऐसी कौन बात है फिर? कल अपना काम समाप्त कर जिसकी मेवाड़ है उसे दे देना चाहता हूँ—हाँ, क्या बात है, सुनूँ!

दीवान—पृथ्वीपति! (प्रस्ताव खोलता हुआ) जनता के प्रतिनिधियों ने मिल कर सर्व सम्मति से एक प्रस्ताव स्वीकृत कर श्री चरणों में भेजा है। उसमें विनती की गई है कि घोषणा वापस ले ली जाय—

कुम्भा—(सहसा)—क्या? घोषणा! वापस ले लूँ? प्रजा यह चाहती है? मेरी प्रजा—हैं?......

दीवान—(कुछ सहम कर)—उसकी दृष्टि में इस घोषण से राष्ट्र के हितों को आघात लगता है और—

कुम्भा—(चिल्ला कर)—चुप रहो! (जैतसिंह के हाथ पर ढल से पड़ कर) ओह! मेरी प्रजा यह चाहती है—मेरी! शोक, शोक!! सर्व-सम्मति से यह प्रस्ताव भेजा है? सभी प्रतिनिधियों ने! अच्छा, अच्छा!!...(कुछ क्षण आँखें बन्द कर लेते हैं।)

गोपालसिंह—(दीवान तथा जैतसिंह की ओर देख कर)—मेरे जीव! कुछ समझ में भी तो आवे!...

कुम्भा—(आँखें खोल कर)—चारों ओर से यही—यही कहा जा रहा है, घोषणा वापस ले लो—घोषणा वापस ले लो! (सिर धुन कर) घोषणा वापस ले लूँ या आत्महत्या कर लूँ! तुम सब चाहते हो—मैं आत्महत्या कर लूँ! क्यों? घोषणा वापस ले लूँ! नहीं लेता वापस, जाओ! कह दो प्रजा से! जाओ! मुझे धमका रहे हो—डरा रहे हो? (थक कर) जिसकी शिक्षा-दीक्षा में मैंने अरबों खर्च किये, जिसके ऊँचे संस्कारों के लिए मैंने उसे ऊँचे-से-ऊँचे अधिकार दिये—आदर्श स्वाधीनता देने की चेष्टा की, वह मेरी प्राणों से भी प्यारी प्रजा आज मुझे ही डरा रही है—यों धमका रही है! ओह! भगवन्! अब सहा नहीं जाता! इतनी पतित, नीच स्वार्थी, हीन-श्री मेरी प्रजा!!...(अर्ध अचेत से होकर जैतसिंह के कन्धे पर सिर टेक देते हैं)

जैतसिंह—(दीवानजी से)—मेरे विचार से—

कुम्भा—कह दे इसे चला जाय—मेरे सामने से हट जाय! (सहसा) तुम्हारी आँखों में भी स्वार्थ, ब्राह्मण! दूर हटो मेरे सामने से!

दीवान—(भीत हो)—अन्नदाता!...

कुम्भा—(विक्षिप्त से)—मर गये अन्नदाता! अन्नदाता! मुझे पता न था—पता न था, मेरी प्रजा अन्त के तन्त में गँवार, अहंमन्य, राक्षसीय निकलेगी! हे परमात्मन्! यह क्या अन्धेर है? क्या अत्याचार है? तब सच्ची शिक्षा और संस्कार भी मनुष्य को पशु ही रखते हैं? हे भगवन्! इस दुःख को कैसे सहूँ? दूर हटो सब—मुझे मुँह मत दिखाओ! तुम सब षड़यंत्री हो, षडयंत्री!...

जैतसिंह—(दीवान से)—क्यों अधिक उत्तेजित कर रहे हैं? जाइये भी!

दीवान—अन्न...दा...ता!...

(समय प्रस्थान।)

कुम्भा—ओह! अब जी कर क्या करूँगा?...(मूर्छित से जैतसिंह के हाथ पर ढल पड़ते हैं)

जैतसिंह—(गोपाल से)—मेरे विचार से कुण्ड पर हवा लगने से तबियत स्वस्थ होगी। यों चित्रशाला में ले जाना ठीक न होगा—क्यों? क्यों—

गोपाल सिंह—अब ये जागते ही नाचेंगे, रोयेंगे—चिल्लायेंगे

मेरे जीव ! कुछ समझ में भी तो आवे ? मैं तो भई चला, अपनी मौज क्यों खोऊँ ! एक ओझा अभी आएगा—यक्षणीमंत्र का चमत्कार देखना हो, तो चलो ! नहीं तो तुम तुम्हारे ले जाओ इन्हें कुण्डपर—मेरे जीव !......(उदासीन भाव से प्रस्थान)

जैतसिंह—(कुम्भा को पुनः आये उसी नेपथ्य में ले जाता हुआ) नीच ! हैं ? यह क्या ? कौन बोल रहा है ? पापी ! कौन—कौन ? विश्वास घाती !! कौन कोस रहा है ? कुछ नहीं—कुछ नहीं ! यह सब मेरी भ्रांति है ! कोई नहीं ! (कुछ और चलता है) नरक के कीड़े ! हत्यारे ! बाप की हत्या—बाप की !! आह ! कौन चिल्ला रहा है ? पर—पर ग्यारह लाख की जागीर—हूँ ? कुछ नहीं, चलो ! चलो ! छत्र चँवर का सम्मान, जैतसिंह ! आगे बढ़ ! यों—यों—(रुक कर जैसे सुनता हो) विलास के कीड़े !... फिर वही आवाज़ ! फिर वही—बाप की हत्या ! महापाप—भयानक पाप......

[वायुवेग से ऊदा का प्रवेश।]

ऊदा—(नंगी कटार से इशारा करता हुआ)—चुपचाप चला-चल ! उधर, चुपचाप ! नहीं तो—शिकारी कुत्तों की डाढ़ें, भैरव का अभिशाप—मेरी वज्र-कठोर मुट्ठियाँ और तेरा काल तेरे सर पर नाच रहे हैं—बढ़ आगे—

जैतसिंह—थर-थर काँपता हुआ)—ऊदा ! ऊदा—(धीरे-प्रस्थान)

ऊदा—मेरी नस-नस में रसातल के गरम सोतों-सा रक्त चक्कर काट रहा है। मेरी बुज़दिली भाग गई ! भाग गई नामर्दी !

भैरव ! तुम्हारी जय हो ! जय !! मेरे सब दरवाज़े खोल दिये—खोल दिये !! (चलता हुआ) समाप्त होते जाते प्रथम प्रहर के तारों ! काले हो जाओ, आँखें बन्द कर लो अपनी ! अंधकार की हथेली से वृक्षो ! अपना मुँह ढँक लो ! थिर होजा—जड़ होजा मनुष्य ! पिशाचो ! मेरी मुट्ठी पकड़े रहना—पकड़े रहना, मज़बूत !......भैरव !

[सवेग प्रस्थान ।]

—

दसवाँ दृश्य

[चित्रशाला । साज-बाज । प्रतीक्षा में सब बैठे हैं ।]

विमलदान—अन्नदाता अभी तक न पधारे, हें ! मेरी बाँई आँख क्यों फरक उठी ?

कवि महेश—(कुछ निराशा के साथ)—चातक की भाँति सब राह देख रहे हैं । रसिकों का मन पलभर भी शान्त नहीं बैठता—जैसे बादलों में बिजली ! यह क्या, सहसा आकाश कैसा हो गया ? प्रतीक्षा करते हुए तारे अधीरता के मारे मानो रोना चाहते हैं—

पृथ्वी—आज सुबह से ही मैं परेशान हूँ ! सोचा, चित्रशाला में जाते ही मन बहलेगा ; पर नसीब दो डग आगे—देर पर देर ! चढ़ गये होंगे कहीं पिनक में—या—(उठता हुआ) नाच रहे होंगे कहीं ! ऐसा अच्छा और इतना आज्ञांकित घोड़ा आज

बिफर बैठा ! बबर शेर की भावड़ आई थी—दादा की तो तबियत ख़राब हो गई ; सोचा मैं ही चला जाऊँ ! पर घोड़े ने सुबह से तृष्ण तक मुँह में न रखा ; चरवाहे को तक काटने दौड़ता है ! यह क्या, सहसा ये बादल कैसे घिर आये ? शायद पानी आये ; अभी दो मिनिट पूर्व हीराकणी से तारे चमक रहे थे। देखते-देखते आकाश एकाकार हो गया !......

रायमल—मन में एक चिन्ता-सी लग रही है—

[बादलों का गर्जन]

विमलदान—यह लो, गर्जन भी शुरु हो गया ! एकाएक मन में यह विषाद कहाँ से भर आया ?......

[दीवान का धीरे-धीरे प्रवेश]

चेत्र—(आतुरता पूर्वक चौंक)—यह कौन ? दीवानजी ?...

रायमल—(जाग्रत हो)—इस समय—यहाँ ? क्यों, दीवान जी ?......

दीवान—(मन्दस्वर में)—अच्छा होता रास्ते में ही मुझे मौत उठा ले जाती ! अपना कर्तव्य न करूँ, तो भी मौत, करूँ तो भी मौत ! हुज़ूर ने आज तो मेरा मुँह ही तोड़ लिया—

विमलदान—अन्नदाता ने ? क्या बात हुई—क्यों, कहाँ भेंट हुई अभी ? हुज़ूर तो अभी यहाँ पधारनेवाले हैं—

दीवान—क्या बताऊँ ? अभी कोई दो घंटे पहले भवानीशंकरजी एक प्रस्ताव मुझे दे गये—घोषणा के विरुद्ध लोगों ने मिलकर स्वीकार किया था। अब आप ही बताइये, मैं गफ़लत

में रह सकता था भला? कल ही तो दरबार है जिसका, उसके लिए मैं एक पल भर भी सुस्त बैठ रहता? मुझसे तो यह कभी न हुआ; न होगा! अन्तः पुर खबर करवाई, तो मालूम हुआ हुजूर अभी-अभी चित्रशाला की ओर पधारे हैं। बीच ही में, कुण्ड-गली के पास दर्शन हो गये। प्रस्ताव दिया, तो ऐसे क्रुधित हुए कि बस! इतने वर्षों से चाकरी बजा रहा हूँ, पर कभी भी मालिक को यों अपनापा खोते न देखा! बहुत बिगड़े! बहुत दुःखी हुए! न कहने का कहा और अन्त में मुझे समक्ष से निकाल दिया! कहा तुम लोग सब षड़यंत्री हो—आत्महत्या कर लूँगा पर घोषणा वापस न होगी—बड़े नाराज़ हुए...पर मैं क्या करता! इधर जाऊँ तो खाई, उधर जाऊँ तो कूआँ!......

क्षेत्र—जब से घोषणा हुई है, तभी से ये रंग-ढंग हैं—

रायमल—पर रह कहाँ गये?......'

[गोपाल सिंह का प्रवेश।]

गोपाल सिंह—आखिर ओझा चला गया, मेरे जीव! पर क्या? कुछ समझ में भी तो आवे? आप यहाँ भी पहुँच गये, दीवानजी! क्या होता प्रस्ताव कल देते तो? हजूर मूर्छित हो गये हैं—जैतसिंह सुस्ताने कुण्ड पर ले गया है मेरे जीव!......

विमलदान—मूर्छित?......

क्षेत्र—जान रहे हैं हम सब कि हुजूर छोटी-छोटी बातों में पागल की तरह उत्तेजित हो जाते हैं; फिर भी उनको यों तंग

करते ही जाते हैं ! समझ में नहीं आता ! क्या हम सब ने बुद्धि बेंच तो नहीं दी है ?......

दीवान—श्रीमान् ! सेवक क्या करता—

[जैतसिंह का प्रवेश]

क्षेत्र—हुजूर कहाँ है, जैतसिंह !'

जैतसिंह—ऐसा—ऐसा पागलपन मैंने न देखा ! विमलदानजी ! कुण्ड पर जा मूर्च्छा जो जगाई, तो—तो मुझे ऐसा धक्का मारा कि गिरते-गिरते बचा ! कहा, मुझे यहीं मर जाने दो—जाओ, निकलो ! मैं नहीं आना चाहता, कहीं भी नहीं जाना चाहता ! मैं साधू हो जाऊँगा—आत्महत्या कर लूँगा—सब मुझे खागये, खा गये ! ओह ! मेरी गरदन तक पकड़ने तैयार हो गये—मैं मारे डर के यहाँ खबर देने चला आया !......

रायमल—(उठ कर) धर्म संकट है आज वर्ष भर से तबियत दिन-प्रति-दिन बिगड़ती जा रही है, पर औषधि के नाम से चिढ़ते हैं ! कोई करे, तो करे भी क्या ? पर ऐसी विषम हालत देखी नहीं जाती !

क्षेत्र—(जैत से)—तो यों छोड़ क्या आये जी ! मैं जाऊँ, समझा-बुझा कर ले आऊँ ! समय-कुसमय तो देखना था, दीवानजी !

दीवान—चाकर का अपराध क्षमा किया जाय, श्रीमान् ! इधर जाऊँ तो खाई, उधर जाऊँ तो......

रायमल—मैं भी चलूँ, तुम्हारे साथ ! घोर विपदा है ! अब घण्टों कुण्ड पर गुमसुम बैठे रहेंगे। जैसे कुछ ज्ञान ही न हो!

बड़ी कठिनता से माताजी मना, समझा-बुझा कर अन्दर ले जाती हैं-

चेत्र—आप यहाँ ही ठहरें ; यहाँ भी तो कोई चाहिए—मैं अभी मना लाता हूँ !

[शीघ्रता पूर्वक प्रस्थान ।]

रायमल—(कुछ घूम, ठहर)—आज दिवसों से क्या कहूँ, दान जी ! ऐसे बुरे-बुरे सपने आते हैं कि बस ! उनको याद भर करने से रोम-रोम मानो सिहर उठता है ! कल रात को तो जैसे मेवाड़ भर में आग लग गई ; फिर इतनी अटाटूट बारिश हुई कि जैसे जल-प्रलय हो गया ! कितना भयानक स्वप्न था वह ! आग और पानी का मल्ल युद्ध होने लगा ! आकाश और पृथ्वी तुमुलनाद के साथ एक हो गये और बड़े-बड़े गृह आपस में टकरा कर टूट पड़े ! मैं चिल्ला कर जाग उठा ! फिर हरिनाम लेने पर भी नींद न आई—न आई !! यहाँ तक कि तमंचुर बोल उठे ; मन्दिर क झालरें और शंख गूँजे ; पर जैसे महल के नीचे झुण्ड-की-झुण्ड औरतें रो रही हों......

कवि महेश—मैं भी आज एक सुन्दर कविता रच अपनी पत्नी को सुनाने रसोई घर में दौड़ गया ; पर न जाने कैसे काग़ज़ उड़कर चूल्हे में जा पड़ा ! और देखते-देखते सरस्वती की वाणी राख हो उठी !......

विमलदान—क्या कहूँ ? आज पड़ौस की विधवा ब्राह्मणी का एक का एक विवाहित विद्वान कमाऊ लड़का कूएँ में गिर डूब मरा—बेचारे का पैर रस्सी में फँस गया जो !...

[आँधी की तरह चैत्रसिंह का प्रवेश ।]

चैत्र—ईश्वर ! ईश्वर !! यह क्या गज़ब ! यह क्या गज़ब !! (सिर के बाल जैसे नोंच रहा हो) यह क्या—यह क्या भगवन् !... यह क्या किया तूने—क्या किया ? क्या देख रहे हो, पुतलों की तरह सब मेरी ओर ! रोओ, छाती में कटार मार कर हमारा पिता—मेवाड़ का धणी-कुण्ड पर—वहाँ उन्धमुन्ध पड़ा है—वहाँ—वहाँ—हा ! यह क्या गज़ब—गज़ब !!

रायमल
विमलदान } —हैं !...

(नेपथ्य की ओर झपटते हैं ।)

जैतसिंह—ओ-ओ मेरे बाप ! मेरे अन्नदाता ! पृथ्वीपति !...

दीवान—यह क्या सुन रहा हूँ मैं—मैं—मैं...(दिग्मूढ़)

कविमहेश—असह्य, असह्य ! क्या मैं स्वप्न देख रहा हूँ—मैं होश में हूँ—होश में ??......

वारांगनायें—हाय ! हमारे धणी—मोतियोंवाले !! अब क्या होगा हमारा ?......

[मूर्च्छित हो जाती हैं ।]

गोपालसिंह—मेरे जीव ! मेरे जीव !! हाय ! मेरे जीव !!!

[कुम्भा के शव के साथ रायमल तथा विमलदान का प्रवेश ।]

रायमल—(शव को सुला)—सच है, सच है—यह सच है क्या ? हायरे ! मैं यह क्या देख रहा हूँ ? मेरे पिता ! हाय, हत-भागिनी माँ !

[पछाड़ खाकर शव पर ढल पड़ते हैं।]

विमलदान—धीरज, जिवड़ा! धीरज!! मेरे राजवी! मेरे मालिक!!...मेरे धणी!! ओह—सबसे बड़ा-बुड्ढा होना भी कितना कठोर दण्ड है तेरा ईश्वर? ऊँ-ऊँ!! विधाता!! अरे कोई है? जाकर युवराज को बुला लाओ—जाओ (वारांगनाओं की ओर देख) हटाओ इन कलमुँहियों को यहाँ से! (साथ आये हुए भृत्य वारांगनाओं को उठा ले जाते हैं) परमात्मन्! आज निर्दयता का वज्र तुमने हम निधनों पर पटका—मेरा मुँह क्या ताक रहे हो, दीवानजी!...

क्षेत्र—(जैतसिंह से) तुम मर क्यों न गये वहाँ—मर क्यों न गये? छोड़ कर चला आया, ठहर! तेरी गरदन—(झपटना चाहता है)

विमलदान—(बीच ही में रोककर)—हाँ, हाँ, क्या करते हो, क्या? ज़रा समय तो देखो—

जैतसिंह—[हक्का-बक्का; फिर सहसा)—मैं ही—मैं ही ख़ूनी हूँ—मैं ही—मैं ही!! ठीक कह रहे हो तुम—ठीक! अब किसे मुँह दिखाऊँगा, किसे? महाराणा! मेरे नाथ! मैं ही—मैं ही—(पागल सा दौड़ना चाहता है। फिर स्तब्ध शव की ओर देखने लगता है।)

[धीरे-धीरे ऊदा का प्रवेश।]

रायमल—(उठकर)—दादा! क्या यह सच है? क्या अब भी दुनियाँ चल रही है?

(ऊदा पर गिरना)

ऊदा—(गिरते हुए रायमल को एक हाथ पर सँभालकर)—सच है, सच है, मेरे देवता-स्वरूप भाई ! यह जटिल प्रवंची संसार मृत्यु की भाँति सच है ! विधाता की ठोकरों से जर्जर यह पिशाचिनी दुनियाँ एक चिता की तरह सच है ! आह् ! यह मैं क्या देख रहा हूँ !...

जैतसिंह—खूनी ! खूनी ! मैं ही—मैं ही—मेरे अन्नदाता।...

ऊदा—(चमक, पर संयत हो)—दानजी ! हमारे भाग फूट गये तब क्या ? ओह ! अवश्य, अवश्य ! क्या जैतसिंह मारे दुःख के पागल हो गया ? अच्छा भाग था उसका, जो पागल हो गया ! गोपाल ! उसे यहाँ से ले जाओ—वह पागल हो गया। (गोपाल चुपचाप जैतसिंह का हाथ पकड़कर ले जाता है।) यह पत्थर की छाती टुकड़े-टुकड़े न हुई, ये आँखें न निकल पड़ीं, ये हाथ जड़ न हो गये ! विधाता ! हम सबको पागल क्यों न कर दिया ? निष्ठुर, चिल्ला तो सकते थे जैतसिंह की तरह........

क्षेत्र—(शव से दृष्टि हटा)—झूठ-झूठ-झूठ, सब झूठ ! कुछ षड़यंत्र है, षड़यंत्र ! मैं मान नहीं सकता, महाराणा ने आत्महत्या कर ली ! कैसे मानूँ ? ओह ! भगवान ! क्या कोई भी नहीं है, जो उस हत्यारे की मुश्कें कसकर मेरे सामने लाये, उसको बोटी-बोटी काट डाले, रोम-रोम में उसके तपे हुए लोहे के छड़ घुसेड़ दे ! ओह ! काँधल ! तुम क्यों चले गये, क्यों चले गये ?......

(अर्ध-मूर्च्छित—दो चार भृत्य हवा करने लगते हैं)

ऊदा—(गहरा निस्वास रख)—शोक के मारे सब पागल हो गये ! अब यह छाती फटकर रहेगी—उल्लुओं के साथ क्रन्दन कर रही है यह घिनौनी रात जैसे। ओह ! सवेरा कैसे देखा जायगा ? अमिट अभिशापों के समान ठण्डे लहू से भरे हुए बादल घुमड़-घुमड़कर जड़ हो गये चारों दिशाओं में और कोमल प्रेम भरा मनुष्य का हृदय शोले से उबल उठा। ऊदा ! जैसे यह घड़ी कभी भी न टलेगी। (घूमता हुआ) न टलो, कभी भी मत टलो यह भ्रूजती हुई पल ! किससे देखा जायगा सवेरा ? जब आँधी की भाँति-भूकम्प की तरह—ओह ! दावानल के समान यह रोमांचकारी समाचार मेवाड़ भर में फैल जायगा ! ओह कैसे ? पाषाण की हवेलियाँ ढह पड़ेंगी; मन्दिरों की मूर्तियाँ टुकड़े-टुकड़े हो जायँगी !(रुककर) यह अचल कीर्तिस्तम्भ अपने स्वामी के बिना अधीर हो डोल उठेगा ! क्या ही अच्छा होता, इस समय हम सब-के-सब झपट आती हुई प्रचण्ड आँधी के गले जा लगते; तूफ़ानी समुद्र में मँझधार निराधार डूब मरते ! ओह ! कितना अच्छा होता यह ! यह घड़ी कितनी अमर, कितनी मर्म-कम्पी है ? दानजी ! मेरे पैर काँप रहे हैं—(थंभा पकड़ लेता है)

विमलदान—(रोता हुआ)—धीरज, अन्नदाता ! धीरज धरो। यह विषम वेला यों विलखने की नहीं, मेरे राजवी !...... (दीवान जी से) यों देखते रहने से क्या होगा, भई ! जाकर सब उमरावों को यह ख़बर पहुँचाओ और पुरोहित को बुला भेजो, जल्दी ! मेवाड़ का सिंहासन एक पल के लिए भी ख़ाली नहीं

रह सकता, जानते हैं न आप ? (दीवान धीरे-धीरे जाता है) भाग्य ! विकट ललाट के लेख ! कविजी ! आपभी दीवान जी के साथ हो लीजिये। (कवि महेश जाता है) अन्नदाता ! यह क्या सूझा?—

[कुम्भलदेवी का प्रवेश। पीछे-पीछे कुछ दासियाँ।]

कुम्भलदेवी—(कुम्भा के शव की ओर देखती हुई स्तम्भित) —हैं ! ओह—राम !!

ऊदा—(घुमना रोक, कुछ बढ़)—'मा !......'

कुम्भल देवी—(स्थिर ऊदा की ओर देखती हुई)—क्या है ? क्या कहते हो ? (फिर कुम्भा के शव की ओर दृष्टि कर) वही हुआ न जो मैंने कहा था—हुआ न वही ? (फिर ऊदा की ओर) अपने हाथों इन्होंने ज्वाला प्रज्वलित की, अपने हाथों ! चले थे सबको मुक्ति देने ! जानते न थे, सारा मेवाड़ जान का गाहक हो जायगा ! सारे लोग इतना कोसेंगे—इतना, कि जीवित रहना कठिन हो जायगा ! कहा था न मैंने, कहा था न ? वही हुआ न ? बोलो ! (शव के पास बैठ) बोलो—देखो, ये सब तुम्हारे बाल-बच्चे जीवन-हीन तुम्हारी ओर ताकते खड़े हैं ; कुछ तो कहो ! शववत् हो गये सब-के-सब, स्वामी ! अब तो उत्तर दो ! हँ हँ हँ हँ ! बोलो ! बोलते क्यों नहीं, ऐसा क्या हुआ ? जो यों चुप-चुप-सर्वदा के लिए चुप ! कहाँ गया वह ईश्वर जो तुममें बैठ बोला करता था ? ठोकर मार कर चला गया न ? चला गया न ? (घूम, उभड़कर कहो) आत्महत्या करने दी तुम सबने ! तुम सबके होते—सबके होते

कटारी भोंक गये अपने कलेजे में—अपने हाथों ही ! हाय निपूती क्षत्रियाणी ! इस दिन को देखने जीवित रही तू—(शव पर ढल पड़ती है)

चैत्र—(होश में आ)—माँ, हम सब निराधार हो गये !...

ऊदा—(स्थिर खड़ा हुआ)—यह कैसा रोमाञ्चकारी स्वप्न है—कैसा अनुभव ?

[अपूर्व देवी का त्वरा से प्रवेश]

अपूर्वदेवी—(ठिठककर)—क्या तब सचमुच ही मेरा सुहाग लुट गया ?...

रायमल—(जग कर)—नहीं, नहीं—सब सपना—कौन माँ ! ओह ! माँ ! क्या देख रही हो यों—हम सब लुट गये !...

अपूर्वदेवी—लुट गये ? हम सब—लुट गये ? नहीं-नहीं ; यह सब किसी नीच का काला जादू है ! जो मैं ऐसा सजीव सपना देख रही हूँ ! काली चौदश के दिन यह कृत्या—यह बिजली ? वाह रे, माँ ! वाह रे जुगदम्बे ! वाह ! खूब कृपा करती हो अपने भक्तों पर ! (दिग्मूढ़-सी) आँखों ! निरख लो अपना गर्व ! (बिन्दी बिगाड़ती हुई) तुझे बड़ी अकड़ थी ! (सिर नोंच कर) हे माँ ! पृथ्वी क्यों नहीं फट जाती ?—(शव पर ढलना)

[मेघ-गर्जना के साथ बिजली, हवा और वर्षा]

चैत्र—(मारे दुःख के)—आकाश की छाती फट गई-फट गई !

कुम्भलदेवी—(सिर उठा कर)—नारायण के पैर दबाती हुई लक्ष्मी का हृदय टूट गया !

विमलदान—(स्थिर होने की चेष्टा करते हुए)—धीरज, माँ जी! माड़ी, धीरज !! यों धीरज न खोओ, माँ जी!......

कुम्भलदेवी—(विस्फारित-सी)—धीरज? धीरज !! चारण बोलना बड़ा सहज है, चारण! पर यहाँ मेरे अन्तर में देखो जरा! पता पड़ेगा, तात! यह बिजली जैसे मेरे प्राण हों—यह आँधी मेरा रोम-रोम, चारण! यह मूसलाधार पानी मेरी फूटी आँखों का रोना। दानजी! क्या सतियों ने आज अपना सत छोड़ दिया? वीरों ने अपना धर्म, हाय! क्या त्याग दिया धरा ने अपना धारण—

[दो-चार उमराव, पुरोहित, दीवान का नेपथ्य में दिखना]

विमलदान—(उन्हें रोक कर)—माँ, विपदा में फिर यों कातर होते हैं? शान्ति, माँ वे आ गये—अन्तपुर सिधारो! (दासियों से) अरे, अन्दर पधरा दो—क्या किया जाय, माड़ी! भाग्य के विकट लेख! ॐ-ॐ !!......

अपूर्वदेवी—(उठती हुई)—चेत्र! तुम रहो इस विपंची झूठी दुनिया में—मैं नहीं! मैं वहाँ जाऊँगी—वहाँ, जहाँ ये मेरा सुहाग ले चले गये हैं। ओह! माँ! तब क्या, यह दुनियाँ विष का सागर है? सुख—सुख क्यों मनाता है तू जिवड़ा! इस दुनियाँ में, माया रे माया सब! झूठ—मैं सती हूँगी, इनके साथ ही जल मरूँगी! जीकर क्या करूँ अब? धर्म पालन का यह परिणाम, सत रखने का यह फल!......चलो बहन!......

[नेपथ्य में दासियों के साथ प्रस्थान, दूसरी ओर से उमराव, पु० दीवान का प्रवेश]

अमरसिंह—मेवाड़ के धणी ! शोक !......

रावलगैपाल—एकलिंगनाथ की मरजी !......

क्षेमकरण—कर्मों का फल ! हरि-इच्छा !!......

ऊदा—(चमक, क्षेमकर्ण की ओर देखता हुआ) राजा का धर्म इतनी कठोर तपस्या है, इसका आज पता चला ! बाप के शव से खून नहीं रुका और हम सिंहासन पर बैठ रहे हैं—

क्षेत्र—हुजूर के ठिकाने में होता, मैं होता, तो सिंहासन उठा नीचे फेंक देता !

रायमल—मैं उसे समुद्र में डुबो देता ! आज एक राजर्षि अपने हाथों यों आत्महत्या कर गया !

क्षेमकर्ण—विधि के लेख, कर्मों का फल, हूँ !......

विमलदान—(पुरोहित से)—आगे बढ़कर मेदपाट के युवराज के ललाट पर तिलक करो ! इस घड़ी से मेवाड़ के धणी ये हैं—महाराणा, पृथ्वी नाथ !!......

रमाशंकर पुरो०—शिव-शिव ! हरि ॐ हरि ॐ!.........
(तिलक करने आगे बढ़ता है)

ऊदा—(आकाश में देख)—महाराणा ! पृथ्वीनाथ ?......'

विमलदान—अरे, मन में शान्ति रख, भाई ! हाथ क्यों काँप रहा है—इतना ! जन्म-मरण तो हुआ ही करते हैं ब्राह्मण देवता, पर क्या सिंहासन खाली रह सकते हैं ? धीरज धर भाई !

[बिजली की कड़कड़ाहट, आँधी का झोंका, हेली]

ऊदा—ठहरो, (ललाट हटाकर)—बिजली ! इतनी जोरों की ? चेत्र ! ....

चेत्र—(आकाश की ओर देख)—और आँधी भी महाराणा !

कवि महेश—हेली ! मानो असीम रुदन—हाहाकार !......

ऊदा—(सहसा घूमता हुआ)—जरा रुको ! रुको ! (फिर रुककर) इतना सूचिभेद्य अन्धकार—अच्छा ! (स्थिर हो) जीवन-मरण ? आत्महत्या !! अच्छा, करो तिलक !......

[रमाशंकर मंत्र बोलते हुए राज्य तिलक करता है। सब उपस्थित सलाम करते हैं]

दो-तीन—जय मेवाड़ नाथ की ! जय एकलिंग की ! जय महाराणा उदयसिंह की !!'

रायमल—(यों ही)—कितना विषम, कितना स्वार्थी यह राज-धर्म है ? बाप पड़ा है ; शोक से छाती भर रही है ; पर—पर ओह ! भगवन् !

चेत्र—(घृणा से)—पर खून का तिलक करवाने ललाट आगे बढ़ ही जाता है—खून का तिलक !

ऊदा—(तिलक करवा, उदार)—ठीक है—ठीक है ! मैं भी यही कहता हूँ ! आज का यह दृश्य देख कर प्रकृति की छाती भी चूर-चूर हो गई। पर क्या किया जाय ? बहुत चाह रहा हूँ, मैं पाटवी न होता—पर विधाता की मरजी ! विधाता की !! ओह

क्या किया जाय अब ? रोम-रोम में ग्लानि उफन रही है ; पर तुम्हीं कहो सब, क्या करूँ मैं ? कर्त्तव्य—क्षेत्र ! क्षेत्र ! सच कहता हूँ, सच ! विधाता की ही यही इच्छा थी ! (घूम कर) दीवानजी ! कल का दरबार स्थगित रहेगा ! मेवाड़ भर में दान-पुण्य के भाण्डार खोल दो ! शोक-ग्रस्त जनता दान-पुण्य के अमृत से शान्त होगी—

[यवनिका पतन]

———

दूसरा अङ्क

प्रथम दृश्य

[रायमल का अन्तपुंर]

रायमल—ईश्वर की माया कितनी विचित्र है, क्षेत्र ! आज के दिन तो मैं इस समय पिताजी के सिराने बैठा-बैठा वेदान्त-सूत्र पढ़ रहा था और आज ? आज समस्त संसार में खोजने पर भी वह गम्भीर, प्रसन्न और प्रेमभरी मूर्ति नहीं दीख पड़ेगी ! लोगों के आँसू सूख गये ; मौत के समय का हाहाकार शान्त हो गया—काल की लूट सब विसर गये। यह पृथ्वी जैसे पहिले थी, वैसी ही आज है ! जैसे कुछ भी तो न हुआ हो ; पर मैं तो जैसे क्षण-क्षण में पिता जी की स्मृति के मारे ठोकर खा कर गिर पड़ूँगा ! ओह, क्षेत्र ! यदि सहृदय विधि ने निर्मम मनुष्य की छाती में स्मृतियों का ऐन्द्रजाल रचा न होता, तो विवश मनुष्य में दिव्य मानवता की कल्पना कैसे होती ? पिताजी स्वप्न हो गये—

क्षेत्र—अपना मनोरथ अपने ही रक्त में डुबो कर चल दिये ! बड़े चले थे संसार भर को मुक्ति देने !......

रायमल—(निश्वास रख कर)—बड़ी दिव्य विभूति थे वे ! बड़े ज्ञानी, आत्मदर्शी, बड़े उदार ! उनका सन्देश आज हम स्वार्थियों को भले ही पसन्द न आये, पर जब आगामी पौधों में मनुष्य मनुष्यत्व का मूल्य और महत्व देख पायेगा, उस समय पिता जी महापुरुष का अवतार समझे जायँगे—यह निश्चय है, निर्विवाद है ! इस दुनिया की रीति निराली है—अपनी भलाई करने वाले को वह अज्ञान में कोसती है—उसका अहित तक कर देती है ; पर जब ठोकरें खा-खाकर वह अपने भले को समझ पाती है, तब उस अपमानित सन्देशदाता की वह पूजा करती है—उसे अपना गौरव समझती है ! उसके जीवन की स्मृतियों की खाद अपने हृदय-खेत में डाल वह उज्ज्वल-से-उज्ज्वल मानवता का सृजन किया करती है—

क्षेत्र—(बीच ही में व्यंग्य पूर्वक)—जो कुछ हुआ, ठीक हुआ—तब ! (कुछ उत्तेजित हो) सब पार उतर गया ! महाराज्य टूटता-टूटता बचा ! जागीरों की फुलझड़ियाँ छोड़ दी गईं। नये महाराणा ने जीवन में पहली बार मेवाड़ भर के ब्राह्मणों को सन्तुष्ट किया। आश्चर्य ! महीने भर तक किसी भी भीखमंगे की आँखें भूख की आग से न जलीं ! दान-पुण्य की तो जैसे रह-रहकर बाढ़ आई ! और, जैतसिंह जैसे मूर्ख और...अब क्या कहूँ—को पहले दर्जे का लंगर-तोड़ा मिला—

रायमल—(स्वयं कुछ शर्मा कर)—मुझे तुम्हारे लिए दुःख हुआ। तुम्हें अच्छा ठिकाना न दिया गया! मैं अवसर पाते ही राणाजी को यह कहूँगा; अवश्य कहूँगा!

क्षेत्रसिंह—(तीव्रता-पूर्वक)—मैं दयादान नहीं चाहता! यहाँ भिखारीपन सीखा ही नहीं! पर उस गोले को श्रीमान् के बराबर का सम्मान प्रदान करते समय क्या महाराणा की अक्ल मारी गई थी? मैं पूछता हूँ, देगा कोई जवाब? भ्रष्ट हो गया था उस समय क्या उनका विवेक-ज्ञान? उमरावों की आँखें मारे आश्चर्य से फट गईं! (अपने-आप ही कट कर) क्यों दोगे मुझे अच्छी जागीर? मैंने तुम्हारी हाँ-में-हाँ थोड़े ही मिलाई थी? पर मैं भी बता दूँगा! लात मारता हूँ, ऐसे सौ ठिकानों पर! मैंने पट्टा फाड़ कर फेंक दिया, पूज्य!...

रायमल—(अवाक् से)—फाड़ कर? क्यों? बड़े विचित्र जीव हो तुम जी! ज़रा तो सोचना था!...

क्षेत्र—(उबल कर)—मैं एक गोले से भी गया-बीता समझा गया! इस अपमान को मैं सहन नहीं कर सकता—कदापि नहीं! वह दिन दूर नहीं है, जब राणाजी को भर दरबार में इसका जवाब देना होगा! मुझे वे समझते क्या हैं?

रायमल—शान्त होओ—देखो, नादानी न करो! अच्छा ही हुआ, जो मेरे साथ-साथ यहाँ तक अभी चले आये! राणाजी को मैं समझा दूँगा; इतने व्यग्र क्यों होते हो मुफ़्त में?

क्षेत्र—(गंभीरता-पूर्वक, पर वैसे ही)—मैं आया था इसीलिए

कि आपके पास अपने उद्गार निकालूँ! और किसके पास जाकर अपनी व्यथा कहूँ मैं? मैंने अपनी जनेता का प्रण लिया है कि मेवाड़ की एक तसु जमीन भी लूँ, तो मैं कुम्भा का औरस नहीं!...

रायमल—अरे, क्षेत्र? तुम यह बोल क्या रहे हो—होश में तो हो?

क्षेत्र—(उसी तरह)—मैं मेवाड़ छोड़ कर चला जाऊँगा और कहीं अलग राज्य बसाऊँगा—हा, हा, हा!

रायमल—(घूर कर)—ज़रा शान्ति से सोचकर काम करना चाहिए—

क्षेत्र—खूब सोचकर काम कर रहा हूँ मैं, पूज्य! खूब सोच कर! मैं कुछ भूला हुआ जैसे सोच रहा हूँ—पर क्या याद कर रहा हूँ, यह याद नहीं आता! एक सच्चा राजपुत्र इस हेठी को कैसे सह लेगा? सह ले, तो उसकी रजपूती नाइयों की बातें हैं!

रायमल—(कुछ घूमते हुए)—क्षेत्र! मैं तुम्हें यों मूर्खता न करनेदूँगा! धीरज रखो—यों झगड़ा-फ़साद करने से काम न चलेगा! मैं यह मानता हूँ, कि तुम्हारी प्रतिष्ठा बरोबर न की गई; पर इससे क्या? हमें विवेक से काम लेना होगा, समझे?

क्षेत्र—(अधिक उत्साहित रोष से)—यहाँ दबना किसी से नहीं सीखे! गुलाम थोड़े ही हूँ, जो दोगे, वह चुपचाप ले लूँगा! मेवाड़ के इतिहास में मेरा भी नाम रहेगा—अच्छा, आप आज्ञा कर रहे हैं, तो मैं शान्ति से काम लूँगा; पर कह देता हूँ, राणा मुझे छेड़ कर सुख की नींद सो न सकेंगे! श्रीमान्! उनसे अर्ज

कर दीजियेगा कि मैं विना जागीरी ही जी जाऊँगा! ऐसे सड़े टुकड़ों को शेर का बच्चा सूँघता तक नहीं—

(सरोष प्रस्थान)

रायमल—(अकेले ही)—इसमें क्षेत्र का दोष ही क्या? राणाजी का अन्याय आँखों में चुभे ऐसा ही है! कोई वजह नहीं कि जैतसिंह को इतना दिया जाय और इसे नहीं! ग्यारह लाख! होगा—तुझे क्या? तेरे जीवन का देवता था, वह भी चल बसा! रायमल! महल की दीवारें जैसे पहले थीं, वैसी अब भी हैं! पर उनसे जैसे कुछ अदृश्य हो गया! रात भी वैसी, तारे भी वैसे ही; यह झरोखा भी वही—सब वही! केवल पिताजी की वाणी का, दृष्टि का स्पर्श इन पर नहीं रहा—जैसे संसार का हृदय लुट गया! ईश्वर की लीला, विधि के लेख! पामर अकिंचन मनुष्य—और ममता से भरी छाती! स्वप्न में कभी-कभी कितने मूक और दीन दिखते हो तुम, पिताजी! (निस्वास रख कर) चलूँ—मैं भी इसी तरह एक दिन चल बसूँगा—चलूँ! थोड़ी देर अपने नये यंत्र से सौर्य-मण्डल की लीला देखूँ! कभी-कभी तो पिताजी स्वप्न में ऐसे सजीव मालूम होते हैं कि क्या करूँ? तब क्या सूक्ष्म शरीर का जीवन इसी जीवन के समान है?—होगा...चलूँ!

(जाते हैं)

दूसरा दृश्य

[ऊदा का अन्तर्पुर]

ऊदा—(महाराणा की प्रतीक्षा में घूमता हुआ रुक कर)—सिद्धि, सिद्धि का आनन्द सर्वदा क्यों नहीं रहता ? वह—वह राज-सिंहासन पर पहली दफ़ा बैठना, छत्र की रत्नों की झालर से काँपती हुई छाया, ढुलते हुए चँवर की मूक प्रतापी गति और भरे हुए दरबार की 'खमा-खम' ! यह सब मन में आनन्द की आँधी उठा गया जैसे ! पर अब ? केवल ऊपरी मान-मर्य्यादा, दिखाव-आडम्बर ! जैसे किसी के हृदय में उत्साह ही नहीं ! उमंग ही नहीं ! वह अन्तर की भक्ति, वह सहृदयता, जो पहले सभी में हिलोरें ले रही थी, अब किस में हैं ? किसी में नहीं ! (रुक कर) तुम्हारी भ्रान्ति है यह। भ्रान्ति ? हो सकता है—हो सकता है ! हाँ, यह सब तेरे मन की उदासी है। ऊदा, आज तू

मेदपाट का स्वामी है—मालिक ! तेरे भ्रूभंग पर करोड़ों के जीवन निर्भर हैं ! प्रताप, शासन ; शक्ति ! सब कुछ तेरे चरणों में लोट रहा है ! तुम—तुम अब महाराणा हो, सम्राट—पृथ्वी-पति ! (चौकी पर बैठ कर) पर सिंहासन इतना रिक्त क्यों मालूम हो रहा है ? एक अभाव, एक प्यास—भय, आशंका ! ओह ! ऊदा, (वापस उठता हुआ) जिसे मैंने अपने जीवन-स्वप्न की इष्टा बनाया, वही वहाँ नहीं ! मैं, अकेला, सर्वथा अकेला ! उसे कैसे कहूँ ? न कहूँ, तो कैसे जीऊँ और कहूँ तो भी कैसे जीऊँ ? (घूमता हुआ) समस्या, विषम समस्या ! राणी ! मनुष्य को तुमने देव क्यों माना ? देव ? दानव ! राणी ! यह पाप तुमसे छिपा कर मैं—मैं कब तक हास्य और विभूति उधार लेता रहूँगा ? कब तक ? ऊदा ! (रुक कर) तुमने यह क्या किया ? बाप की हत्या—उस बाप की, जिसकी रग-रग में मेरे लिए प्रेम छलछला रहा था, उस बाप की......चुप ! भूल जा उस बात को, बिलकुल भूल जा। गाड़ दे उसे घोर विस्मृति के अथाह गर्त में—गहन गर्त में गाड़ दे ! भूल जा—देख, आज दरबार में सब किस प्रकार तेरा मुख देख रहे थे—हाथ बाँधे खड़े थे ! तेरे नाम के जय-जय निनादों से राज्य-प्रासादों का कोना-कोना गूँज उठा था ; भाटों की सुभट वाणियाँ कितनी जोशीली थीं ? चारों ओर तेरी महिमा का सागर तरंगित हो रहा था ! प्रताप शक्ति और भय की बिजलियाँ कौंध रही थीं सब के हृदय में ! ऊदा ! ऊदा ! फिर यह उदासीनता, यह आशंका क्यों ? क्यों यह भय, यह जड़ता-

क्यों ? तब क्या—तब क्या हत्या का पाप इतना जहरीला, इतना काटनेवाला—चुप ! ऊदा ! बड़ी गरमी है गंगा !......(चौकी पर जा बैठता है)

गंगा—(प्रवेश कर)—अन्नदाता ?...

ऊदा—पंखा झल ! (गंगा पंखा झलती है) तुम इस समय पूर्ण हो—सब ओर से। किस बात की कमी है तुम्हें ? और उसे याद ही क्यों करते हो ? क्या इतिहास में यह होता नहीं आया ? होगा—गंगा !

गंगा—पृथ्वीनाथ ?

ऊदा—कुछ नहीं—महाराणी ने इतनी देर लगा दी ! क्या अभी तक मुहूर्त नहीं आया ? किया तुमने ; उसे क्यों साथ चाहते हो ? भोगो अकेले—(उठता है)

गंगा—अभी मूरत नहीं आया, अन्नदाता ! दूसरे पहर की शुरू में है वह !...

ऊदा—अच्छा !...(घूमता है। दूसरा प्रहर बजना) ले, दूसरा प्रहर प्रारम्भ हो गया ! वह आती ही होगी—(रुक कर)—तूने कुँवर को देखा है, री ?...

गंगा—(खिल कर मुस्काकर)—जुग-जुग जीओ मेरे मोतियों वाले ! खमा मेरे लाल को, पृथीनाथ !

ऊदा—(चौकी पर बैठता हुआ)—वह कागज—गंगा ! जा तू महाराणी की राह देख ! (गंगा पंखा रख कर जाती है) वह पत्र ! (उठता हुआ) यह क्या ? जैसे मेरे मन में कोई बोल रहा

है—क्या हो गया तुझे यह ? (स्थिर खड़ा रह कर जैसे सुन रहा हो) पिता के ख़ून से रंगा मुकुट पहनकर कैसे मिलोगे मुझे ? ऊदा, ऊदा!! स्वस्थ हो—कायर !...

[नेपथ्य में—खमां महाराणीजी को ! खमां कँवरजी को !...(चाल के साथ नुपूर)] स्थिर हो ! चुप, मूक ! वह आ रही है—आ रही है, पोतम ! देख, (झरोखे के पास जा, खड़ा रह, बाहर झाँककर) देख ! आहा ! कितने सुन्दर तारे हैं ? कैसी शान्त नीरव रात है ! कितनी मीठी मन्द हवा चल रही है ! सँभल, यह निर्बलता दूर कर ! कर दिया सो कर दिया ! अब—सँभल जा, आगे के लिये !

[दो-चार दासियों के साथ महाराणी का प्रवेश ।]

गंगा—खमाँ पृथीनाथ ! धणी खमाँ, महाराणीजी ! जोड़ी अमर रहो—मैं वारी-वारी जाऊँ ! ड्योढ़ी मंगल, अन्नदाता !

(कुँवर को पलने में सुलाकर सबके साथ प्रस्थान)

ऊदा—(अर्धदग्ध मुस्कराने की चेष्टा करता हुआ)—महाराणी !...

महाराणी—(थिरक-थिरक विहँसी)—महाराणा !......

(आगे बढ़ती है)

ऊदा—(अपलक सप्रेम देखता हुआ)—इतनी देर तक राह देखते-देखते आँखें थक गईं—

महाराणी—(पास आ, एक हाथ हाथमें ले)—मन तो न थका, महाराणा ? (चौकी पर दोनों बैठते हैं) महाराणा ! कितना मधुर और महान शब्द है ? बधाई दूँ क्यों ? (मुलक-मुलक हँसती है) ।

ऊदा—(सँभलता हुआ)—बधाई ? (निश्वास रख, उठता हुआ(

महा—राणी! पीतम! पहले से तुम अब आज करोड़ों गुनी सुन्दर, सरस, समोद, सप्रेम प्रतीत होती हो—अरबों गुनी!! क्या देकर तुम्हारा स्वागत करूँ? (पास लगोलग बैठ कर) मन में आता है, यह सारा राज्य तुम्हारे चरणों में रख दूँ!...

महाराणी—(विभोर, कन्धे पर सिर रख कर)—दासी को कुछ न चाहिये! यह प्रेम-भाव मुझे त्रिभुवनकी सम्पत्ति दे गया! महाराणा! ओह! कितने विशाल, कितने गौरवमय, कितने महिमामय लगते हो मुझे आप आज! तुम्हारे चरणों में आज अभी बैठ कर मैं कितनी सुखी हूँ—कितनी? (गद्गद् हो जाती है)।

ऊदा—(सहसा जैसे चिन्तित हो गया हो)—क्या यह सुख सर्वदा रहेगा, पीतम?

महाराणी—क्यों नहीं? मेरा मनोरथ पूरा हो गया। यह कुँवर, मैं—आप! आप-सम्राट, महाराणा! कितने प्रशस्त, कितने ऊँचे! रामचन्द्र भी ऐसे मोहक न लगते होंगे सीता को, जैसे आप आज मुझे लगते हैं अभी! सच, राज्य की विभूति ने हुजूर के मुखारविन्द पर गरिमा का उबटन मल दिया है, क्यों?...

ऊदा—आज का दरबार बड़ा अच्छा रहा!......

महाराणी—मैंने राई-रत्ती सुना! पर यह क्या, हुँ? महाराणा, चिन्तित-से क्यों दिखते हैं? तब क्या, राज्य-भार ने अभी से राणा को अपनी पत्नी के पास भी अनमना रखना प्रारम्भ कर दिया—

ऊदा—(उठता हुआ)—कदापि नहीं! राज के समय राज,

काम के समय काम, इस समय उसका क्या ? (घूम कर) मैं असंख्य-असंख्य प्रजाजनों का पिता-स्वरूप हो गया, तो— (पास आ राणी के कन्धे पर हाथ रख) तो तुम माता-स्वरूप ! ऐश्वर्य और विलास की गंगा-जमुना शक्ति के समुद्र में आ मिलीं ! तुम और मैं मनुष्य से साम्राज्ञी और सम्राट हो गये ! जीवन इस समय कितना मधुर, सुखमय है—चारों ओर निश्चिन्त आनन्द के मेघ बरस रहे हों जैसे ! चारो ओर से सुख की घड़ियाँ आ जुटीं—जैसे पतझर में वसन्त कूज उठा हो— (झरोखे के बाहर झाँकता है)।

महाराणी—(उठती हुई)—अच्छा ! आप कवि भी हो गये ? (कुँवर के पलने के पास जा) वहाँ क्या निरख रहे हैं ? यहाँ पधारिये न ! देखिये, हमारे मीठे सुखी प्रेम की यह मूर्ति ! मेरे अखंड सुहाग यह आशीर्वाद ! राणा जी, वहाँ झरोखे में क्या देख रहे हैं ? (कुँवर को उठाती हुई) अच्छा, तब मैं ही अपनी भक्ति, अपने धर्म और प्रेम को श्रीचरणों में रख दूँ ? इतना संकोच क्यों ?

ऊदा—(सिर घुमा, विकल-सा)—उसे अभी मत जगाओ, अभी नहीं ! मत जगाओ उसे ! जगेगा, तब—तब जी भर कर देख लूँगा ; जी भर कर, समझीं ? अभी नहीं—सोने दो उसे !

राणी—(एक क्षण कुछ सोच)—जैसी आज्ञा ! (पास आ झरोखे के बाहर देखती है) अच्छा ! तब सोवें ! (उबासी लेकर) आह् ! कैसी अँधेरी रात है ! दिन में दिखती दुनियाँ जैसे कभी

बनी ही नहीं ; सुनसान—बीहड़, ओह ! कितनी भयंकर रात है—(घूम कर)—याद है ? वह—वह आधी रात, हें ? (ऊदा चौंकता है) क्यों, चौंके क्यों ? मैं तो उसे अब तक न भूली !...

ऊदा—(पसीना-पसीना)—असह्य गरमी है ! भूल जाओ उसे ! मैं भी—मैं भी भूल गया—ओह ! दिन हो गये बारिश न बरसी !...

राणी—मैं पंखा झलती हूँ—(पंखा उठाने जाती हुई)—कितनी दया हुई भगवन् ! तुम्हारी, जो तुमने मेरे स्वामी को उस भयानक पाप से बाल-बाल बचा दिया ! अभी जैसे मैं वह दृश्य पुनः देख रही हूँ ! (पास आ पंखा झलती हुई) नाथ ! चेष्टा करने पर भी वह काल-रात्रि नहीं भूलती ! कितने भयंकर दिखते थे आप ! ओह !...

ऊदा—(घूर कर)—हाँ,वह निविड़ अन्धकारमयी रात थी—डरावनी ! पर जो कुछ हुआ, हो गया...

रानी—उस दिन से मैंने पल-पल भगवान से प्रार्थना की है और आज भी करती हूँ कि वह दयानिधि आपको ऐसे सभी पापों से बचाता रहे—मेरा प्राण लेकर भी ! कहीं आप वह कर बैठते... (हाथ मलकर)...ओह ! राम ! तो—तो मैं और यह कुँवर कैसे जीते—कैसे ?

ऊदा—(घूम कर)—इतनी भयानक गरमी कभी मालूम न हुई ! सुनसान रात है—संसार के चराचर प्राणी इस सघन-मूक अन्धेरे को भूल सो रहे हैं और हमीं जाग रहे हैं—सोओ तुम !

मुझे मारे गरमी के नींद न आएगी—कैसे आवे ? (घूमता-सा) पलकें भारी, मन भारी—जलती हुई उष्णता और निद्रा-हीन रात ; सब एक साथ ! (ठहर कर) सच कह रहा हूँ, तुम किसी ऋषि की पत्नी होने के क़ाबिल थीं ! सच कह रहा हूँ !...

राणी—(हर्षोत्फुल्ल-सी)—मेरे लिए तो आपही महात्मा हैं !...

ऊदा—(ठहर कर)—महात्मा ? हूँ—(फिर घूमता है, घूमता-घूमता पलने के पास जा पहुँचता है) हैं ? क्या कह रही हो ? खून से रंगे हुए हाथों में...कैसे लोगे...क्या कह रही हो ? (सँभल) ओह ! तुम्हारा वह पत्र तो जैसे मुझे याद हो गया है ; याद (घूमता हुआ) याद हो गया है जैसे ! (झरोखे के पास जा खड़ा होता है) कौन मुझे अब सहानुभूति, स्नेह—प्रेम की आँखों से देखेगा—कौन ? (बाहर देख कर) रात का यह अन्धकार-नद प्रभात के सागर में मिलने जा रहा है और मैं एक कटे हुए बरगद के पेड़ की भाँति अकेला खड़ा हूँ, अकेला !......

रानी—(पास आ कर)—क्या कह रहे हैं ? इतने विवर्ण क्यों हो गये ? क्या मुझ से कोई अपराध हुआ है ? जो यों...

ऊदा—(निस्वास के साथ)—कुछ नहीं !...कुछ भी नहीं ! अब घाम सहा नहीं जाता ! मैं—मैं स्नान करूँगा ! तुम सोओ गाढ़ निद्रा के सुखद अमृत का पान करो और मैं ? मैं ठंडा होने के लिये नहा आऊँ ! (जाने का उपक्रम करता हुआ) हूँ ? जीवन, क्या यही है—यही होना था ?.........

रानी—(भयातुरा)—बात क्या है ? यों चिन्तित से क्यों

हो।गये आप ? सुनते हैं, राणा ! इतने विकल फिर क्यों ? क्या हुआ—कोई विपदा है क्या ?......

ऊदा—(चौंककर)—क्या ? (सहसा) क्या विपदा ? नहीं नहीं—विपदा फिर कैसी ? मैं अभी आया ! शीतल सुगन्धित जल गरम-गरम मस्तिष्क को अवश्य शान्त कर देगा। है न ? फिर मैं इस गाढ़ अन्धकार से भी, इस विषम विष भरे घिनौने निविड़ वीहड़ से भी, प्रसन्न हवा की तरंगें प्रतीत कर पाऊँगा ओह—अवश्य ! असह्य, असह्य है यह दाह—उष्णता ! यह आया—(प्रस्थान)

राणी—(गहरा निसास भर कर)—तब, तब क्या मेरे पत्र ने राणा को बचाया ही नहीं, उन्हें यों जगा भी दिया ? इस तरह विकल, विक्षिप्त-से तो वे कभी न दिखते थे—आज ही क्या हुआ यह ? क्यों हुआ ? अवश्य-अवश्य ! मेरे पत्र ने इनको रास्ते पर लगा दिया और अब उस जघन्य विचार के लिये भी उन्हें दुःख हो रहा है—और क्या ?...मेरे प्रभो ! तब क्या राणा ने मुझे इतना माना ? (मुस्का) क्यों न मानते ? उसमें मेरे और मेरे लाल के प्राण रंगे जो पड़े थे ! ओ राम रे ! कितना पापी इरादा था ? हत्या—और वह भी बाप की ! ओह, ईश्वर ! यदि मुझे जान भी देना पड़ता, तब भी देती—पर उन्हें रोकती अवश्य, अवश्य !! कौन अपने प्राणप्यारे देवतारूप स्वामी को—छी ! रह-रह कर ये बातें मुझे क्यों याद आ रही हैं अभी ? (पलंग के पास जाकर) मुफ्त में उस रात की याद दिला उन्हें इतना दुःखी किया ! मुझे इस

समय यह कहना ही न चाहिए था ! होगा—मुझे इस समय कमी किस बात की है ? सुख—सुख ही सुख ! वह काला बादल बीत गया ! मेरे प्रियतम ! मैं और मेरा फूल-सा लाल !! (चूमने झुकती है)

[गंगा का शीघ्रता-पूर्वक प्रवेश]

गंगा—(कातर)—अन्नदाता ! गजब हो गया ! वह—वह बीमार जमुनी एकदम बकने लग गयी, हजूर ! और तमगों से सर कूटने लगी—खून निकल आया ! ओह ! मूँड़काटी ने—सब सो रहे थे—सरकार...

राणी—(हड़बड़ा कर)—तो यहाँ क्यों दौड़ आई ? कलमुँही नहीं तो ! ऐसा ही है, तो किसी को भेज वैद्यराज को बुला भेज ! जा—समय-कुसमय भी नहीं देखती ! (गंगा हिचकता कर जाती है) राणा अब तक न लौटे ! चलूँ, उस ग़रीब को देख आऊँ ! मेरे भरोसे आई हुई है ! मैं भी कितनी निर्दय हूँ, जो अपने सुख की भावनाओं में डूब कर उस अभागिनी के प्रति सहानुभूति न दिखाई ! बेचारी ! अकेली है—उसका मेरे सिवाय कौन है ? राणा को आते शायद देर लगे ; तब तक चलूँ, उसे देख ही आऊँ—

[प्रस्थान ।]

तीसरा दृश्य

[राज-मार्ग]

कवि महेश—(प्रवेश कर)—दिन हो गये, कुछ भी नहीं लिखा—

विमलदान—(प्रवेश कर)—कहिए, म्हारा ! जय श्री अम्बे ! आज कल तो दिखते ही नहीं कवि जी ! अच्छे दिवसों की याद की भाँति कहाँ रहते हैं ?......

कवि महेश—वड़े हुजूर के देवलोक वाद अव यहाँ रह ही कौन गया है, जो मेरी क़दर करे ! नये महाराणा को कवियों से चिढ़ सी है। वाहर आ-जाकर करें क्या ? घर ही में पिछले दिवसों की याद करता हुआ पड़ा रहता हूँ ! सव दिन जात न एक समान......

विमलदान—(निस्वास के साथ)—वैसा जगा हुआ राजवी तो युगों में होगा !

कवि महेश—(बीच ही में जैसे)—देख रहा हूँ, आप भी इधर पहले से बहुत घट गये हैं ! वह तेज़ी, चुहों और विरुदावलियों की झमक जैसे उड़ गई !

विमलदान—अब वृद्ध भी तो हो गया हूँ। और इधर नये राजा, नया ठाठ ! सर्वदा नई-नई बातें देखते-देखते अब इन निस्तेज आँखों में पानी भर आता है ! क्या कहूँ, बड़े हुजूर के बाद तो जैसे दुनियाँ ही बदल रही है ! टुटपूंजिये हजूरियों को, देखा न ! सोने की ज़मीनें लुटा दी गईं......'

कवि महेश—(निराश)—मैं भी स्वयं एक छोटे-मोटे गाँव की आशा में मुँह लटकाये हुए था, पर सुना है, मिलती हुई वृत्ति भी राम के भरोसे है !

विमलदान—'क्या किया जाए ? लड्डू के बाद तृण-खाना बुरा लगता ही है ! ठीक है......

[भवानी शंकर का प्रवेश]

भवानी—(चौंक कर जैसे)—ओहो ! आज किसका मुँह देखा, जो उभय देवताओं के दर्शन हुए ! धन भाग ! क्या गुट-पुट चल रही है, कविजी ! क्या कोई नया नायिका-भेद खोज लाये हो ? आज कल यही हवा बह रही है न, इसलिये पूछता हूँ...

कवि महेश—अरे भाई ! भाड़ में जाए नायिका-भेद ! यहाँ तो क़िस्मत का रोना रो रहे हैं। कविता करें कि जीवित रहें ? तुम्हारी वृत्ति तो सही सलामत है न ? संसार में तुम मजे में रहे !

पुरोहिती काव्य-रचना से अधिक वज़नी ठहरी, तब ! हिं-हिं-हिं !!

भवानी—(मन में कुढ़ कर)—क्या रक्खा है, पुरोहिती में ? पिताजी को उसका बहुत मोह है ! खुद पुरोहित हैं, तो मैं भी बनूँ ! जैसे बेटा बाप का दर्पण हो ! बैठे-बैठे राज्य के टुकड़े तोड़ रहे हैं, और क्या ? हाँ, पूज्य ! आप कैसे चुप हैं ? कुछ नयी-पुरानी ? दिखे गगन में गज-गण्डस्थल कि नहीं ? सुना है, काँधल को कोई नया प्रान्त मिल रहा है, सच है ?......

कवि महेश—तो बुरा ही क्या होगा ? बड़े हज़ूर कितना मानते थे ? मुझे पूछो तो, उन्हीं के यों चले जाने से बड़े हज़ूर को इतना धक्का लगा—एक अच्छी उपमा के भूल जाने पर मुझे दुःख होता है, तो काँधल तो उनका दायाँ हाथ था !

विमलदान—(दाढ़ी पर हाथ फेर)—हाँ, कुछ सदमा तो अवश्य ही पहुँचा, इसमें तो शक ही क्या, म्हारा ! पर विश्वास नहीं होता, ऐसा पहुँचा हुआ ज्ञानी यों घड़ी की छठवीं पल में कटार भोंक लेगा—मन मानता नहीं !

कवि महेश—(विचारक-सा) भई, ये तो राज-दरबार के रंग हैं। हो सकता है, कुछ रहस्य हो ! पर इतना तो अवश्य है, सारा काण्ड एक स्वप्न-सा मालूम होता है—एक कल्पना !

भवानी—ऐसे काण्ड मैं कथाओं में पढ़ा करता था ! मैं आप से सहमत हूँ, दानजी ! ऐसा जाग्रत आत्मा आत्म-हत्या जैसा घोर पाप नहीं कर सकता ! सर्वथा, असंभव ! आखिर वह व्यव-हारिक ज्ञान को भुला नहीं सकता !

[अचलदास दीवान का प्रवेश]

पधारिये-पधारिये, महोदय! आज इतनी देर से महलों पधारना हो रहा है? कल मैं हवेली पर उपस्थित हुआ था— जरा कुछ प्रार्थना करनी थी। पर जरा देर हो गई; अतः श्रीमान् के दर्शन न हुए!

अचलदास—(क्लान्त भाव से)—एक पल मरने की फ़ुर्सत किसे है? और फिर सुबह से लेकर रात के ग्यारह बजे तक मिलने वाले आते ही रहते हैं। देहली पर जूतों की भीड़-सी लगी रहती है!...

कवि महेश—(बीच ही में)—मेरी अर्ज़ी तो...

अचलदास—मैंने श्री चरणारविन्दों में नज़र कर दी है; और मैं क्या करूँ? यह भी किया, तो सर ओखली में देकर! आप तो जानते ही हैं, श्रीमान् (दानजी से) कि आज-कल मेरा क्या हाल हो रहा है! इधर जाऊँ तो खाई, उधर जाऊँ तो कूआँ!...

विमलदान—(गंभीरता-पूर्वक)—काम तो बहुत हो रहा है! पर उतना ही अन्धेर भी—साथ साथ। आप तो घर के हैं, अतः इतना कहे बिना नहीं रहा जाता। जैसी एकलिंगनाथ की मरज़ी!

अचलदास—(पास आ)—वह तो मैं कह ही रहा था। हुज़ूर भाई-बेटों और उमरावों में महाराज्य मानों बाँट देंगे। क्या करूँ? मैं कुछ कह भी तो नहीं सकता! पर कहे बिना रहा भी तो नहीं जाता! यह तो आप लोग घर के ही हैं, अतः कह दे

रहा हूँ। नहीं तो ये बातें कहीं करने की हैं ? कल हुकुम हुआ है, जैतसिंहजी को एक लाख की जागीर का पट्टा और कर दिया जाय! दंग रह गया—मैं करता क्या ? इधर जाऊँ तो खाई, उधर जाऊँ तो कूआँ ! औरों में इन भाई साहब ने अच्छा जादू-मंत्र चलाया हुज़ूर पर ! उहुँ ! देखना भई, अभी यह गोपनीय है—किसी के कानों में भनक तक न हो; नहीं तो मैं ग़रीब मारा जाऊँगा ! (जाने की चेष्टा करता हुआ) और भी क्या कहूँ......

विमलदान—(निस्वास रख कर)—क्यों, रुक क्यों गये ? हम लोगों को अपना ही मानिये ; फिर यहाँ पराया कौन है !...

भवानी—(कुछ उत्तेजित)—अवश्य कहिये श्रीमान् ! मेरी रग-रग खौल रही है ! मैं मानों अन्धा और बहरा होना चाहता हूँ, ताकि न देख सकूँ, न सुन सकूँ !...

अचलदास—और क्या कहूँ ! महाराणा का विश्वास है कि बड़े हुज़ूर ने उस प्रजा-प्रार्थना-पत्र से ही उत्तेजित हो आत्म-हत्या कर ली ! शायद...

कवि महेश—(चौंक कर, बीच ही में)—कहीं हम लोगों पर तो कोई आफ़त नहीं आ रही ? उसमें तो हमीं थे—हे भगवन् ! क्या मति सूझी जो...

भवानी—(संयत होता हुआ)—अच्छा ! हमीं पर तब पहला वार हो रहा है !...

अचलदास—(प्रस्थान-उद्यत)—कह नहीं सकता ; पर आज-कल में उनकी गिरफ़्तारी का फ़रमान निकला समझो ! यह तो

मैं रोक रहा हूँ बात को—राणाजी तो कई बार फरमा चुके हैं ; पर मैं भुलावे में डालता रहा हूँ ; पर अब मुश्किल है !...यह तो निश्चय है, भविष्य में जनता के सब ऐसे अधिकार ले लिए जायँगे ! क्या करूँ, इधर जाऊँ तो खाई...

भवानी—(बीच ही में)—यह अत्याचार है, अन्याय ?...

कवि महेश—क्या मति सूझी कि प्रस्ताव मैंने ही लिखा ! ओह भगवन् !...

विमलदान—(दुःख के साथ)—जो न हो, वह थोड़ा है...'

[चैत्रसिंह का घोड़े पर प्रवेश ।]

चैत्र—(घोड़ा थाम कर)—रास्ते के बीचोबीच खड़े हैं आप लोग ? कोई आये-जाये किस तरह ?...

अचलदास—(सकपका, सभीत)—मैं तो यह जा ही रहा था हुज़ूर ! जा ही—कविजी ने ज़रा रोक लिया ; नहीं तो, मैं तो—अच्छा, जय रामजी की ! खमां ! (त्वरा से प्रस्थान)

कवि महेश—(आगे बढ़ कर)—क्या करें, हुज़ूर ! महलों में किसके पास जायँ ? यों भेंट हो जाती है, तो बातें कर लेते हैं ! मैं तो अनाथ हो गया ! सुना है प्रजा-प्रार्थना-पत्रक वालों पर कोई असाधारण विपदा आने वाली है—

भवानी—हुज़ूर भी तो मालिक हैं ! सुना है, प्रजा के सब अधिकार छीन लिये जाएँगे ? अभी-अभी दीवानजी ऐसा कह रहे थे—महान अन्धेर है, यह हुज़ूर !'

चेत्र—(जाता-जाता रुककर)—क्यों, विमलदानजी ! यह सच है क्या ?

विमलदान—(साथ चलने को उद्यत-सा)—हाँ, मैं भी बड़े सोच में खड़ा था। अच्छा हुआ श्रीमान् मिल गये। क्या किया जाय ? मरजी धणी की !......

चेत्र—(कुछ उत्तेजित-सा)—ठीक है ! राणा दुनियवी राजनीतिज्ञ हैं, ईश्वरीय नहीं ! वह तो पितृदेव ही की छाती थी, जो प्रजा को मन-वचन-कर्म की स्वतन्त्रता देकर राजव्यवस्था करते रहे ! यह सब उनको भस्मि के साथ उठ गया ! मैं क्या करूँ ?स्वयं हमारा अपमान हो रहा है—भुगतो ! (चलता-सा) पर कहते हैं, प्रजा सबसे बड़ी सत्ता है ; शक्ति—क्यों दानजी ?......

विमलदान—(चमक, चेत्र की ओर देखते हुए)—हाँ-हाँ ! धर्मशास्त्रों में लिखा तो है ; अख्, लिखा तो है—(आगे बढ़)—याद आ गया, हाँ—मनु ने ऐसा लिखा है, प्रजा राजा की संतान है ; चलें हुज़ूर ! हुज़ूर पधारें, मैं पीछे रहूँ—

चेत्र—(घोड़े से उतरता हुआ, उसे सईस को दे)—चलिए, पैदल ही चला चलूँगा आपके साथ—दिवसों में मिले हैं। (चल, फिर रुक) आप लोग समझे कविजी, पण्डितजी ! प्रजा का महासागर यदि तूफ़ानी हो जाय, तो कौन जहाज ठहर सकेगा ? समझते हैं ?...

कवि महेश—(अचकचाता हुआ)—कुछ-कुछ समझ रहा हूँ ; पर—तात्पर्य समझ में न आया ; उपमा सुन्दर है !....

भवानी—(कुछ ओज के साथ)—पर क्या ? मैं सब कुछ समझ गया ! हुजूर ठीक फ़रमा रहे हैं—बिलकुल ठीक। प्रजा का महासागर—महासागर हाँ, सर्वथा ठीक...

क्षेत्र—बहुत ठीक ! आप कवि हैं और आप नेता ! और सत्य यह है ? चलिए, दानजी !...

(दोनों का प्रस्थान)

कवि महेश—(कुछ क्रोध में)—तुमसा घनचक्कर और कौन होगा ? सब समझ गया ! अरे ऐसी बातें समझते हुए भी 'नहीं समझता' कहना चाहिए ! बिल्कुल मूर्ख की तरह बातें करते हो ! आख़िर है तो वह भी वैसा ही ख़ून ! राजा, बिजली और बन्दर का फिर क्या भरोसा—

भवानी—(हँसता हुआ)—और पानी का ? महाशय ! यही अन्तर है कवियों और ज्ञानियों में। यहाँ सिद्धान्त और सत्य पर मर मिटनेवाले हैं—मर मिटने—समझे ! कल्पना की गोद में पड़े-पड़े शराब पीकर ऊँघने वाले पामर नहीं !......

कवि महेश—(घृणा से)—जीवित जलाये जाओगे किसी दिन, याद रखना यह मेरा वचन ! अभी तो बड़े चढ़े-चढ़े फिरते हो ; पर मारे जाओगे मुफ़्त में ! राज्य-सत्ता किसी की माँ-बहिन नहीं लगती ; पूतना है पूतना वह ! (जाता हुआ) तुम जैसों से मित्रता रखना भी अब भयानक है—(प्रस्थान)

भवानी—(मन ही मन हँस)—चलूँ। हुँ ! कह तो दिया, पर कहीं सचमुच पकड़े गये तो बुरा होगा ! हुँ, तो क्या है ?

(चलता हुआ) विश्वास हो गया, रमानाथ ज्योतिषी पर (रुककर) कि सचमुच मैं महान् आत्मा हूँ; महापुरुष बनूँगा—अवश्य ! शहीदों में बन्दे का भी नाम रहेगा ! पर अच्छा होता, शान्ति से बैठा-बैठा ज्ञान चर्चा किया करता; पर होगा ! जो होगा, वह देख लूँगा—और क्या ? मरना तो है ही—

[प्रस्थान]

—

चौथा दृश्य

[महाराणा उदय की मर्दानी बैठक । ऊदा, दीवान ; पीछेसे जैतसिंह]

ऊदा—(चौकी पर, कुहनी बदल)—ठीक है ; पर मैंने जो कह दिया, कर दीजिये । बड़े हुज़ूर के समय में होता आया, वह इस समय भी होता चले, यह ठीक नहीं ! (फिर कुहनी बदल) जो होता आया, वह सदा होता चले, यह ठीक नहीं । हुआ, हो गया ; समझे—परिवर्तन ! (उठ कर) परिवर्तन—हूँ, समझे, अचल-दास ! जीवन की आत्मा परिवर्तन है—मैं सब जगह परिवर्तन चाहता हूँ—(वापस बैठता है)

अचल दास—अन्नदाता की इच्छा ! पर...जनता में...

ऊदा—(कुछ अधिक उग्र स्वर में)—जनता में ? क्या ? बोलिए—(कुहनी बदलता है । उदास, गंभीर हो जाता है) जनता !...

अचल दास—(नम्र, भीत स्वर में)—बड़े हुज़ूर ने, चाकर सच ही कहेगा, धृष्टता क्षमा हो—लोगों की आदतें बिगाड़ डाली हैं; जैसे—हुज़ूर का चाकर हूँ, सच ही कहूँगा—जैसे मा-बाप अपने इकलौते संतान की आदतें बिगाड़ डालते हैं—

ऊदा—(उठकर)—समझा! समझे, मैं यह समझाता हूँ—(स्थिर, दबंग खड़ा रह कर) इसीलिए मैंने जो आज्ञा दी है, उसे प्रत्येक के कानों में शंख-ध्वनि की भाँति गुँजा दो! उनसे कहदो, समझे, बड़े हुज़ूर का पागलपन यदि हमेशा मिठाई बाँटता था तो क्या मैं भी बाटूँ? उँह्! ...(घूमता है)

अचल दास—(साहस इकट्ठा कर)—अन्नदाता मालिक हैं; पर ये—ये गिरफ़्तारियाँ...

ऊदा—(खड़ा रह कुछ तीव्रता के साथ)—गिरफ्तारियाँ? तो—तो तुम क्या चाहते हो? (भीषणता के साथ) बोलो! जिन्होंने मेरे बाप को—हाँ, हाँ, राजर्षि कुम्भा को—चुप रहो! तुम्हें शर्म नहीं आती यह कहते हुए? ...(चौकी पर जा बैठता है) तुम जाओ...

अचल दास—(जाने को उद्यत पर भीत स्वर में)—जो आज्ञा पृथ्वीपति की! पर मैं, मैं तो—इधर जाऊँ तो खाई उधर जाऊँ...

ऊदा—(जग कर जैसे)—उहुँ? क्या कहना चाहते हैं आप? (गूढ़ उसकी ओर देखते हुए) बोलिए, कुछ कहना चाहते हैं आप? तो कहिये न? आपकी आँखों में क्या नाच रहा है? क्या?

कुछ चिल्लाना चाहता है ? तो बता दो ! मैं कहता हूँ—अभय ! अभय देता हूँ, समझते हैं ?...

अचलदास—(चौंक, चिन्तित)—एकलिंगावतार ! अजर-अमर रहो !...

ऊदा—(अपूर्व संयम को प्रगट करता हुआ)—शीघ्र कहिये—जल्दी !...

अचलदास—(अर्ज करता हुआ)—हुजूर ! जैतसिंह जी सरकार की पटेती ने सभी वर्गों, वर्णों को चौकन्ना, शंकित और असन्तुष्ट बना दिया है । तरह-तरह की बातें हो रही हैं—स्वयं रा...

ऊदा—(तीव्र धमक के साथ)—क्यों रुके ? बोलो !!...स्वयं कौन ? रायमल ?

अचलदास—(लड़खड़ा जैसे)—जी-जी, हाँ ! अँ ! भूला ! अन्नदाता ! नहीं—वे नहीं ! स्वयं, स्वयं विमलदानजी......

ऊदा—(कुछ नम्र)—और ?

अचलदास—(घबराया हुआ)—और, और तो कोई नहीं ।

ऊदा—(उठता हुआ)—सब कुछ ठीक है : जो हुआ वह भी ठीक ; जो हो रहा है, वह भी ठीक ! समझे आप ! जो होगा—यानी जो होता जायगा, वह भी ठीक ! ठीक, इसके अलावा और क्या कहा जा सकता है, दीवानजी, बोलिये ! आप तो मुझसे अधिक वृद्ध हैं—बताइये ? (कुछ उदासीन मुस्कान के साथ) जाइये ! मैं कहूँ, वह करते जाइये ; और मैं ठीक ही कहता हूँ ! मेरा राज्य है, मेरा ! चाहूँ उसे दूँ, चाहूँ उससे छीन लूँ । जाइये, आप ! पकड़

लो! ठूँस दो उन विद्रोहियों को—जिनके प्रस्ताव का काग़ज़ विषभरी कटारी बनकर...ओह! समझ गये आप!...जाइये, अब!...(दीवान का प्रस्थान।) उदय! किसका काग़ज़? किसकी कटार?...(शिथिल चौकी पर जा बैठता है) गंगा!...

[कुँवर को लिये गंगा का प्रवेश]

गंगा—(कुँवर को आगे कर)—अन्नदाता!...

ऊदा—(कुँवर को अंक में ले)—ला! (उसके एक हाथ को पकड़, जैसे उससे बातें कर रहा हो) बड़े हो जाओगे न, तब पता पड़ेगा तुम्हें कि राजा क्या होता है? असन्तुष्ट!! जैसे मैं जनता की सम्पत्ति का रखवाल हूँ! खूब समझता हूँ हूँ-हूँ-हूँ, तुम भी समझते हो यह? (कुँवर उछलता है) उछल रहे हो? सभी आज यों ही उछल-कूद मचा रहे हैं! जैतसिंह को इतनी बड़ी जागीर क्यों दी? दी-दी-दी, फिर? (उठ कर कुँवर को वापस देता हुआ) ले जा!...(गंगा का प्रस्थान) सब समझता हूँ! यह सब खेत्र, रायमल, काँधल आदि की कारस्तानी है; चुपके-चुपके ये चूहे मेरे भाण्डार में घुस कर बिल खोद रहे हैं! अच्छा; पर मेरा कोई क्या बिगाड़ लेगा? भैरव! मेरा कोई क्या बिगाड़ लेगा? जनता? (एक चक्कर काट) मना लूँगा; न मानी तो पीस दूँगा! (एक और चक्कर काट) राव-राजे, उमराव? खरीद लिया है, और क्या? (खड़ा रह कर) जैतसिंह? ग़ुलाम है; ग़ुलाम बना लिया है!! (चारों ओर देख) सब कुछ ठीक है! यह हिमालय अचल है!...(बैठ जाता है) पर, कुण्ड तक ले जाने के बारह लाख!

प्रति वर्ष के बारह लाख !! इतने अपार धन से तो मैं मेदपाट भर में पाठशालायें, चिकित्सालय, तालाव, धर्मशाला आदि-आदि न जाने क्या बनवा सकता था ? (वापस उठ कर) एक पाप को छिपाने के लिए इतने खर्च के परदे ऊदा ? (स्थिर खड़ा रह) और वे भी न जाने कब क्रान्ति की हवा में उड़ चलें ! ऊदा ! तुझे क्या हो गया था, क्या ? यह हिमालय पिघल कैसे रहा है ? किस अन्ध कार में यह जुगनू जा विलीन होगा ?...फिर वही ? फिर वही...

[जैतसिंह का प्रवेश]

जैतसिंह—खमाँ महाराणा को ! खमाँ पृथ्वीनाथ को !...

ऊदा—(चौंक कर)—जैतसिंह ? क्यों ?...

जैतसिंह—(चौकी पर जा बैठता हुआ)—यों ही ! आखिर नाच दिन भर तो देख ही नहीं सकता—हर्गिज़ नहीं ! और फिर रात भर महफिल के रंग ने सोने न दिया। सवेरे से तबीयत ऊबी हुई है। दो-चार मधुर गाने, दो-चार मदिरा के प्याले—पर होता क्या है उनसे ? तो यहाँ चला आया, महाराणा ! सोचा ऊदा से मिल आऊँ !.. ठीक है न ?

ऊदा—(एक चक्कर काट, फिर रुक)—तुम तो बदले जा रहे हो, जैतसिंह !

जैतसिंह—(दोनों हाथों को चौकी पर फैला, कंधे के बल पर)—बदला जा रहा हूँ ! मैं ? हा-हा-हा ! खूब ऊदा ! महाराणा क्या बन गये, आँखें भी नई पालीं ? मैं तो वही हूँ !...

ऊदा—(खड़ा रह)—मर्य्यादा सीखो, समझे !

जैतसिंह—(बैठा रहकर)—खमाँ पृथ्वीनाथ को !...'

ऊदा—(घाव खाकर)—जैतसिंह ?...

जैतसिंह—(उसी तरह)—आज्ञा, मेदपाटेश्वर ! जी, अन्नदाता !...

ऊदा—(कुछ पास जा)—खूब ढालकर आये हो क्या ?

जैत सिंह—(उठ कर)—जय, जय भैरव स्वरूप की !......

ऊदा—(स्थिर)—जैतसिंह ! तुम्हारे इन वचनों का मर्म मैं न समझा ! हृदय में ज्ञात कर रहा हूँ, मस्तिष्क में नहीं। मैं समझना भी नहीं चाहता ! रात भर भयानक सपनों से चौंक कर काटी है ! अब तुम व्यंग के तीरों से आँखें फोड़ने आये हो ?...

जैतसिंह—कदापि नहीं, अन्नदाता ! मैं तो हुजूर के दर्शनों के लिए आया हूँ ! मजाक की तो मेरी आदत है !............

ऊदा—(कुछ दीनता पूर्वक)—मज़ाक ? कोई हानि नहीं, तब तो। कोई शरीर से मज़ाक करता है, कोई किसी की वस्तुओं से ! तुम मेरे मन से, मेरे दिल से हँसी करने आये हो ! अच्छा, मैंने एक लाख की दूसरी जागीरी का पट्टा करवा दिया है ! अब बस ?......

जैतसिंह—बस ! एक ही लाख की ? मैंने तो आज ब्राह्म-मुहूर्त में सपना देखा था कि पाँच लाख की जागीरी का पट्टा कोई मेरे चरणों में अर्पित कर रहा है !

ऊदा—(चौकी पर बैठता हुआ)—हूँ ! (बैठकर स्थिर) सपना ? सपना ही तो था वह ! मुझे भी एक सपना आया था आज !

सपना, जैतसिंह ! यह जीवन कुछ नहीं है ; यह सपनों की कामना है ; सपनों में कामना है ! मैं भी ठीक कहता हूँ—पिता का खून बहाकर मैंने लाल-लाल अक्षरों से जीवन का मर्म लिख दिया है ! कहाँ, जानते हो ? महत्वाकांक्षा की अन्धकारमयी छाती पर—कामना के कलेजे में, ज्वाला के अक्षरों से मैंने जीवन का सार लिख दिया है ! ओह ! जीवन सपनों का व्यवसाय है; सपनों की आदत है, समझते हो, जैतसिंह !........

जैतसिंह—कविता में मैं क्या समझूँ ?......

ऊदा—(उठ कर)—कविता ! तुम इसे कविता कहते हो ? कदापि नहीं—यह कविता नहीं है ; कवियों को मैं हाथियों के पैरों तले रौंदवा दूँ, यदि हृदय के रक्त से लिखे हुए इस सत्य को वे कल्पना कह दें । समझे ? वे कहते हैं, सपने झूठे होते हैं ; तुम्हारा सपना शायद ही सच हो !...

जैतसिंह—एक लाख बहुत ही कम है, ऊदा !...

ऊदा—(कुछ आश्चर्य से)—ग्यारह और एक बारह—फिर भी कम ?...

जैतसिंह—जी पृथ्वीनाथ ! कम ! उस खून में रँगी हुई धूलि मैंने घटिका यंत्र में भर ली है ; उस पर एक गूँगा नौकर तैनात कर दिया है कि वह रेणु-रेणु को गिने—गिने ! आज इतने महीने हो गये, आधी धूलि भी नहीं गिरी गिनती में ! जितनी संख्या होगी उस धूल के अणुओं की, उतने लाख इधर धर दीजिये, सम्राट ! महाराणा !!...

ऊदा—(गंभीर तीव्रता से)—तुम चाहते हो, सारा मेदपाट तुम्हें दे दूँ, क्यों ?

जैतसिंह—ऐसा तो मैं नहीं चाहता ; अगर चाहूँ तो भी बुरा क्या है ? उस बेसुध बुड्ढे को मैं जानता हूँ, किस कठिनता से वहाँ तक ले गया हूँ—कटारी भोंकने में रक्खा क्या है ?

ऊदा—(सहसा मानों धँस कर)—चुप ! सावधान ! मैं कहता हूँ—आज्ञा देता हूँ, मुँह से एक शब्द भी मत बोलो—एक अक्षर भी !

जैतसिंह—(पीछे हट, सहम-सा)—यहाँ दूसरा है कौन ? मैं हूँ और तुम !

ऊदा—(एक-दो चक्कर काट)—हूँ ! मैं और तुम ! और कोई नहीं—कोई नहीं ! कैसे नहीं था वहाँ और कोई ? घना नीरव अन्धेरा था—अभिशाप लिये निर्जनता थी ! दूर-दूर पर भूखे शृगालों की चीखें थीं ! क्या न था ? दिग्दिशाओं में हज़ारों उल्लुओं की चमकती हुई आँखें थीं ! पिशाचों के द्वारा मज़बूत मुट्ठी में कामना की आग पिये चमचमाती हुई कटार थी—मैं जानता हूँ, वहाँ कौन न था ! अब जानता हूँ, इस समय जानता हूँ—तुम कृपया मुझे अकेला रहने दोगे ?...

जैतसिंह—(स्तम्भित-सा)—क्या तुम पागल होते जा रहे हो, ऊदा !...

ऊदा—(स्थिर, ऊपर देख)—पागल ! मैं ? हँ-हँ-हँ !! तुम भी तो पागल हो गये थे कुछ दिन ! पागलपन मेरे भाग्य में नहीं लिखा, जैतसिंह ! कितनी बातें भूल जाऊँ, पागल हो जाने के

लिए ! क्या न था .उस भोंकने में ? उस अमृत भरी हुई, प्रकाश भरी हुई छाती में पाँच तसु गहरी कटार भोंकने में क्या था—जानते हो ? जानते हो, जैत ! अथाह उस घाव से फूट उछलते हुए उस फव्वारे में क्या न था ? यदि मैं जानता, कि खून के उस नन्हे सोते में आग का महासागर छिपा हुआ है, तो जैतसिंह ! सच कहता हूँ—सच !........ओह ! यदि मैं जानता, कलेजे की वे नसें कट-कट जीवित साँपिनें बन जाएँगी, मौत तिल-तिल कर ज्वाला की करवत से मेरा कलेजा काटेगी, तो—तो—ओह ! (चौकी पर जा बैठा) अच्छा ! अच्छा !! मैं सोचूँगा, तुम जाओ ; मैं सोचूँगा, तुम्हें कितना दे सकता हूँ—अब जाओ, दया कर !...

जैतसिंह—(धृष्टता पूर्वक)—वचन दीजिये मेवाड़नाथ !

ऊदा—(फटता हुआ)—अगर न दूँ तो ?

जैतसिंह—(उसी तरह)—तो ? तो क्या, कुछ नहीं—

ऊदा—(सिर धुनाकर)—समझता हूँ ! अच्छा मैं वचन देता हूँ, अब जाओ !

जैतसिंह—(जाता हुआ)—करोड़ दिवाली राज करो, पृथ्वीपति ! ......(प्रस्थान)

ऊदा—(मुट्ठी भींसकर)—पृथ्वीपति ! मेवाड़नाथ—महाराणा ! ओह ! जैसे विषभरे, क्रोध भरे भुजंग मेरी कीकियाँ कट गये(मग्न)

[गंगा का प्रवेश]

गंगा—घणी खम्मा अन्नदाता !

ऊदा—(चौंक कर)—क्या है, फिर ?

गंगा—महाराणाजी ने हुजूर, आग्रह से अर्ज करवाई है कि अबके दशेरे पर सवारी जरूर निकले—पहले ही वर्ष महाराणा शुगों के शुकुन का मान सौ गुना अधिक रखावें ! मालकिन ने यह भी कहलाया है कि इसमें अन्नदाता और कुँवरजी का मंगल है, अन्नदाता !

ऊदा—(उदासीन, पर तीव्र)—अच्छा मैंने सुन लिया, जा !

गंगा—जो आज्ञा, पृथ्वीनाथ ! अमर रहो राणाजी !......

ऊदा—(उठ कर)—राणाजी ! पृथ्वीनाथ !! इसे विडम्बना कहूँ या क्या कहूँ ? क्या व्यंग है यह—व्यंग ? (निःश्वास रखकर) सारा जीवन अब जैसे व्यंग मालूम होरहा है ! सुख, आशा, उमंग उत्साह न जाने किससे से विहँसती हुई यह राणी—मेरी पीतम—पीतम—मेरी ? (विषम क्लेश के साथ) कैसे ? अब तो—अब तो तुम्हारे और मेरे बीच एक ज्वालामय अन्धेरा समुद्र लहरा रहा है—ओह, राणी ! तुम जैसे—जैसे राक्षशी के अधरों पर अमृत का कटोरा हो ! क्यों हुई तुम मेरी अर्धांङ्गिनी—क्यों हुईं ? (घूमता-घूमता) मैं लोहे की दीवारों में आज घिरा हुआ हूँ ; साँपों और अजगरों से बँधा हुआ, रग-रग में जलता हुआ ! ओह, पीतम तुम कहाँ हो ? (ठहर) इस अन्धेरे में अब संगीत कहाँ ? मार्ग कहाँ ? दीपक कहाँ—कहाँ ?? ऊदा ! तूने यह क्या किया ? (सहसा चौंक कर) कौन ?...कोई नहीं ! वह आ नहीं सकता—नहीं ! मृत आ नहीं सकता !...(वापस घूमता हुआ) मैं तुम्हारी

आनन्दपूर्ण झुकी हुई आँखें देख नहीं सकता; पीतम ! सह नहीं सकता, अब, यह दूर-दूर होते जाना ! पाप मुझे तुमसे दूर, दूर बहुत दूर घसीट ले जा रहा है—अब विश्वास कहाँ रहा ? और प्रेम ? प्रेम ! रक्त के समुद्र में फूल की यह नाव कैसे तैरेगी ? 'मैं और कुँवर जान दे देंगे !' (ठहर कर) पढ़ो, महाराणा ऊदा ! पढ़ो, खोजो कुछ अर्थ है इन अक्षरों में ? आह् ! प्रेम और अभिन्नता, सुख के ये दो चुम्बन पाप की कालिख से रँग गये, रक्त से सराबोर हो उठे ! कुम्भा की मृदु चीख़ से हृदय का गढ़ गिर गया ! और आग लग गई, पृथ्वीपति ! सुख के उद्यान में ! (चिल्ला कर ; चौकी पर जा बैठता हुआ) मुझे पता होता, पता कि कुम्भा की छाती का ख़ून इस सवेरे को रँग देगा, राणी को डुबो देगा—कुँवर को बहा ले जायगा, फुफकारते हुए वैताल और हुकारते हुए जिन मेरा सिंहासन हिलाया करेंगे, चिन्ता के साँप चँवरों से बँट झूमा करेंगे—तो—तो—(सहसा) चुप ! चुप !! मूक—जड़ !!!

(गंगा का प्रवेश ।)

गंगा—अन्नदाता ! थाल पधरा दिया गया है !...

ऊदा—(संयत, स्वर साधता हुआ)—आया ! आया ! तू चल—मैं यह आया !

गंगा—खमाँ मेरे धणी !...(प्रस्थान)

ऊदा—(जाने को उद्यत)—ओह ! सिर घूम रहा है—आँखें जल रही हैं । जैसे दुनिया चक्कर खा रही है ! चलूँ—कर दिया

सो कर दिया ; आगे मत गिरो। और क्या ? विधाता, भाग्य के लेख ! यही—यही ! जैतसिंह देखता हूँ, दिन-ब-दिन समस्या होता जा रहा है ; पर-पर, देखा जायगा ! धन के पहाड़ों में घेर दूँगा, फिर ? निरापद—अवश्य ! [कोयल कूजती है] ओह ! हतभाग्य ऊदा ! सुख की गंगा वही जा रही है और तू ? तू जैसे घायल किनारे पर पड़ा हुआ है—प्यासा ! प्यासा !!

[प्रस्थान ।]

पुरोहित—(प्रवेश कर)—हुजूर !...हैं ? नहीं हैं यहाँ ! बड़ी मुश्किल है, शिव ! शिव !! कल सवारी होगी कि नहीं ?...

(चिन्तित खड़ा रहता है)

—

पाँचवा दृश्य

[महल का एक अन्तरंग आममार्ग ।]

गोपालसिंह—(साश्चर्य)—मेरे जीव, कुछ समझ में भी तो आवे ! हाथो पर बैठते-बैठते तो मानो महाराणा अचेत हो जायँगे । एकदम तबियत खराब हो गई ! देखा नहीं, बख्शावदा-रावजी, पुतले की तरह राणा बैठे थे—नहीं ?...

बख्शावदाराव—देख तो रहा था ! भई, मैं तो समझता हूँ, जबतक राज नहीं मिलता तभी तक सुख है—नई-नई बात नौ दिन नई मालूम होती है ! मिलने पर तो जैसे चूहा पहाड़ के नीचे दब गया हो ! बड़ा उत्तरदायित्व है, भई ! हुजूर के कन्धों पर, और इधर—

सलूँबर—और इधर बड़े हुजूर के समय की बातें बदल-बदला कर राणाजी ने सर पर बवाल मोल ले लिया है। आफ़त—

सरासर विपदा ! देखा न, उस पण्डित की गिरफ़्तारी की कैसी धाँ-धूँ हुई। यह तो ठीक था मेरे वीर मौके पर आ डटे; नहीं तो लोग ड्योढ़ी तक धँस आते !...कवि अत्रि के बेटे की गिरफ़्तारी थी, हँसी-ठट्टा तो था ही नहीं ! सात पीढ़ी में कलंक लग गया !...

गोपालसिंह—पण्डित था तो बड़ा भोलाभाला ! दाता के पास आता था, तब तो जैसे मुँह में जिह्वा ही नहीं ! पर कहते हैं बड़ा बिगड़ा, चिल्लाया-चीखा ! मेरे जीव, कुछ समझ में भी तो आये ! तब मूँछें चेहरा नहीं बतातीं और भवें भाव नहीं ? वह कवि तो लगा गिड़गिड़ाने ! कहते हैं, रो पड़ा ! हा-हा-हा,...मेरे जीव !

कुम्भकर्ण—राणाजी ने ठीक ही किया। वामटे ने सारी प्रजा में हुल्लड़ कर दिया ! बड़े हुज़ूर ने सबको सर पर चढ़ा रक्खा था। मैं होता राणाजी के स्थान पर, तो नरक में भेज देता सबको ! बेशर्म बाग़ी कहीं के !...

क्षेत्र—(धीरे से)—राणाजी को कहीं इसके कड़ुए फल चखने न पड़ें ! लोग हाथ बाँधे चरणों में सर झुकाये आये और उनके हाथ मानो काट डाले गये—मैं पूछता हूँ, इन सबों का क्या अपराध था ?

सादड़ी—यों तो ऐसा कोई अपराध नहीं दिखता ; पर कुछ भी हो, यह हुल्लड़बाजी अच्छी नहीं लगती। उद्यान की मूर्तियों और फव्वारे के हाथियों ने क्या बिगाड़ा था, जो उन्हें खण्डित कर दिया गया ? मुझे तो आश्चर्य है, ऐसा पहले कभी न हुआ—

क्षेमकर्ण—यह सब अधिकार की मिठाई का जोर है !...

गिरिपुर नरेश—ठीक तो है, यह धींगाधींगी शोभा नहीं देती। आखिर प्रजा प्रजा ही है! क्या अपनेही राजा से लड़ेगी? ऊँह् ? ऐसा कभी नहीं हो सकता।

महारावण—ज़रा और अच्छी तरह ठोका जाता, तो ठीक होता—नीच कहीं के!......

क्षेत्र—आश्चर्य है, आप लोग इस तरह बातें कर रहे हैं, कि वे लोग मनुष्य ही नहीं है! उनका अपराध तब महाराणा की प्रजा ही होना था न?

आसकरण—अपने धरम से हाथ धोकर विद्रोह करना मनुष्यता है?......

क्षेत्र—(तीव्रता के साथ)—जी हाँ! धर्म और नीति, सदाचार और भक्ति सभी का भार निरीह न्याय-प्यासी प्रजा के सर पर है और राजा तथा हम पर कोई बन्धन नहीं, कोई धर्म नहीं, क्यों? याद रखिये, राजा और प्रजा दोनों में मनुष्य जीता है, मनुष्य बसता है। धर्म दोनों जगह है। अपने दुखड़े रोने लोग आये और उन्हें डण्डे मार कर निकाल दिया गया! और ऊपर से हम उन्हें बागी विद्रोही कहते हैं—धिक्कार है! हमें जो वास्तव में नीच है, नालायक है—अधर्मी है उसे हम देखते तक नहीं!

सादड़ी राव—ज़रा शान्ति से कहिये, मैं आपका अर्थ समझूँ भी तो! आपका मनोभाव क्या है? कौन है वह?

क्षेत्र—(विषम क्रोध से)—जैतसिंह!

बम्बावदा—जैतसिंहजी ?

क्षेत्र—(उसी तरह)—और कौन, मैं ? आज महाराज्य भर में किस बहू-बेटी की लाज रक्षित है उसके आगे ? कहाँ वह पशुता नहीं करता ; किस जगह वह अपनी नीचता नहीं प्रगट करता ? व्यभिचारी वह ! अत्याचारी वह ! शराबी वह ! विलासी वह ! मैं पूछता हूँ, वह क्या नहीं है ? उसकी बर्बरताओं से तंग आकर जब उसके गाँवों के चौधरी यहाँ आये, राणाने कानों में अँगुली डाल ली ! और सुना है, कल ही उसे एक लाख की जागिरी और दी गई है ! यही है न आपका धर्म-पालन ? नीति-रक्षा—प्रजा पालन ? मनुष्यत्व ? जवाब दीजिये ?

बम्बावदा—(सिर नीचा कर)—क्या कहा जाए ? जैतसिंह जी लिखवा लाये हैं ; ले रहे हैं ! बाकी तो कर्मों का फल सभी को भुगतना पड़ेगा—राजा और रंक सबों को—अख़्ख़् !

सादड़ी—यह तो ठीक है, पर न्याय-अन्याय देखना हमारा काम है। राणाजी अकेले कहाँ तक देखा करेंगे ?

क्षेत्र—(कुछ निश्चित-सा)—और वह मेदपाट के उमरावों का प्रतिनिधि भर है !...

क्षेमकर्ण—(बीच ही में)—था तब था ; अब बिल्कुल नहीं ! उनकी मरज़ी है, कर रहे हैं। उनका राज है, चाहे उसे लुटा दें—हमें मतलब ? रहा व्यभिचार आदि, सो मैं कहता हूँ, कौन व्यभिचार नहीं करता ? कोई काव्य, नाटक, संगीत के नाम में करता है—कोई खुलेआम करता है !

चेत्र—(घूर कर)—हाँ-हाँ ! इसमें क्या शक ? मैंने काँधल को दूत भेज दिया है—वह आकर बतायेंगे, कौन क्या करता है !

सलूँबर—समझ में नहीं आता कि यों जागीर पर जागीर क्यों दी जा रही है जैतसिंहजी को ! किसी को इतना मिलना चाहिए, तो वह रायमलजी हैं—काँधलजी हैं—आप हैं और वे हैं जिनके मुण्डों पर मेदपाट का सिंहासन टिका है। पर यह अन्धाधुन्धी तो समझ में नहीं आती ! यह ठीक नहीं हो रहा !

चेत्र—भाड़ में जायँ मैं और रायमलजी ! पर जिसने खंडेलों जैसे नर-राक्षसों को गाय बना दिया, जिसने अर्बुद के अचलगढ़ को जीत लिया, उस नर-वीर काँधल को मामूली पट्टा दे दिया गया ! इतना ही नहीं, सुना जाता है—जैतसिंहजी को अर्बुदाचल भी दिया जानेवाला है !...

बम्बावदा—(साश्चर्य)—सच ?

चेत्र—(व्यंग से)—जी हाँ—कर्म-फल है न ?...मुझे तो कुछ रहस्य मालूम होता है—दाल में काला ! (सध्यान देखता हुआ मुस्काता है)

नागोर—मुझे भी यही दीख रहा है, म्हारा ! नहीं तो सभी जानते हैं—कँवरपदे थे, तब सौ मुद्रायें भी कहाँ छूटती थीं ? और अब अढ़लक देते जा रहे हैं—उहुँ ! मेरी तो छाती जलती है—और देखा, एक बड़ी गंभीर घटना हो गई ! यह तो मैं पीछे ही खड़ा था, साफ़-साफ़ देख सका ! आप लोगों में किसी ने ध्यान नहीं दिया ? हें एं ? आश्चर्य है ! सवारी में जैतसिंहजी, का

ग्यारहवाँ हाथी था—मैंने आँखों से गिना, भूल हो ही नहीं सकती। एक दृष्टि में मार्ग के कंकड़ गिन लेता हूँ, तो यह तो हाथियों का गिनना था! हाँ, तो जैतसिंह जी यह देखते ही ऐसे बिगड़े, ऐसे बिगड़े कि दैया रे! महावत को मार डालते! पुरोहित को बुलकर ऐसा आड़े हाथों लिया कि जैसे खुद ही महाराणा हों!

सिंहपुर नरेश—अच्छा फिर? यह बात हो गई और मुझे पता ही नहीं! ऊँ? वह मुझसे भी बढ़ गया? मेरा पंद्रहवाँ था! ऊँ? कैसे हो सकता है यह! मेरा अपमान है यह!! फिर?

नागोर—फिर क्या? राणाजी को ठीक ड्योढ़ी में जा रोका और एकलिंग की आन, ऐसा इशारा किया कि राणा जी एक पगथिया चूक गये! मैंने थाम लिया, नहीं तो दुश्मनों पर न जाने क्या बीतती! मैंने अपने कानोंकान सुना राणाजी को यह आज्ञा देते कि सवारी में जैतसिंह जी का हाथी दूसरा रहे—उनके पीछे ही! और वह दूसरा था—मजे में था! हम सब की नाक काटकर मजे में झूमता जा रहा था—क्या किया जाय?......

सादड़ी—यह बात है! छत्र चवँर भी थे न? मैं तो समझा सलूम्बर का हाथी है...

सलूम्बर—मैं समझा, आपका है!

सिंहपुर नरेश—और मैंने उसे राणा जी का ही समझा! एक साथ जो दो-चार हाथियों के छत्तर-चम्मर थीं! एकलिंगजी, आप, राणाजी और—हुँ! मैं क्या करूँ?......

सलूँबर—मैं सब सह सकता हूँ—मगर बाप-दादों का अपमान नहीं सहा जाता मुझसे, एकलिंग की शपथ से कहता हूँ यह !

सादड़ी—हम सब सह सकते हैं, पर बाप-दादों की नाक नहीं कटवा सकते ! जैतसिंह जी यहाँ तक ?......

सिंहपुर नरेश—वह गोला यहाँ तक ? यह इज्ज़त-आबरू का सवाल है, कोई दिल्लगी तो है ही नहीं ! दूसरा हाथी उस गोले का ! छत्तर-चम्मर !! मैं राणा जी से इसका जवाब मांगूँगा !......

बम्बावदा—क्या किया जाय ? क्या किया जाय ??......

चेत्र—(धीरे-धीरे पर दृढ़ता से)—क्या किया जाय ? जमकर इस परिस्थिति पर सोचा जाय। काँधल आते ही समझो—उनके बिना दशा नहीं सुधर सकती। बिल्कुल नहीं—क्या आप लोगों को यह नहीं सूझता, कि यह सब क्यों हो रहा है—क्यों ? मुझे एक अत्यन्त गुप्त तथ्य जैसे सूझ रहा है ! उफ़, काँधल आ जाते !......

[जैतसिंह का प्रवेश]

(जैतसिंह अपने ध्यान में जा रहा है। सब मार्ग कर देते हैं।)

चेत्र—अच्छे मौके से आये, जैतसिंह जी ! किधर ? क्या नये पट्टे की फिराक़ में ?

जैतसिंह—(खड़ा रह कर)—छोटे मुँह बड़ी बात शोभा नहीं देती, चेत्रसिंह जी !

क्षेत्र—(कट कर)—वह तो मैं भी जानता हूँ, पर अर्बुदाचल का सपना तो डोल जायगा; जैसे नल के मच्छ दमयन्ती के हाथ में जीकर उड़ गये, त्यों महाराज्य का अर्बुदाचल तुम्हारी ड्योढ़ी पर डोल जायगा—कह रखता हूँ!

जैतसिंह—तब देख लूँगा! शेष नाग कमर पर बाँध सोता हूँ, समझे! [प्रस्थान]

सिंहपुर—(दाँत पीसकर)—इतना घमण्ड! भूल गया वे दिन, जब मुँह ताका करता था! ऊँ?

क्षेमकर्ण—(सहसा)—एक ही गुरु मिला है आप सब का! अच्छा! एक बात याद हो आई—चलूँ! क्यों जल रहे हो यों? चुपचाप मज़े उड़ाते चलो—(जाता है)।

बम्बावदा—चलूँ, शाम को पूजा भी तो करनी है—जय अम्बे! (जाता है)

पृथ्वी—(पीड़ा से जैसे जगकर)—अपनी मर्य्यदा में बोलो! अच्छा, नीच! बता दूँगा किसकी क्या मर्य्यादा है। काँधल के आने भर की देर है!......

नागोर—हाँ, काँधलजी को आ जाने दो। फिर देख लेंगे!

सलूँबर—हम सब राणाजी को पूछना चाहते हैं कि वे जैतसिंहजी को मरज़ी हो उतना दें, हमें उससे मतलब नहीं; हम कोई मरभूखे तो हैं नहीं; पर यों उसके हाथों हमारा अपमान तो न होने दें! बस मुझे तो यही पूछना है—यही!

सिंहपुर—दें कैसे मरज़ी आवे उतना! मेवाड़ हमारे बाप

दादों की है। क्षेत्रसिंहजी ! मैं आज के अपमान का बदला लिए बिना शान्त न हूँगा ! मेरी जनता लाजे, जो मैं चुपचाप बैठा रहूँ ! सवारी में दूसरा हाथी, उसका !......

क्षेत्र—यही ठीक है ! राणाजी से जवाब माँगा जाए इसका। हम सबका अपमान हुआ है अपमान ! हमारे पूर्वजों का अपमान—हमारी तलवारों का अपमान, हमारी पघड़ियों का अपमान ! धर्म, नीति, सत्य, सदाचार सबका अपमान हो रहा है—अपमान, अपमान—अपमान !! राणाजी को इसका जवाब देना होगा ! इसके कड़ुए फल दोनों को चखने होंगे ! देखा नहीं ? नमस्कार तक न किया ! शिष्टाचार से भी गया-बीता ! कितना घमण्ड था, देखा ? किसके बल पर ? यह नीच, व्यभिचारी मद्यप किसके बल पर यों कूद रहा है ? राणाजी के ! चलिये, हम सब खंभ रोपकर राणाजी से पूछें, वे सारे राष्ट्र का यों अपमान क्यों करवा रहे हैं ?...यह अराजकता क्यों ? यह अधर्म क्यों ? जिसे मेरा साथ देना हो, दे—

नागोर—बिल्कुल ठीक ! मैं ख़ुद भी एक बार राणाजी से मिल लेना चाहता हूँ ! अच्छा देर हो रही है—जय महादेव !

[जाता है।]

सलूँबर—मैं जवाब माँगूँगा, यह भी कोई बात है ! जाओ, तब मुझे लेते चलना। जय एकलिंग ! [जाता है]

गिरिपुर नरेश—क्षेत्रसिंह जी ! मेरे विचार से काँधलजी को आ जाने देते !...अरे हाँ—ठीक याद आया ! ज़रा

अचलदासजी से मिलना था। चलूँ—जय श्री कृष्ण! [जाता है।]

सादड़ी—मैं अन्त तक तुम्हारे साथ हूँ -मैं कुछ-कुछ समझ रहा हूँ ! दम पर रहना—मैं छाया की तरह साथ हूँ—अभी तो चलूँ ! जय रामजी की ! (जाता है)

चेत्र—गये, एक-दो-तीन—गये बढ़-बढ़कर बातें करनेवाले ! पर कोई परवाह नहीं ! आप तो मेरा साथ देंगे न ?

सिंहपुर नरेश—ढाल की तरह मित्र जू ! अभी चलते हैं ?...

चेत्र—(सोचता हुआ)—अभी नहीं। फिर—चलो ! (चलते हुए) एक धारा, एक शक्ति—यह ! और दूसरी वह कारागार से बहेगी ! दोनों मिलेंगी ? हाँ, अवश्य ! कहाँ—हूँ ! ईश्वर जानें ! पर मिलेंगी ज़रूर ! मेरा अन्तःकरण कह रहा है ! चलो—

(दोनों का प्रस्थान)

गोपालसिंह—(अपने आप आश्चर्य-रत)—मेरे जीव ! कुछ समझ में भी तो आवे ! कडुए फल फिर कैसे चखे जाते हैं—खाता ही कौन है उन्हें ? वृष जाति का मालूम होता है यह चेत्र ! पर मेरे जीव ! यह सब कर क्या करे हैं ? सवारी में दूसरा हाथी ! तो हाथी तो था, कुत्ता तो न था ! कुछ समझ में भी तो आवे ?

(प्रस्थान)

छठाँ दृश्य

[ऊदा का शयनागार]

ऊदा—(लेटे-लेटे सहसा उठ बैठता हुआ)—पुनः वही रात—वही एकान्त ! हृदय पर जैसे, ओह ! करोड़ों पहाड़ आ पड़े हों ! जैसे-जैसे, एक नन्हीं अँधेरी गुफा पर एक अनन्त अथाह महासागर का नीरव पानी आ फिरा हो ! इस मूक सुनसान अशांति की पाले जैसी आग में कहाँ तक जलना होगा —कहाँ तक ? ऊदा ! तुम डूब गये !...

[गंगा का प्रवेश]

गंगा—अन्नदाता ! महाराणीजी अभी पधारती हैं—माजी हुजूर के दुश्मनों की तबियत जरा खराब हो गई है—उधर गई हैं ; अर्ज करवाई है, अभी पधारती हैं !

ऊदा—(शिथिल बैठ कर)—बहुत अच्छा ! माँ की तबियत खराब हो गई—अच्छा जा ! (गंगा का प्रस्थान) जा—चिन्ता,

चिन्ता के विष से जलने वाली यह दीपशिखा मैं अपने आत्मा की सघन आधीरात में आज न-जाने कब से जलती पाता हूँ—कब से ! उदय ! उदय !! काले पारावार में धीरे-धीरे तुम्हारी यह जर्जर नाव वही चली जा रही है—बही चली ! अँधेरा, अँधेरा, अँधेरा !! चारों ओर अन्धकार के बादल घुमड़े पड़े हैं ; दोनों अनन्त किनारों पर जीवनहीन हवा, भयावह विजनता ! उदय, अभागे ! इस प्रलय में तुम्हारा दीपक कहाँ गया—तुम अन्धकार के साथ एक हो गये ! विषम तम, विषम वेदना—विषम भाग्य !!...

[गंगा का पुनः प्रवेश]

गंगा—(हाथ जोड़ कर)—पृथ्वीनाथ ! महाराणीजी ने अर्ज करवाई है कि वे आज देरी से पधारेंगीं—माँजी सरकार का जी बहुत घबरा रहा है—

ऊदा—(उठता हुआ)—अच्छा, मेरी ओर से साता पूछना ! पर जा—समझी ! चली जा—बर्छियाँ भोंकती हुई सर्दी में तू बर्फ़ के झोंके की तरह क्यों आया करती है—जा ! (गंगा का डर कर प्रस्थान ।) जाओ, भाग जाओ, सब ! मुझे अकेला, अकेला—सबसे अलग दिवस और रात से दूर, दीन और दुनिया से अलग—मित्र से, सगे-सम्बन्धी से, सारे संसार से दूर रहने दो ! रहने दो—(मुट्ठियाँ भींस कर चीत्कार के साथ) मैं ठण्डी होती हुई चिता की ज्वाला के सामान अन्धकार में भूतों के आह्लाद के लिए घूमता हूँ ! देवकन्यायें मुझे देख कर चीख़ उठती हैं ; पिशाचिनियाँ मारे हर्ष के नाच उठती हैं—मैं, मैं नीरव, निर्जन, नीरव

आधी रात के हृदय की काली आग हूँ, मैं भूत हूँ, पिशाच हूँ—वैताल, जिन ! मैं अन्धकार का बना हूँ—मुझे अकेला घूमता रहने दो, रे ! रहने दो—(ललाट पर हाथ रख, आँखें बन्द कर, शिथिल, कातर खोया-सा) मैं वह श्मसान-वायु हूँ, जो मनुष्य के हृदय का दीपक बुझा जाता है; मैं राक्षस हूँ !

[दूसरा पहर बजता है]

कौन मेरे निकट आयेगा ? कौन ! (पलंग पर जा बैठता है) कौन आयेगा मेरे निकट भला ? प्रेम का भूखा पुत्र—पिता के पास ? कभी नहीं ! मेरी छाती वात्सल्य के ख़ून से रँगी हुई है, देख लो ! (कुर्त्ता फाड़ कर) देखा ! अन्धेरे में नीलम का पानी चुपचाप सो रहा है ! कुम्भा मूर्च्छित है, दिशाओं के कोणों की तरह वेसुध ! और—और ! (सहसा काँप कर आँखें फाड़कर देखता हुआ) चला जा यहाँ से ! चला जा। ओह ! (आँखें मीच लेता है) और कौन आयगा, मेरे पास ? पुत्र की सद्‌कामना में पागल पिता—नहीं ! वह ख़ून में मूर्च्छित है ! मृत्यु की दाढ़ों में विंधा हुआ, वह मृत है ! और अब जी ही कौन रहा है ? मैं—मैं जी रहा हूँ इस रक्त की ज्वाला में जलता हुआ !......गंगा !......

गंगा—(प्रवेश कर)—अन्नदाता !......

ऊदा—(उसे घूरकर)—जा ख़बर रख ! जा—

गंगा—(प्रश्नातुर, सहमी चली जाती है।)

[दूर पर एक चहकुए की पुकार]

ऊदा—(पुनः)—कभी नहीं, कभी नहीं ! मेरी मुट्ठी में पैनी

कटार है ! पीतम ! है उसमें हिम्मत मेरे निकट आने की ? अजी नहीं । मेरे हृदय पर पाप का विराट् सघन पर्दा पड़ा हुआ है और उसे उठाने की हिम्मत मुझ में नहीं —उसमें नहीं । वह उठाये भी क्यों ? वह देवी है, अमृत है—प्रकाश है—सवेरा है ! उसकी विश्वास और प्रेम से लबालब आँखें मैं देखता हूँ जब, तब यह दुःख अधिक घायल हो जाता है, तिलमिला जाता है, कट-कट जाता है । यह सदा का जलते रहना असह्य—ओह ! असह्य हो जाता है !...क्या मैं विजन नहीं हूँ ? (उठ कर घूमता है) हूँ—अवश्य हूँ—अकेला, अकेला !! ओह ! इस बोझ को हल्का करने के लिए मैं कितने साम्राज्य न दूँगा, अब ! कितने ? असंख्य-असंख्य !! अड़बों !! मैं गिन नहीं सकता—राज्य-पिपासा ! तुम ऐसा हलाहल हो, ऐसी बड़वाग्नि हो, मैं क्या जानता था ? क्या—? नरक ! ओह—गंगा !...

गंगा—(प्रवेश कर)—आज्ञा, अन्नदाता !...

ऊदा—(उसके पास आ)—अच्छा, तू आ गई ? अच्छा, तो मैं पूछूँ उसका जवाब दे ! सच, सच बताना सच-सच, हुँ ?...'

गंगा—(डरती हुई)—अन्न-दा-ता !

ऊदा—(स्थिर)—डरती है, मुझसे ? क्यों ? ठीक है—(थोड़ा घूमकर)—ठीक ही तो ! मैं हूँ भी वैसा ही । (पुनः उसी तरह खड़ा रहकर) आश्चर्य है, तेरी मालकिन मुझसे नहीं डरती ! अच्छा, अच्छा, बता तो, जीवन में तुझे सबसे अधिक अच्छा क्या लगता है ?...

गंगा—(उसी तरह)—हुज़ूर की चाकरी—खाविन्दी !..

ऊदा—(खीझ कर)—झूठ ! गलत ! चली जा—मैं तंग आ गया इस खुशामद से ! तंग आ गया हूँ। जा—(गंगा का पिछले पैर प्रस्थान—पलंग पर जा बैठ कर) जिसे देखो, वही मुझे दम देना चाहता है—दम ! सभी दाता को यही कहा करते थे—मुझे भी यही कहते हैं। कहाँ है सहृदयता, सचाई इनमें ? (उठकर) समझता हूँ, सब कुछ समझता हूँ ! राज-सत्ता की साँपिन की ये दो जिव्हायें लपलपाती हुई—वैभव और शक्ति—ओह ! कितना वृथा है यह जीवन ? कितना वृथा ! एक भी किरण नहीं, एक भी दीपक नहीं—कितना असह्य है यह जीना, कितना ? (बैठ कर) ऐसे अन्धकार के लिए मैंने पिता के प्रेम-जुगनू को मृत्यु की भट्ठी में झोंक दिया ! मार डाला—आह ! चुप ! भूल जा उसे, भूल जा ! किसी के जीवन में वह दिन न आवे—रे, नहीं !...गंगा ?

[गंगा का धीरे-धीरे प्रवेश]

गंगा—पृथ्वीनाथ ?...

ऊदा—(पास आकर)—तू गाना जानती है ?

गंगा—(सहमकर)—नहीं, अन्नदाता !

ऊदा—नाचना ?

गंगा—(अधिक डर कर)—नहीं, नहीं—हुज़ूर !

ऊदा—(तीव्रतापूर्वक चिल्ला कर)—क्या जानती है तब तू ? हट जा सामने से ! (गंगा का काँपते हुए प्रस्थान) कुछ नहीं

जानती ! संगीत ? (स्थिर, आँखें फाड़कर जैसे कुछ देख रहा है।) अन्धकार के महासागर में एक अति प्राचीन चट्टान की तरह मैं खड़ा हूँ ; और-ओर जैसे सवेरा हो रहा है ! पक्षियों का गीत लहरें जगा रहा है—पर मेरी जड़ता नहीं हटती ! कहाँ से हटे ! सागर गा रहा है ; आकाश सुन रहा है ; पृथ्वी का रोम-रोम सजीव है ; संजीवन में जगा हुआ है ; पर मेरा चेतन नहीं जगता ! कहाँ से जगे ? गर्जना करते हुए पहाड़ी बादल मुझसे टकरा रहे हैं—और मैं रो रहा हूँ ! मैं अशुद्ध हूँ—पतित हूँ !!......(चुपचाप झरोखे के पास जा खड़ा होता है)...तू नाचना भी नहीं जानती ? (दिग्मूढ़-सा) शीः ! ना मत कह—मत कह। नाच ! अच्छी तरह नाच !! देखती नहीं मैं आग में, अंधकार में, सपनों में नाच रहा हूँ—नहीं देखती ? ओह ! सारे भूमण्डल में कम्प हो, रोम-रोम में प्रज्वलित लपटों से उजेला हो—दावानल जलता रहे पापी के हृदय-वन में !! मैं नाचता रहूँ, यों दाँतों के बीच जीभ कुचल, विष मिले खून का सारे शरीर पर लेप कर—सुन रही हो तुम ? (फिर आँखें फाड़कर) कौन हो तुम ? फिर आ रहे हो—गंगा, गंगा !!

[डरते-डरते, पर शीघ्रता पूर्वक गंगा का आना]

गंगा—स. र. का. र !

ऊदा—मैं सोऊँगा। पहरेवालों से कह दे, उसे हर्गिज़ न आने दे। समझती हो ? तुम सब नमकहराम हो। मुझे शान्ति से सोने तक नहीं देते ! मैं सोना चाहता हूँ, सर्वदा के लिए

सोना ! यह रोज का सोना, रोज का उठना फिर क्या ? यह मुझे शोभा नहीं देता—नहीं ! (पलंग पर जा, पड़कर) क्या ताक रही है मेरे मुँह की ओर ? आज दिवसों से आधीरात को उसे चुपके से यहाँ फट पड़ने देते हो तुम सब ? सोते क्यों रहते हो तुम लोग ? क्यों आने देते हो उसको ?......

गंगा—(सकपका कर)—किसको, पृथ्वीनाथ ? अन्दर कोई तो नहीं आता......

ऊदा—(कुहना के बल हो)—झूठ ! (सँभल कर) हूँ—कोई तो नहीं आता ? बहुत अच्छा, हाँ, कोई नहीं, कोई नहीं आता, कोई नहीं—कोई नहीं। पर सब जगते रहो—जगते ; मुझे अकेला सो जाने दो ! जा—ठहर, पंखा कर। किसी को, मर जाए तब भी मत आने दे ! खिड़कियाँ बन्द कर दे, पड़दे डाल दे ; दीपक बुझा दे—शान्ति ! मैं सो रहा हूँ—मेरी तलवार तो सिराने है न ? (सँभाल) ढाल भी, कटार भी—कटार !...हाँ, हाँ—ओह !...(सो जाता है)।

[बारह बजते हैं]

गंगा—(पंखा झलती हुई)—हे ईश्वर ! जल्दी महाराणी जी को भेज दे ! कहीं ये मुझे कच्चा ही न खा जायें ! किसका मुँह देखा था आज ?...'

ऊदा—(करवट बदल कर)—कौन ?

गंगा—(सहम कर)—यह तो मैं हूँ—और कोई नहीं अन्नदाता ! (कुछ चुप रह कर) महारानी जी जल्दी आ जायँ, तो

छुटूं यहाँ से ! आज दिवसों से जब-जब अकेले रहते हैं, बस यही हाल है—हे ईश्वर ! दया कर ! चलूँ ! शायद सो रहे हैं अब—

[दूर, नीचे पहरुआ—सावधान ! मध रात की सावधानी...]

ऊदा—आ रहा है—आ रहा है, ठहर ! ठहर जा, आज—आज मैं—(कुहनी के बल हो जाता है और तलवार ढूँढ़ने की चेष्टा करता है)

गंगा—(काँपती हुई)—ओ बाप रे, भागने में ही खैर है ! नहीं तो—

ऊदा—(पीछा पड़कर)—ओह ! छाती पर—छाती पर चढ़ बैठा—मेरी छाती पर ! (बल लगाकर जैसे ढकेल दे रहा हो) उतर, उतर नीचे—नीचे उतर ! (जैसे ढकेल दिया हो) ओह ! क्या करेगा ? मार डालेगा क्या ? अच्छा, अच्छा !! युद्ध ? आ जा ! ज़िन्दा न छोड़ूँगा आज तो तुझे—आ जा—(तलवार खींच कर) आ जा—मैं तुझसे नहीं डरता ! (ढाल उठा लेता है ।)

गंगा—(चिल्लाकर) ऐ मेरी माँ ! हाय बाप रे ! मार डाला—ओ बाप रे—(भाग जाती है ।)

ऊदा—(कुछ झपट)—भाग रहा है ? क्यों ? हमेशा इस ज़ोर से, इस ज़ोर से मेरी गरदन दबाता है कि—ओह ! बाल भर भी नहीं डरता मैं तुझसे—आ जा ! निकाल तलवार ! इतनी आग—आ जा—

[महाराणी का प्रवेश]

महाराणी—(चकित-सी)—राणा ?......

ऊदा—(वैसे ही)—व्यंग दे रहा है? बाप था तो क्या हुआ? क्या हुआ—बदल पैंतरा! (तलवार घुमाता हुआ) राज्य के लिए क्या खून नहीं हुए? तो? सँभल, बुड्ढे! यह ले—(जैसे घा करता है)—हें! कट कर जुड़ गया! पीछा जुड़ गया—कुम्भा! मुझे मार क्यों नहीं डालता? मैंने तुझे मारा तो-तो—कर घाव?......

महाराणी—(दिग्मूढ़ वज्राहत-सी)—महाराणा! राणा!! सुनते हो? क्या कर रहे हो यह—राणा!!!

ऊदा—(दाँत भींस कर लड़ता हुआ)—चुप रहो! वृक्षो, तारो चुप रहो! चुप मरो पिशाचो! ऊदा आज निपटारा कर लेगा—यह मेरी बरछी से मर कर भी न मरा—न मरा! अब, अब मुझे मार डालने आया है!......

महाराणी—(हाथ मलती हुई)—भगवन्!......क्या करूँ?...

ऊदा—(वैसे ही)—क्या करूँ? युद्ध!! मैं पूरा मार डालूँगा तुझे! जय एकलिंग! (उछल कर) यह ले कंधे पर झटका! (टेढ़ा हो) आह! बुरा मारा हाथ पर! कट जाने दे उस हथेली को—अच्छा हुआ यह! कुम्भा! कुम्भा!! दूसरा घाव? पिताजी! मैं—मैं—आह! काट डाला आधा ललाट, आँखें निकल पड़ीं! (तलवार ढीली पड़ती है। हाथ फैला कर) सूर्य, चन्द्र!! पीतम—हूँ! मैं मरणीया होकर लड़ूँगा—

[गंगा का त्वरा से प्रस्थान।]

गंगा—सरकार ! दौड़ते दौड़ते मैं मर गई !! ओ, मा—रे ...

महाराणी—चुप रह ! मैं किसी कदर इनका हाथ पकड़ लेती हूँ—तू देखती रहना ; मुझे कुछ करें, तो छुड़ाने लपकना, समझी !..(आगे बढ़ती हैं)

ऊदा—(जैसे घायल की तरह अन्तिम पैंतरा बदल रहा हो)—थोड़ी देर में सब ख़तम ! समाप्त !! यह जलना—अंधेरा—सब समाप्त !! बचा ! ओ भैरव ! पँसली कट गई !!! मैं मर जाऊँ भले—पर तुझे नही छोड़ूँगा ! उस दीपक पर मत घा कर—मत कर !!...

महाराणी—(धीरे-धीरे उसके पास जाने की चेष्टा करती हुई)—ओह राम !...

ऊदा—यह घाव ओर, और फिर बस ! शान्ति—चिर निद्रा !! मरने में यह सुख—जीने में वह ज्वाला !! (झटका खाकर जैसे) आह—(लड़खड़ा कर घूम गिरता हुआ) आह ! मार डाला—काट डाला कलेजे को—आ-ह...(गिर पड़ता है)

महाराणी—(दौड़ कर)—राणाजी !...

गंगा—सरकार ...! (थर-थर काँपती है)

सतवाँ दृश्य

[तिबारी । रायमल, चैत्र और काँधल]

रायमल—(विचार मग्न से)—न मालूम राणाजी को उन्माद कैसे हो गया ? हरेरिच्छा ! चलो, अब ठीक हैं । भाभी भी जीवट की स्त्री हैं ! रात-दिन खड़ी-खड़ी चाकरी करती रहीं—अच्छा सँभाला (आह रख कर) सच्चा प्रेम मंगलमय सेवा ही के रूप में जन्मता है ! खूब, मैं ऐसी पत्नी चाहता हूँ, जो मनुष्यत्व को ही जीवन समझे । राणियाँ मन की धर्म पत्नियाँ होती हैं—कर्म की कहाँ ? दास—दासियाँ उनका कर्म निगल जाती हैं ! (आह भरकर) बुद्धिमान व्यक्ति उन्माद में कैसी-कैसी कल्पना कर बैठता है ? अच्छा होने पर उससे उसका प्रलाप कहो, तो अपनी मूर्खता पर जैसे उसे गौरवमय हँसी आती है ! इतने दिन, सप्ताह भर होने आया, हाँ सप्ताह ही तो—राणा की जिह्वा पर ये ही दो भाव घटमाल बन गये थे ! जैसे वे स्वयं मर गये हों ;

भूत बनकर घूम रहे हों, आश्चर्य ! कुछ मानसिक कष्ट अवश्य होना चाहिए! नहीं तो यह होना असम्भव है–कुछ वात अवश्यहै ! इस जैतसिंह ने ऐसा क्या कर दिया है, जो राणा उसके पड़े वोल उठा रहे हैं ? उसे देखते ही जैसे डर जाते हैं । न मालूम, क्या है ! कुछ वात अवश्य है—एक गूढ़ भेद, जो...होगा, सत्य वादलों में कब तक छिपा रहेगा ? (कुछ व्यग्र से) बड़ी देर हो गई ! अव तक न आये ! काँधल भी विचित्र जीव है ; और कुछ नहीं, तो अस्त्र-शस्त्रों के जुटाव ही का शौक है—

[नेपथ्य में—चेत्र बापू ! पधार रहे हैं हुज़ूर !]

लो आ गये, अन्त में— (चेत्रसिंह और काँधल का प्रवेश)

रायमल—(कुछ आगे बढ़, स्वागत करते हुए)—जय महादेव ! काँधल, राह देखते-देखते तंग आ गया !

काँधल—(हँस, आदाब कर)—ज़रा वातों में समय का भान न रहा—देर हो गई। आखिर जंगलों और पहाड़ों से भरे देश की वीर गाथायें ठहरीं ! स्वदेश-कथा की वात ही ऐसी है। हुज़ूर तो अच्छे रहे ?

चेत्र—देखो न, वैसे ही हैं, जैसे कमल पर पानी की बूँद...

रायमल—(कृतज्ञ होकर)—अच्छा अच्छा ! चेत्र, मैं तो एक साधारण मनुष्य हूँ । अन्दर चलें, कि यहीं वैठें ? अन्दर गरमी होगी ; अरे—आसन लाना !

[नेपथ्य में—जो आज्ञा, सरकार !]

काँधल—जैसी श्रीमान की इच्छा !...(मुसकुराता है)

[अनुचर आसन लाता है। सब यथा विधि बैठते हैं।]

रायमल—राणाजी बीमार हो गये थे—

कांधल—अब तो ठीक हैं। मैं जल्दी न आ सका, यों तो आने की इच्छा भी न थी, भगवान रुद्र की साक्षी! बड़े हुजूर की आत्महत्या ने मेरी छाती पर वज्र पटक दिया! मेदपाट स जैसे कुछ छिन गया! इतना बड़ा महात्मा और आत्महत्या! मैं दिग्मूढ़ हो गया जैसे—

क्षेत्रसिंह—(अपने आप ही जैसे बोल रहा हो)—किस की आँखें आश्चर्य से न फट गईं? सब जड़ रह गये, अवाक्—किंकर्त्तव्यमूढ़! किसी को सोचने का अवसर तक न मिला; पर सोचना अधिक अवाक् कर देता है, अधिक जड़!...

कांधल—मतलब?

क्षेत्रसिंह—मतलब? मतलब एक रहस्य है, महोदय!

रायमल—पहेलियों सा क्या बुझा रहे हो तुम, क्षेत्र!

क्षेत्रसिंह—जी नहीं, मैं बहुत सी अदृश्य बातों के हाथ मिला रहा हूँ, अतीत की आस्तीन से घटनाओं की हथेलियाँ बाहर निकाल उनकी रेखायें देख रहा हूँ। हुँ—जंगल, अँधेरी, जैतसिंह, ऊदा की बातें, अघोरी की बात पर ऊदा का विश्वास प्रगट करना—हुँ! और, और? और यहीं रहस्य का एक सागर का सागर छाया पड़ा है!...

कांधल—(प्रश्नातुर)—तुम्हारे अनुमान से राणाजी ने आत्महत्या नहीं की, क्यों?

क्षेत्रसिंह—(दृढ़ स्वर में)—अवश्य ! एक वार नहीं, हज़ार वार कहता हूँ, नहीं की।

रायमल—(आतुर पर चकित से)—तब ? क्षेत्र ! सोच समझ कर बोल रहे हो न ? जानते हो, इसका क्या अर्थ होता है ?

क्षेत्रसिंह—(सिर हिला-हिलाकर)—हाँ-हाँ, इसका यही अर्थ होता है, कि किसी ने उनका ख़ून किया—

रायमल—(बीच ही में)—शी-ई-ई ! क्या वक रहे हो ? कौन ख़ून करेगा उस देवता का ?

काँधल—(तत्पर)—ख़ैर, यह वात तो नहीं है कि देवता का ख़ून ही न हो ! देवता का ख़ून कोई राक्षश कर सकता है। क्षेत्रसिंहजी, भगवान रुद्र की शाक्षी ! मुझे भी विश्वास तो न आया था ; पर पागलपन में कर वैठे होंगे—यही सोचकर मनको समझा दिया। पर यदि उस देवता का ख़ून हुआ है, तो काँधल अपनी जनेता की सौगन्द खा कहता हूँ, उस नर पिशाच की वोटी वोटी काटे विना वह शान्त न होगा ! कौन होगा वह नीच हत्यारा जिसने—जो भी हो ! काँधल उसे जीवित न छोड़ेगा ; चाहे फिर वह मेरा सगा भाई ही क्यों न हो ? काँधल की तलवार उसके रक्त से भले ही दूषित हो, पर वह उसका सिर उतार लेगा ! जल्दी वताओ, वह कौन है ?......

क्षेत्रसिंह—वह इस आकाश से पूछो, इस महल से ! पर पितृदेव का ख़ून हुआ है, यह निश्चय है। मेरी अन्तरात्मा चिल्ला चिल्लाकर यह कह रही है। अब किसने किया है, यही खोज

निकालना बाक़ी है तो मैं समझता हूँ, बदला हुआ जैतसिंह इसमें मदद कर सकेगा। हमारी आँखें फूट गई हैं!......

रायमल—जैतसिंह? चेत्र! (सिर धुनकर) कुछ समझ में नहीं आता! पर—

काँधल—मैं उसे सिंहों की गुफा में बन्द कर दूँगा! ऐसी कोई शक्ति नहीं त्रिभुवन में जो मुझे रोक सकेगी, भगवान रुद्र की साक्षी!......

चेत्र—(व्यंग से हँसकर)—सब हो रहेगा! पर पहले हम राणाजी से मिल लें; उनसे बात-चीत हो जाय। जैतसिंह को अर्बुदाचल न दिया जाये यही कहा जाय उनसे। देखें, वे क्या उत्तर देते हैं! और बातें पीछे होंगी—हम इसीलिए श्रीमान से मिलना चाहते थे, कि कब चला जाए? मिलना भी था—हाँ हमारे साथ सिंहपुर, सादड़ी और सलूम्बर भी चलेंगे।

काँधल—अभी चलो!

रायमल—(चिन्तित)—अभी नहीं। और फिर राणाजी अभी बाहर आने के योग्य भी नहीं हुए। आराम की उन्हें पूरी आवश्यकता है। हम मिलना भी चाहें, तो महाराणी मिलने न देंगी। मेरे विचार से दरबार हो, उसी में जो कुछ पूछना हो पूछ लिया जाए—

चेत्र—खूब याद दिलाया! वहाँ और बातें भी मालूम हो जायेंगी! अवश्य—

काँधल—मैं देख रहा हूँ, शायद मेदपाट पर क्रान्ति के बादल घिर रहे हैं—

रायमल—मुझे भी यही दीख रहा है! जैसे अन्तरिक्ष फाड़ कर कोई सत्य प्रकाशित होना चाहता है।

क्षेत्रसिंह—(उठकर)—मैं आज्ञा माँगता हूँ—जो होगा वह सामने आ जाएगा। चलोगे, काँधल? हुज़ूर को आराम करने दो, क्यों?

काँधल—(उठता हुआ)—चलो, अधूरी गाथा समाप्त ही कर दूँ। जय एकलिंग!

रायमल—(उठकर)—जय एकलिंग!......(दोनों जाते हैं) पिताजी!!......

(चिन्तातुर प्रस्थान। अनुचर का आसन उठा ले जाना)

—

आठवाँ दृश्य

[ऊदा का शयनागार। ऊदा और महाराणी।]

महाराणी—(शान्त निश्वास के साथ)—मैं अभागिनी हूँ—दूसरा कुछ नहीं !

ऊदा—(आतुरता से उसकी ओर देख, व्यग्र)—मैं तुम्हारी भावनायें समझता हूँ—समझता ! पर—(आह रखकर, मुट्ठियाँ भींस) पर—

महाराणी—पर क्या ?

ऊदा—(उठकर घूमता हुआ)—पर, पर राणी ! मैं अपने आपको...कैसे कहूँ ? अच्छा, मैं मूक ही रहूँगा, होंठ सीये हुए रहूँगा ! मैंने अपने को तुम्हारी दया के चरणों में डाल दिया है !

महाराणी—(उठकर हाथ मल)—ठीक है, राणा ! ठीक है—ओह ! मेरी जीभ कटकर गिर क्यों नहीं पड़ती ? (स्थिर दृष्टि

से देखकर) आपने मेरा वह दो-दो जीवों के रक्त से लिखा हुआ पत्र तक ठुकरा दिया—

ऊदा—(सिर धुनकर आहत)—मैं क्षुद्र हूँ, राक्षस हूँ—कह तो दिया !

राणी—(कट कर)—कहते थे न, तुम्हें फूल चुभने पर भी जो कष्ट होता है, उसे भी मैं सहन नहीं कर सकता—याद है ! बोलिये, चुप क्यों हैं, राणाजी ?......

ऊदा—(स्थिर घायल दृष्टि से)—ईश्वर के लिए व्यंग न मारो, महाराणी !

राणी—कृपा कीजिये, मैंने (अत्यन्त कष्ट के साथ) मैंने महाराणी की केंचुली उतार फेंकी उसी दिन—उसी दिन ! मुझे ऐसे ज़घन्य सम्मान की भूख नहीं ! तपे हुए तवे पर मैं बैठ नहीं सकती ! राणा, वीरों का वचन भी अब विश्वास के योग्य न रहा । ओह भगवन् ! मैं क्या करूँ—कहाँ जाऊँ मुझे मौत दे-दे, मैं अब जीवित रहना नहीं चाहती ! नहीं—

ऊदा—(काटो तो खून नहीं यों)—परमात्मा के लिए, ईश्वर—

राणी—(जलन, ग्लानि तथा दीनता के साथ)—दया कीजिए ! सुख से मुझे यह अन्तिम कामना तो करने दीजिये (सहसा) तुम बोलते किस मुँह से हो ? तुमने तो पहले ही मेरी और अपने पूत की गरदन पर छुरी फेर दी है ! आह्—अब सहा नहीं जाता । मैं विष पीऊँगी—(रुआई हो जाती है) ओह ! राणा—

ऊदा —मैं आर्तस्वर से दया की भीख माँगता हूँ ! (घुटने बैठ) सुनती हो, पीतम ?

राणी—(स्थिर सामने एक ठूँठे वृक्षको देखती हुई)—जीवन भर तक जिसने पाला-पोसा—

ऊदा—(सिर धुन)—पीतम—प्रिये ?

राणी—(वैसे ही)—'जिसने युवावस्था के सुख-साज दिये, जिसने सिर दुखने पर भोजन छोड़ दिया, पड़ा बोल उठाया, जिससे अपनी लाज, अपना धरम, अपना सुहाग, अपना जीवन—

ऊदा—ओह—चुप रहो, ईश्वर के लिए चुप रहो ! (हड़-बड़ा कर) एक बार पीतम ! एक बार क्या मुझे क्षमा नहीं कर सकती ? प्रिये ? सुनो तो—

महाराणी—(वैसे ही)—वह माँ, जिसने नौ मास की कठिन साध कर कलेजे से पाला, उसी का सुहाग, उसी का पूत—(आँसू भर आते हैं) किस काम के ऐसे पूत ? (दांत भीसती है)

ऊदा—(सिरकूट)—ओह, ईश्वर ! (उठ कर स्थिर आकाश में देखता है)

राणी—(वैसे ही)—मेरा सपना उजड़ गया ! ये भाग फूटे थे—फूटे !

ऊदा—(अकेला)—ऊदा ! तुम पर बिजली क्यों नहीं गिर पड़ती ?......

राणी—(अकेली)—धर्म तब कुछ नहीं, प्रेम तब कुछ नहीं—सब झूठ !

ऊदा—(वैसे ही)—ऊदा! तुम्हारे भाग में सैकड़ों सर्पों के दंश खाने बदे हैं, और क्या!...

राणी—(हड़कम्प के साथ)—राम! ओह—एक तो तुम थे, जिसने राज को पिता के उस मूर्खता पूर्ण वचन के लिए लात मारी और—और एक ये हैं! अब मैं कह सकती हूँ यह जीवन अनन्त निराशा है—

ऊदा—(बाल नोंच कर)—मैं जलने के लिए ही बना हूँ—हे विधाता! जलाओ, ज्वाला मुखी की भट्टी में झोंक दो मुझे! मैं एक शब्द भी न बोलूँगा! मैं इसी के योग्य हूँ—

राणी—(रोती हुई, ललाट-पकड़े लथड़ती हुई)—यह-यह मेरे ही पापों का परिणाम है मेरे ही! ओह भगवन्—अब किस मुँह से दुनिया में जीऊँ मैं?...(मूर्छित हो गिरती है।)

ऊदा—(दौड़ कर झेल लेता हुआ)—राणी, पीतम, प्रिये! मेरी प्रियतमे, मुझे—मुझे माफ़ करदो! मैं मानता हूँ, कान पकड़ कर मानता हूँ, मैं क्षमा के योग्य नहीं—नहीं! (मूर्छित राणी के वक्ष पर सिर रखकर कातर स्वर में) यह बहुत हो रहा है विधाता! बहुत हो रहा है! (सिर उठा कर) हम दोनों ही अभागे हैं, दोनों ही दुखी—दोनों भाग के मारे! (राणी को पलंग पर लिटाता है) बुलाऊँ गंगा को? नहीं—क्या मैं नहीं हूँ? (सुराही से पानी ले छिड़-कता हुआ) जीवन, यह जीवन—कितना गहरा रहस्य है? किसे पता था, किसे? कि आये दिन दो अभिन्न प्रेमियों के बीच यह काला अभेद्य दुर्ग खड़ा हो जाएगा? क्या करूँ? अभी तक न जगी!

(राणी करवट बदने की चेष्टा करती है) पुनः, पुनः होश में आ रही है, हे ईश्वर ! मुझ पर दया करो। इसके लिए तीन भुवन को सम्पत्ति भी मैं त्याग दूँगा...इसे खोना नहीं चाहता मैं !... (राणी आँखें खोलती है)

ऊदा—(प्यार, स्वग्लानि पूर्वक)—कैसी तबियत है ?

राणी—(स्थिरता पूर्वक उसकी ओर देख) ठीक है।

ऊदा—(हर्ष से)—परमात्मा की दया...

राणी—(वैसे ही)—उसमें विश्वास भी करते हो ?...

ऊदा—(अलग हट, टटार)—करता हूँ—

राणी—सच ? सच कहो—अपने पुत्र की सौगन्ध खाकर कहो—

ऊदा—(ठूँठे वृक्ष की ओर देख)—तुमने पतझर नहीं देखा ? अवश्य—एक पापी के लिए ईश्वर के विश्वास बिना दूसरा चारा ही क्या है ? (उठकर) पतझर को क्या मालूम कि वसन्त क्या है ? राणी ! सारा संसार—स्त्री, पुत्र, इष्ट-मित्र सभी—सभी उसे ठुकरा देते हैं—उस अभागे जलते हुए जीव को त्याग देते हैं; मानों वह उन्हें ले डूबेगा। तब संसार भर की घृणा और ठोकरों का मारा वह दुर्जन, वह नीच—अपने आप से हारा हुआ वह पामर—किसके मुंह की ओर देखे ?...

राणी—राणा, जगत को उलाहना न दो। सुनो !...

ऊदा—(सिर लटकाये हुए घूमता हुआ) पापी के लिए सब मार्ग—सब दरवाजे बन्द हो जाते हैं ! मैं तो समझता हूँ,

पुण्य का भूखा ईश्वर तक उस पर दया नहीं करता—करे भी कैसे ! शिशिर और अँधेरी रात—कोयल कौन खोजे, कहाँ मिले ? हाँ, कहो—

राणी—(कुहनी पर सिर टेक)—मुझे अब सन्तोष शायद मिल जाए ; पाप ने आपको ईश्वर का विचार दिया। समझते हैं, राणा ?

ऊदा—(वैसे ही) हाँ, समझता हूँ। इस अँधेरे का आधार क्या वह होगा ? जीवन-दीप का मेरा सनेह सूख गया आज. सूखे, पीले पत्तों से भरा यह संसार क्या मेरे हीन नयनों का भ्रम है ? राणी, तुम्हारा उदय आज पतझर ही पतझर है—(दारुण व्यंग से, कष्ट से हँसकर) राणी !

राणी—(बैठकर)—मेरे पास आओ, (हाथ पकड़कर) मेरे पास बैठो—(ऊदा उसके पैरों में बैठना चाहता है) ऊपर, मेरे पास बैठो। (ऊदा नीचे ही बैठता है) अच्छा, तुम्हारी इच्छा ! जो हुआ उसे भूल जाओ—और प्रतिज्ञा करो भविष्य में ऐसा कभी न करूँगा—करो...

ऊदा—करता हूँ—

राणी—(घूरकर)—यों नहीं, अक्षर-अक्षर बोलकर प्रतिज्ञा लो—बोलो, परमात्मा, ईश्वर, पैंतीस करोड़ देवताओं की साक्षी देकर मैं प्रतिज्ञा करता हूँ—बोलो—

ऊदा—परमात्मा, ईश्वर और तैंतीस करोड़ देवताओं की साक्षी दे मैं प्रतिज्ञा करता हूँ—

राणी—(बीच ही में)—अपने पीतम का रक्त लेकर कहता हूँ—

ऊदा—(असहाय, कट-कट पड़ता हुआ)—अपने पीतम का रक्त—ओह !—रक्त लेकर प्रतिज्ञा करता हूँ—

राणी—कि इस सिंहासन को अपना रखने के लिए और चौदहों ब्रह्माण्ड के राज के लिए किसी भी प्राणी का रक्त न बहाऊंगा !

ऊदा—तुम बोल रही हो, वह मैं ही बोल रहा हूँ, पीतम !...

राणी—(निस्वास के साथ)—मेवाड़ नाथ एकलिंगावतार कहा जाता है, समझे ? यह प्रतिज्ञा तुम नहीं, एकलिंगावतार कर रहे हैं। राणा, इस प्रतिज्ञा की गुरुता समझ रहे हो न !

ऊदा—हाँ, (उठकर) मेरे लिए तुम रहो, मैं अब और कुछ नहीं चाहता। तुम ही मेरा संसार हो—पतझर में केवल यह एक कूज ही शेष रही !...

राणी—राणा ! ऐसा ही था-ऐसा ही था तो—होगा। उस जघन्य घटना को भूल जाना ही अच्छा है। (उठकर) विस्मृति के वरफ़ से इस घाव को भर देना ही अच्छा। समझ लूँगी, मेरे भाग में इसी तरह महाराणी होना बदा था, हुई। (पास जाकर) पर देखो, अब के साफ़-साफ़ कह देती हूँ, प्रतिज्ञा मन में भी तोड़ोगे, तो मैं जल मरूँगी, विष पी लूँगी। यह ख़ूब समझ रखना राणा ! समझ लो, छाती पर पत्थर रख कर यह कर रही हूँ—कह रही हूँ। यदि प्रतिज्ञा पाल न सको, तो महाराणा ! अभी कह दो—

ऊदा—(उत्तेजित, पर संयत)—कुछ भी हो जाये, पालूँगा—

राणी—चाहे सूरज पश्चिम में ऊगे ?

ऊदा—हाँ ।

राणी—(मुट्ठी भींच, खोल)—चाहे प्रलय हो जाये, राज चला जाये, मैं मर जाऊँ, कुँवर मर जाये ? बोलो—

ऊदा—(उसे सध्यान देख कर)—हाँ, हाँ—कह न दिया, राणी ?

राणी—(आह भर कर)—तब ठीक है...अब मैं उस हलाहल को पचा लूँगी । उस स्मृति के त्रिशूल से मर्ज में भिदती रहे यह छाती, चिन्ता नहीं । कैसी कठोर परीक्षा है, ईश्वर !

ऊदा—राणी ?...

राणी—(कातर पर संयत)—क्या ?

ऊदा—एक बात पूछूँ जवाब दोगी ?

राणी—(सहसा गद्गद् पर सरोष)—समझती हूँ, तुम मेरे वर्तन में नवीनता, परिवर्तन पाते हो न ? तो राणाजी, मैं भी मनुष्य हूँ । जिस प्रकार आप कहते हैं कि अपनी कामना थी, सपना था—मैं भी कहती हूँ मेरा भी एक सपना था, कामना थी...समझे ?

ऊदा—(घूरकर)—हाँ, समझता हूँ, यही न कि तुम्हारा पति बड़े ऊँचे आदर्श का मनुष्य हो ?

राणी—इतना ही नहीं राणा ! उसे मैं रामचन्द्र से भी महान देखना चाहती थी । यह मेरा माँ की गोद का सपना था ।

ऊदा—(असहाय खोया सा)—तब तो मैंने तुम्हें कहीं का न रखा। आह मैं कैसा पापी हूँ ?...दुर्दान्त, नीच, पतित !

राणी—(पास जा कंधे से हिला)—अब यों न कहो—तुमने क्या, मेरे कर्मों ने लूटा ; नहीं तो आज एक महाराणी ऐसी दीन, ऐसी कंगाल न हो जाती जैसी एक विधवा भिखारिन भी नहीं हो सकती ! पर खैर—

ऊदा—(गम्भीरता पूर्वक, पर तीव्रता से)—दया करो, पर अब अधिक बर्छियाँ सही नहीं जातीं !

राणी—(सहसा जैसे सँभली हो, जगी हो)—ओह, मुझे दुःख है कि मैं यह बोल गई। मैं बहुत कठोर हुई जा रही थी—पर, पर स्वामिन् ! तुम नहीं जान सकते आज मैं कहाँ हूँ ? अच्छा, आओ, हम दोनों घुँटने टेक कर एकलिंगनाथ से प्रार्थना करें आओ—(घुँटने बैठती है)।

ऊदा—प्रार्थना ? मैं करूँ इस निविड़ आधी रात में प्रार्थना ?
राणी—पीतम !

राणी—(हाथ पकड़कर झुकाती हुई) झुको, मेरे पास बैठो। वहाँ क्या देख रहे हो—

ऊदा—अन्धकार में मैं जुगनू देख रहा हूँ—इस नीरव जड़ता में यह चीत्कार कैसा ?

राणी—(वैसे ही)—घुँटने टेक दो ! (ऊदा घुँटना टेक देता है) वह करुणानिधान हमें शान्ति दे, हिम्मत दे ; बल दे...

ऊदा—मैं बोल नहीं सकता—(आँखें भर आती हैं)

राणी—(बन्द आँखों से)—मैं बोलूँगी ; तुम्हें अपने में छिपा, घुला, मिला मैं रोऊँगी ; गिड़गिड़ाऊँगी। भगवन्! हम दोनों को क्षमा करो, (रोती हुई) हम दोनों ही निराधार हैं, पामर हैं—पापी, अभागे ! हम पर करुणा करो—(ब्राह्ममुहूर्त की शहनाई बजती है)

ऊदा—(सहसा उठकर)—शान्ति, चारों ओर ऐसी आभा—ऐसी !

राणी—मेरे अपराधी स्वामी को सद्बुद्धि दो...

ऊदा—सद्बुद्धि !

राणी—उन्हें प्रकाश दो, प्रकाश नाथ...

ऊदा—प्रकाश ! अन्धकार भरे हृदय में कौन-सा सवेरा ? ओह, प्रकाश—

[मुँहजोई होने लगती है। यवनिका।]

तीसरा अंक

पहला दृश्य ।

[दरबार ।]

पुरोहित—मेवाड़-नाथ की कीर्ति-गाथा हो चुकी, अब धर्मा-चरण का उत्सव हो।

ऊदा—(गम्भीरतापूर्वक सबको देखता हुआ)—जैसी एकलिंगनाथ की आज्ञा, मरजी ! पर पहले मैं अपने सामन्तों की कृपा का ऋण स्वीकार करता हूँ जिनकी लगन और शुभेच्छाओं ने ही मुझे जीवनदान दिया है। हमारी शोचनीय रुग्णता के लिए हमारे महराज के इन दृढ़ाधारों को चिन्ता और व्याकुलता न होती, तो फिर किसे होती ? ये ही तो हमारे हाथ हैं, पैर हैं, जिनसे हम साम्राज्य का भरण करते और सर्वदा आगे-आगे चलते हैं—(मुलकता है)

चेत्रसिंह—(छद्म हास्य के साथ)—महाराणा की गुण-ग्राहकता प्रशंसनीय है। अफ़सोस तो इस समय यही है कि महाराज्य के सबसे बड़े और सहृदय सामन्त शिरोमणि जैतसिंह-जी दैवयोग से आज यहाँ उपस्थित नहीं हैं। वे तो महाराज्य के हृदय ही ठहरे—

सिंहपुर—(बीच)—नहीं तो मैं उन्हें सौ-सौ साधुवाद देता, बधा लेता!

ऊदा—(चेत्रसिंह की ओर घूरता हुआ)—जैतसिंह का यहाँ न होना दुःखद अवश्य है, चेत्रसिंहजी! पर यह अभाव इस समय चंद्रमा में कलंक की भाँति सह्य है। मैं एक बार और अपने सभी छोटे-बड़े उमरावों के प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ और विश्वास दिलाता हूँ, हम एकलिंगनाथ की दया से अच्छे हैं।

दो चार उमराव—घणी खम्मा पृथ्वीनाथ को।

चेत्रसिंह—(आवाज़ आई उस तरफ़ देख)—खमाँ, खमाँ!

पुरोहित—पृथ्वीनाथ! आज के दरबार का मुख्य कार्य—मंगलाचरण—

ऊदा—हाँ, ऐसे अवसरों पर जो परिपाटी हो। महाराज के ब्राह्मणों को, प्रति कुटुम्ब एक एक गाय और सप्ताह भर की भिक्षा और बढ़ादो।

पुरोहित—(झुक कर)—जैसी धर्मधर की आज्ञा—

दीवान—पृथ्वीनाथ, बड़े हुज़ूर के समय ऐसे अवसरों पर

कृषकों को कुछ माफ़ी प्रदान की जाती थी। राजनैतिक क़ैदी अपनी खोई हुई स्वतंत्रता पुनः पाते थे और—

कांधल—(बीच ही में)—अच्छा याद दिलाया अचलदास जी! मैं मेवाड़नाथ से प्रार्थना करता हूँ कि अन्नदाता कुछ अर्से पूर्व दण्डित उन बेचारे कैदियों को मुक्त कर दें।

क्षेत्रसिंह—कांधलजी! मैं तलवार की सौगन्ध खाकर इसका समर्थन करता हूँ।

ऊदा—राज-मर्य्यादा राज के सामन्तों का सबसे बड़ा इष्ट है, कांधलजी! आपकी प्रार्थना पर मेरा न्याय-तराजू तय्यार है। मैं इस पर निश्चितता और तत्परता पूर्वक विचार करूँगा—

कांधल—महाराणा! उनका गिरफ़्तार होना ही अनहोनी घटना थी—

क्षेत्रसिंह—मेरा समर्थन ढाल की तरह इस कथन के साथ है—

ऊदा—(संयत)—हम उनकी मुक्ति के लिए विचार करेंगे। ऐसे अवसरों पर ऐसे उद्धतों को मुक्त कर ही उनमें राज के प्रति सद्भाव जगाये जा सकते हैं—हाँ, और—

कांधल—महाराणा, मैं परिपाटी की ढाल में अबतक इस गिरफ्तारी के प्रति विरोध की बर्छी छिपाये हुए था। आज इस मंगलदरबार में मैं धर्म और नीति को हुजूर के सामने ला खड़ा करता हूँ। उनका अपराध क्या था, मैं यही सोचता हूँ, महाराणा!

ऊदा—(समझ, पर रोष को मुलक में छिपाता हुआ)—साह्-सिक महोदय, न्याय का तराजू एकलिंगावतार के हाथों में हैं। वे जो कुछ भी करते हैं, ठीक तौल कर; करेंगे वह भी जोख-तौलकर! इसमें इतने व्यग्र और अधीर होने की बात ही क्या है? हाँ, आनन्द के इस अवसर पर विजित अर्बुदा चल—

चेत्रसिंह—(दबे पर, तीव्र स्वर में)—जैतसिंहजी को देदिया जाय—

ऊदा—(जैसे चेत्रसिंह को सुना ही न हो)—वह कौन? चेत्र-सिंहजी? धन्यवाद—आपके सुझाने की क़दर मेवाड़नाथ न करेंगे तो और कौन करेगा? तब वैसा ही होगा—

सिंहपुर—राणाजी!......

ऊदा—(चौंक पर संयत) फिर वह कौन? सिंहपुर? फरमाइये?

सिंहपुर—हद्द हो रही है पृथ्वीनाथ!

ऊदा—(शान्त, पर मध्य-कठोर)—हद्द फिर क्यों? आप भूलते हैं, पृथ्वीनाथ के पास जमीन के टुकड़ों की क्या कमी—? स्नेह भी एक अद्भुत वस्तु है; जैतसिंह जी की चाकरी सोते-जागते हुए भी नहीं भूलती। हमारा हृदय उनके सेवाभाव के वश हो गया है। एक पैर पर खड़ा हो जैसे योगी ईश्वर का ध्यान धर रहा हो, यों जैतसिंहजी ने खरे महाराणा की सेवा की है। मेरा रोम रोम ऋणी है उनका! चेत्रसिंहजी इस रहस्य को समझ गये। मेरी तो इच्छी थी, अर्बुदाचल इन्हें भेंट देता; पर पिछली

ताजीम का अपमान मेरी कामना को कुण्ठित कर गया—

कांधल—(कुछ उत्तेजित हो) महाराणा! जैतसिंह जी को यों बख्शेजाना अन्य उमरावों का अपमान है। यहाँ बैठे हुए सामन्तों में किसकी तलवार जैतसिंह जी की असीसे कम उतरी है? किसने महाराज की सेवा में मुँह मोड़ा है, यहाँ बैठे हुओं में! और फिर, और फिर—

ऊदा—(कुछ कठोर) और फिर?

कांधल—(अधिक उग्र हो) यह रजपूती का अपमान भी है। क्या हुआ जो वे हुजूर के कृपाभागी हैं? सिंहासन कृपा-भागियों के कन्धों पर नहीं, रजपूतों की तलवारों पर स्थित है। राणाजी, आदेश फेर लीजिये—

ऊदा—कांधल जी?......

कांधल—महाराणा—

ऊदा—(संगत होता हुआ) रावरी हिम्मत, स्पष्ट वक्तता और उत्साह सराहना के योग्य हैं; परन्तु महाराणा अपने अडिग निश्चय को बदल नहीं सकते। हम विवश हैं; अपने वचन की हमें कीमत है, हम कृतघ्न नहीं हैं! संकल्प बदला नहीं जाता—

चैत्रसिंह—(सिर नीचा, पर घृणा के साथ) क्यों बदलेंगे—कैसे बदलेंगे?

ऊदा—(चौंक कर) ठीक है, चैत्रसिंह जी! राजा की इच्छा ईश्वर का संकल्प है। दीवान जी, अब कांधल जी, चैत्रसिंह जी, सिंहपुर, नागोर, सादड़ी आदि के पट्टे घोषित कीजिये-

काँधल—(सहसा जैसे) क्षमा हो महाराणा, भगवान् रुद्र की साक्षी ! काँधल तीन भुवन का राज अब न लेगा ! राणा न्याय कीजिये, काँधल भरी सभा में न्याय के लिए दुहाई देता है प्रार्थना करता है, गिड़-गिड़ाता है ! उस जैतसिंह को, जिसने व्यभिचार, अनाचार, अत्याचार आदि पापों का मेला लगा रखा है, जिसे न बोलने की तमीज़ है, न जीने की, जिसने मेवाड़ के सिंहासन और तलवार को नहीं पोपा—उसे प्रायः एक चौथाई मेवाड़ क्यों दे दिया जाय—

क्षेमकर्ण—मेदपाट के धणी की मरजी—

काँधल—(सरोप उसे देख) मेदपाट के धणी की मरजी ? *काँधल अराजकता की आज्ञा मान नहीं सकता । काँधल न्याय* की रक्षा के लिए हमेशा जान लिये-लिये घूमा है, भगवान् रुद्र की साक्षी ! रजपूती के गौरव के लिए उसका यह धर्म-दृढ़ मस्तक सर्वदा कट जाने के लिए तैय्यार रहा है ! मैं भरी सभा में कहता हूँ, अर्बुदाचल महाराज्य में आग लगादेगा—

ऊदा—(स्थिरता पूर्वक) काँधल जी, यह सभा-भवन नहीं है। दरबार है। होगा। मुझे अच्छी तरह पता है, क्या क्या है। दीवान जी, किसका है पहला पट्टा ? क्षेत्रसिंह जी का न ? श्रीमानो ! सबको भली प्रकार ज्ञात है कि क्षेत्रसिंहजी महाराज्य के कितने बड़े हितेच्छु हैं। मेरे कितने वफ़ादार ! मैं उन्हें पाँच लाख की जागीर भेंट देता हूँ, इस मंगल अवसर पर ! इस समय ही अगर मैं आँखों को सराह न सका, तब फिर कब सराहूँगा।

क्षेत्रसिंह—(काटो तो खून नहीं यों किंकर्त्तव्य विमूढ़)—महाराणा?

ऊदा—(हँसकर)—ठीक ही तो है; पाँच लाख बहुत कम है; पर धीरज के फल मीठे होते हैं, क्षेत्रसिंहजी! मैं बहुत शीघ्र ही अन्य प्रान्तों के विजयार्थ यात्रा करूँगा; काँधल उस दिग्विजय यज्ञ की महावाहिनी के महासेनापति होंगे। (हँसकर), उस समय मैं एक हराभरा रमणीय उर्वर प्रान्त और भेंट कर दूँ, तब तो—हाँ, दूसरा किसका है? क्षेमकर्णजी का? बहुत अच्छा, शुभ! उनकी श्रेष्ठ अप्रश्न राजभक्ति दो लाख की जागीर से अधिक क़ीमती है; पर इससे क्या?

क्षेमकर्ण—(झुक, कृत-कृत्य)—खमा, मेदपाटेश्वर को। चाकर कृतार्थ हुआ।

ऊदा—हाँ, जल्दी करो। मैं सुस्ताना चाहता हूँ; दो-दो लाख की जागीर के पट्टे सलूंबर, सिंहपुर, नागोर, बम्बावदा...हाँ, ठीक है। अच्छा, मेरी मोहर के लिए पीछे ले आना। उस समय और भी बता दूँगा। रमाशंकर, दरबार मंगल—

विमलदान—खमा पृथ्वीनाथ! कवि महेश की विधवा माँ ने हुजूर के चरणों में अञ्चल बिछाया है।

पुरोहित—और अन्नदाता, पण्डित भवानीशंकर की पत्नी हाथ जोड़कर प्रार्थना—

काँधल—(बीच ही में) महाराणा, क्या मैं फिर चरणों में प्रार्थना करूँ, इन निरपराध ब्राह्मणों को—

ऊदा—(उठने को उद्यत) मेरा और कई एक सरदार सामन्तों

का (उठकर) पक्का विश्वास है कि (सब उठ खड़े होते हैं) उन मूर्खों के प्रस्ताव ने देवता-स्वरूप राजर्षि को मरणासन्न आघात पहुँचाया और उस घोर जड़ता के फल स्वरूप—ओह! उसे याद कर मेरी छाती मानो काँप उठेगी! मैं उन्हें मुक्त नहीं कर सकता काँधलजी! भावी महा-सेनापति का यह आग्रह अब दुराग्रह होता जा रहा है—

काँधल—पर महाराणा, उन्हें क्या पता था कि ऐसा दुःखद काण्ड हो जायगा? वे तो अपने अधिकारों का उपभोग—

ऊंदा—(एक सीढ़ी नीचे उतरता हुआ)—प्रजा को दिये गये अधिकार दूध पिलाये हुए सर्प हैं, जो प्रजा की आस्तिन के नीचे छिपे रहते हैं! पितृदेव की नस-नस में वह विष सन गया, समझते हो? (सओज) महाराणा अर्बुदाचल देने-न-देने के विषय में दुबारा मंत्रणा कर सकेंगे; पर इन उच्छृङ्खल नालायक मूर्खों को छोड़ा नहीं जा सकता। पुरोहित—

काँधल—(कुछ तनकर)—राणाजी, उन निरपराधों की हाय न लीजिये—

ऊंदा—(रुक)—निरपराध? उन्होंने मेरे बाप का...खून... और काँधल, मुझे तंग न करो!...(एक और सीढ़ी उतरना)

रायमल—राणाजी, शान्त चित्त से इनकी प्रार्थना सुन लीजिये और कृपा कर हुजूर, कुछ नहीं तो अपनी आराम की खुशी ही में उन गरीबों को रिहा कीजिये। भुगतना था, उतना भुगत चुके। आप सब श्रीमान क्या कहते हैं?

कतिपय—सच फ़रमाना हो रहा है, रावरे का !

ऊदा—(एक क्षण सब को देख)—अच्छा, अपने स्वास्थ्य-लाभ की खुशी में सभी क़ैदी मुक्त हों। दीवानजी, आदेश शीघ्र फिर जाए।

काँधल—महाराणा !

ऊदा—(कंठा से घूट कर)—और फिर क्या ?

काँधल—यह दया-दान हो रहा है, या न्याय ?

ऊदा—(एक और सीढ़ी उतरता हुआ)—जो समझा जाए।

काँधल—(मारे क्रोध के)—न्याय करने का यह अच्छा तरीक़ा है ! कल्पित, असम्बद्ध और तथ्यहीन अपराध पर क़ैद कर, महीनों कारागार में सड़ा अब जैसे मुर्दार भूखे कुत्तों के आगे रूखे टुकड़े डाले जा रहे हों ! न्याय के नाम पर यह अधर्म और नीचता का प्रदर्शन है—

क्षेमकर्ण और दो तीन—सावधान !

काँधल—(अधिक) इसे मैं मनुष्य और मनुष्यत्व का अपमान समझता हूँ ! राणा, मैं इन लोगों के समान जागीर के टुकड़ों से दब जाने वाला नहीं हूँ ! (घूमकर) सावधान ? सावधान आप ! काँधल मौत के साथ खेला करता है ! मैं धर्म और न्याय की रक्षा चाहता हूँ, दया नहीं—कृपा नहीं ! मैं जीवन की भिक्षा नहीं माँग रहा; मैं जीवन की अनीति के विरुद्ध हूँ ! भरे दरबार में मैं पूछता हूँ, क्या वे प्रस्तावक अपराधी थे ? बोलो—भगवान् रुद्र की साक्षी से बोलो—?

गोपालसिंह—मेरे जीव, कुछ समझ में भी तो आये ! प्रस्ताव से कैसे आत्महत्या होती है ? कुछ समझ में भी तो आये !

ऊदा—दरबार बरखास्त हो, मंगल—

काँधल—(कुछ आगे बढ़)—हो नहीं सकता ! मैं मेवाड़ के न्यायासन के आगे मेवाड़-माता की लाज रखता हूँ ! भगवान् एकलिंग की आज्ञा है उसे जो एक बाल भर भी हिले अपनी जगह से ! धर्म की आँखों से खून की धारायें फूट रही हैं। राणाजी ! यों एक स्वेच्छाचारी नृशंस की तरह चले न जाइये ; न्याय कीजिए, एकलिंगावतार ?......

ऊदा—(बड़ी कठिनता से संयत हो)—काँधल ! काँधल ! अपने को इतना उद्वेगित मत करो ! लगाम रखो अपनी वाणी पर ! मैंने उन्हें मुक्ति दे दी—और क्या चाहते हैं आप ? क्या कारागार पृथा नष्ट कर दूँ ?

काँधल—स्वीकार कीजिये, उन्हें गिरफ्तार करना न्याय के नाम पर अन्याय था। बस मैं संतुष्ट हूँ।

ऊदा—(कठोरता पूर्वक)—आपके संतोष के लिए सब कुछ कह दूँ, क्यों ? यह न होगा। पुरोहित बीड़े बाँटो —

[पुरोहित बीड़ों के साथ आगे बढ़ता है]

काँधल—(सहसा तलवार निकाल)—आज प्रजा की स्वाधीनता संकट में है ; प्रजा की आत्मा अनधिकृत और दीन है ! न्याय के नाम पर अभिसन्धियाँ पोषी जा रही हैं ! काँधल उसे

सह नहीं सकता ! वह भरे दरबार में बीड़ा नामंजूर करता है। मैं अन्यायी को राजा नहीं मानता। धर्म और न्याय तथा सदा स्वाधीन आर्य के गौरव के मान के लिए मैं आज से विद्रोही हूँ— मेरे साथ मेरा पहाड़ी स्वदेश भी बाग़ी है—(त्वरा से प्रस्थान)

रायमल—(आगे धँस)—अरे, अरे काँध...ल...

ऊदा—(उन्हें रोक) एकलिंग नाथ की दया से आज का दरबार मंगल हुआ। महाराणा सब सामन्तों, सरदारों, इष्ट-मित्रों के अनुग्रह के सदा ऋणी हैं ! सब के बीड़े मंगल हों—

पुरोहित, दीवान }—खम्माँ पृथ्वीनाथ ! खम्मा मेदपाटेश्वर को !

ड्योढ़िया—बावड़ो ! बावड़ो !!......

ऊदा—(जाते-जाते)—क्षेमकर्णजी ? आपको कुछ कहना था न ? मुझसे बैठक में मिल सकते हैं। रायमलजी, काँधल को समझा देना। क्षेत्र, तुम संतुष्ट न हुए ; पर धीरज रखो—हो जाओगे। अच्छा, जय महादेव—

(शान के साथ गंभीर गति में प्रस्थान)

बख्शावदा—ग़ज़ब किया काँधल जी ने !

नागोर—बिल्कुल निडर ! आदमी है या आफ़त ?

क्षेमकर्ण—उल्लूपन्थी में सेनापतित्व धरा रह गया ! (जाता है)

रायमल—चलो, क्षेत्र ! नहीं ? क्या सोच रहे हो ? अच्छा, तब चलूँगा। काँधल कभी-कभी बचपन कर बैठते हैं ! जय महादेव ! (प्रस्थान)

गिरिपुर—(चैत्रसिंह से)—महाराणा भी एक ही जीव हैं। काँधल की उछल-कूद से एक भी शिकन न आई उनके मुँह पर! वाह भाई, वाह! तो दीवान जी, परमाने की जल्दी हो जाए, हाँ? जय महादेव! (जाता है)।

गोपालसिंह—काँधल को ज़रूर-ज़रूर किसी ने मंत्र लिया है! मेरे जीव, कुछ समझ में भी तो आवे? बाग़ी बन बैठा। अब मृत्युदण्ड पाएगा, मेरे जीव—सौगन्द लेता हूँ जो अब से ऐसों के पास फटकूँ भी तो! वह मर्द नहीं जो ऐसों के मुँह लगे। और अभीतक धड़कन बन्द नहीं हुई, मेरे जीव—(लटके हुए मुँह प्रस्थान)

सिंहपुर—(चैत्रसिंह से)—राणा एक ही घाघ है; समझता है! हो गये न चुप। अच्छा चलूँ। अब तो जेतसिंह को दूसरा अर्बुदाचल भी मिल जाए, तो भी आप चुप ही रहेंगे। शेखी थी और क्या? हो गये न गाय, टुकड़ों से? अब क्यों बोलेंगे आप? टेढ़ी भौं के पाँच लाख, फड़कते हुए होंठ का भविष्य में दस लाख और एक हरा भरा प्रान्त थिरकती कलई का, क्यों? भई मर्द होते हैं, वे ही कामिनी और कांचन से नहीं जीते जाते। वाहरे मेरे शेर काँधल! अच्छा, चलूँगा, जय एकलिंग, श्रीमान्! (जाने को उद्यत होता है।)

चैत्रसिंह—ठहरो। आपके व्यंग ने रूमते हुए घाव को ठोकर मारकर भन्ना दिया; व्यंग की यह दुर्भाषा मेरे विवेक को जगा गई। पाँच लाख की ताज़ीम मानो मेरे अन्तर का नाग-

पाश बन गई थी। धिक्कार है मुझे! पाँच लाख ही देते बना? अर्बुदाचल देता, पर पहला पट्टा फाड़ जो डाला—सब समझता हूँ! अच्छा, श्रीमान् से फिर बातें होंगी—

सिंहपुर—अवश्य, अवश्य, क्यों नहीं? उँह्! बातें फिर होंगी! (सरोष प्रस्थान)

चेत्र—पाँच लाख की बपौती जागीर! ओह, कैसा प्रलोभन दिया यह तू ने ऊदा? मुझे अच्छा पछाड़ा था; पर भला हो इसका जो एक ठोकर मारकर मुझे उठने पर विवश कर गया। मेरी शंका पाताल में जड़ पकड़ रही है! जैतसिंह को एक अर्बुदाचल देने के लिए तूने पंद्रह-बीस लाख की जागीर आनन-फानन में लुटा दी! क्यों—मैं पूछता हूँ, क्यों? इसका उत्तर जैतसिंह से ही माँगूँगा; लौट आने दो उसे अपने इलाक़े से। आज या कल, अवश्य! धर दबाऊँगा, जवाब दे! उत्तर, कुत्ते! यह तो निश्चय है, दोनों एक काले रहस्य को छिपाना चाह रहे हैं। समझ रहे हैं—धन के सुनहले पर्दे अन्धकार को छिपा रखेंगे! देखा, कैसा चौंक रहा था? कैसा! पर शाबाश ऊदा! रंग है तुझे—

[तेज़ी से प्रस्थान]

—

दूसरा दृश्य

[ऊदा के महल की तिवारी]

ऊदा—(ध्यान-लीन)—बादल, आँधी के बादल ! मैं सवेरे के धोखे में था ; यह तो अभी तक रात है। उसकी सघन काली छाती में वज्र छिपा है। कांधल ! ऊदा, पागल की तरह सोचने-विचारने का यह समय नहीं। तैयार हो जाओ, प्रभात के पहले ही अंधकारमयी आँधी चली आ रही है ! वीर की तरह वज्र का, छाती पर स्वागत करो। मेघों का यह तुमुल गर्जन शायद—शायद दूर हो जाय ; पर इसकी परवाह नहीं। जीवन के घने भूमते हुए युद्ध में मर्द बने रहो। यही धर्म है ; हाँ, यही पापियों का अपना धर्म है ; उनके जर्जर आत्मा का सन्देश, सन्तोष—यही !! मैं अन्त तक अड़ा रहूँगा ; अचल-ध्रुव ! तरंगो चूर-चूरकर डालो मुझे, मैं वहीं रहूँगा—कोई है ?

(द्वारपाल का प्रवेश)

द्वारपाल—आज्ञा, अन्नदाता !

ऊदा—देख तो, अभी तक सादड़ी राव न आये—

द्वारपाल—जो हुकुम पृथ्वीनाथ ! (जाता है)

ऊदा—(वैसे ही)—इस जैतसिंह के मारे मेरी अक्कल तंग है। किसे पता था, भोला-भाला वृद्ध यह सेवक इतना लालची, ख़ूँख़ार और निडर निकलेगा ? साधारण मनुष्य में यह असाधारण दानव छिपा बैठा था तब ? क्या करूँ ? हाथ से बाज़ी चली जा रही है क्या ? शायद—ऊदा, क्या ये सब झूठ हैं ? नहीं। मरदूद को इतना दिये जाना, उसका इतना स्पष्ट पक्षपात क्या हृदय के काठ में शंका का घुन न लगा जायगा ? अवश्य। क्या मैं नहीं जानता, सबकी पुतलियों में एक प्रश्न अंकित है; होठों में एक आश्चर्य कुनमुना रहा है—अँगुली में एक भयानक इशारा नाच रहा है ! लेकिन, यह ऐसे विधुर रुदन का समय नहीं है, ऊदा ! काँधल, जैतसिंह—ये ही दो उद्गम हैं जहाँ से तुम्हारे जीवन-गगन में विकराल आँधी उठी आ रही है; यहीं से बड़वाग्नि लप-लपाती हुई बही आ रही है—गंगा ! (गंगा का हाथ बाँधे मूक प्रवेश) कुँवर जग रहा है क्या ? कैसी तबियत है उसकी ? बुख़ार कम हुआ या नहीं ? अच्छा जा—पीतम से कह देना, मैं आज अन्तःपुर में न आ सकूँगा। कहना ज़रूरी काम ने मुझे रोक लिया है, समझी न ? (गंगा सिर झुकाकर चली जाती है) क्या समस्त शहर में, इस सारे जगत् में कोई भी एक

वैसी व्यक्ति नहीं है, जो इन दोनों को मेरे मार्ग से चुपके-चुपके हटा दे ? कोई भी नहीं ? हुँ ? यदि मैं आज विष भरा भुजंग होता तो इस जैतसिंह का हृदय डस लेता—मारुति होता तो मारे झपाटों के काँधल की गरदन तोड़ देता—पर चुप ! अपना वचन। अपना वचन याद करो, उदय ! ओह, मर जा, बरबाद हो जा। सिंहासन चला जाय तो बला से ; पर पीतम का मन—(क्लान्त, खंभे से कुहनी टेक खड़ा हो जाता है) सिंहासन ? (पुनः घूमता हुआ) उतने महँगे, जलते हुए रक्त के समुद्र को मथ प्राप्त किया सिंहासन ! मैं मर सकता हूँ, पर एक नीच नालायक पिशाच के मारे उसे यों सहज ही खो दूँ ? (हाथ मलकर) विधना ! जीवन की कसौटियाँ कैसी विषम, कैसी जादूगरी हैं ? खूब खोया है तुमने ऊदा ! खूब जले हो, जल-जलकर यह हृदय राख हो गया और राख प्रलय की आग में भभक रही है। क्या यह सब इसी दिन के लिए ? जैतसिंह ! तुम अपनी मौत क्यों नहीं मर जाते, क्यों नहीं ? मैं तो राक्षस था, पर तुम तो अभी तक हो ! तुम से अन्तिम सौदा तय करना ही पड़ेगा—

[द्वारपाल का प्रवेश]

द्वार—पृथ्वीनाथ ! सादड़ीराव चरणों में दुआ भेज रहे हैं।

ऊदा—शीघ्र लिवा ला। (द्वारपाल का प्रस्थान) बहुत से मनुष्य साधन भर होते हैं। चाहे फिर वह अन्धकार की शक्ति हों वा प्रकाश की, उसको व्यक्त करने के लिए साधन चाहिए। ऐसे ही व्यक्ति हैं, जो अपने बलिदान से साधकों का मार्ग तैयार

करते हैं। क्या हुआ जो अच्छी खासी क़ीमत देनी पड़े! जैसा कार्य, वैसा साधन—आँधी के लिए जड़ पहाड़ चाहिए—

[क्षेमकर्ण का प्रवेश]

क्षेमकर्ण—(अभिवादन कर) घणी खम्मा, मेवाड़नाथ को!

ऊदा—स्वागत! क्षमा कीजियेगा, यदि आसन न दे सकूं, क्षेमकर्णजी! अब बैठकर बातें करने का समय कहाँ है, राव! आकाश घुमड़ रहा है।

क्षेमकर्ण—(कुछ हँस, फिर गम्भीर) मुझे हुजूर के सोच का कारण ज्ञात है।

ऊदा—(स्थिर, पर जाँचता हुआ) आप तो मेरी हिम्मत, मेरा दाँयाँ हाथ हैं, राव!

क्षेमकर्ण—चाकर पर यह दया सदा बनी रहे—

ऊदा—हाँ, मैं आपसे एक बात कहना चाहता था। आज के दरबार का हाल तो—

क्षेमकर्ण—(बीच ही में) मैं समझ गया, राई-रत्ती समझ गया। अन्नदाता काँधल और क्षेत्रसिंह जी के कारण कुछ चिन्तित हैं। मेरे एक गुप्त आँख भी है, हुजूर! उससे सब देख लेता हूँ।

ऊदा—(कुछ घूर) आपका अनुमान बहुत कुछ ठीक है। क्या आप काँधल से टक्कर ले सकेंगे?

क्षेमकर्ण—मैं? काँधल के विरुद्ध, मैं?

ऊदा—(सओज) मैं ऐसा सेनापति चाहता हूँ, ऐसा—जिसके

शेर-सा दिल हो। जिसकी छाती एक हज़ार तीरों से चलनी हो जाने पर भी आह न करे! मैं जानता हूँ आप वैसे ही वनराज हैं।

क्षेमकर्ण—मैं? मैं—

ऊदा—(उसके पास जा, घूर कर)—हाँ, आप। क्या मैं आप की कठोर शेरदिली भूल गया हूँ? डाकुओं और चोरों को आप किस तरह दण्ड देते हैं, क्या मैं यह नहीं जानता? शिकार में आपकी बर्छी की चमक, आपकी मुट्ठी की ताक़त किससे छिपी है? बाग़ियों की आँतें आपकी तलवार का मनोरंजन बन जाती हैं, मुझे मालूम है—

क्षेमकर्ण—ठीक, ठीक ही फ़रमा रहे हैं हुज़ूर! मुझे शराब पिला दीजिए, फिर देखिए मैं गुण्डों को किस भाँति मारता हूँ! चोर, बाग़ी, डाकू, शैतान को देखते ही मेरी मुट्ठियाँ भींस उठती हैं! घायल मरणीये शेर की खाल फाड़ फेंकने के लिए मेरे दाँत किटक उठते हैं, मैं कहता हूँ—

ऊदा—(सव्यंग मुलक)—बहुत ठीक, मैं तब आप ही को अपना सेनापति बनाता हूँ। शृंगमाल के बच्चे-बच्चे की हड्डियाँ बजा देना होगा! हमारा सिंहासन, पुरखों के रक्त में रँगा, उन की छातीपर रोपित यह सिंहासन बाग़ियों की उछल-कूद से हिल न जाय यही देखना है हमें, समझते हैं न, राव?

क्षेमकर्ण—अच्छी तरह! इसी घड़ी से मेरा मस्तिष्क योजना की बारीकियों में लग गया है। मैं कहता हूँ, अन्नदाता! ख़ातिर-जमा रखें, शत्रुओं को कुत्तों की भाँति न मारूँ तो मैं क्षेमनृपति

नहीं—(मूँछों को छू)—इसी तलवार से टूक-टूक कर दूँगा—

ऊदा—बस यही चाहिए! आपने नहीं भाँपा, प्रजा-प्रजा चिल्लाकर काँधल शायद स्वयं महाराणा होना चाहता है। हुँ? यह केवल एक व्यक्ति का विद्रोह नहीं दिखता, क्यों?

क्षेमकर्ण—मुझे भी भ्रम तो हुआ था; हुजूर निश्चिन्त रहें। मैं ऐसे दसों काँधलों को पीस दूँगा!

ऊदा—अवश्य पीस दीजिये; सोचिये, यदि वह महाराणा हो गया, तो आप लोगों का अस्तित्व कहां रहेगा? काँधल वह उल्का-पात है जो आप लोगों को समूल जला डालेगा, मुझसे लो यह सब! उसकी वाणी में कोई भावी युग बोल रहा है; हमें उसे सब ओर से मुर्दा बना देना होगा। मैं तो आप लोगों का सेवक हूँ; आप लोगों के द्वारा स्थापित इस सेज का रक्षक भर हूँ—एकलिंग का दीवान! मेरा राज्य नहीं, यह आप ही लोगों का है; प्रजा से लेकर मैं आप लोगों को लुटा रहा हूँ। मित्र, काँधल आज महाराज पर घोर बवंडर है! मैं तो रानी और बच्चे को लेकर कहीं चला जाऊँगा; पर आप लोग उजड़ जायँगे! समझते हैं? मैंने भावि एक भीषण स्वप्न की भाँति देख लिया है—

क्षेमकर्ण—(सभीत, साश्चर्य)—इतना? मैंने तो यहाँ तक सोचा ही न था, राणाजी! कि ऐसा घनघोर संकट सिर पर झूम रहा है! ओह! और हम सब निश्चित सो रहे हैं?

ऊदा—(उसके कंधे को छू)—तो मैं आप सबको पुकार-पुकार कर जगा दे रहा हूँ। अपने साथियों, मित्रों, सहयोगियों और

महाराज के प्रत्येक शुभचिन्तकों को उसकी आँखें फाड़ कर यह संकट बतादो ; और वाग़ियों को पाते ही क़त्ल कर दो—राज-भक्तों को तैयार करो, समझे !

क्षेमकर्ण—मैं महाराज भर के राजभक्तों को हुज़ूर के चरणों का अनुगामी बना दूँगा। वाग़ी भी देखें, कितने बीस में सौ होता है—

ऊदा—बहुत ठीक ; अब श्रीमान पधार सकते हैं ; मैं कल तलवार भेज दूँगा।

क्षेमकर्ण—घणीखम्मा मेवाड़ के धणी को— (प्रस्थान।)

ऊदा—(निश्चिंतता की साँस लेकर) क्रान्ति की बाढ़ रोकने के लिए क्षेमकर्ण का यह मज़बूत शरीर अच्छा बाँध है। मैं जानता हूँ, यह व्यक्ति दया नहीं जानता ; मातृभूमि का प्रेम नहीं जानता; धर्म-नीति के प्रकाश में यह अन्धा उल्लू भर है। शराब और शराबीपन, दो ही इस जड़मति की विभूतियाँ हैं। ऐसे ही जड़-बख़्तर क्रांति की तलवारों के झटके झेल सकते हैं—ऐसे ही ! ऊदा, तुम्हारा क्या होने जा रहा है ?—

[जैतसिंह छातीपर हाथ बाँधे प्रकाश में आता है]

कौन ? जैतसिंह ?...इस समय यहाँ ?

जैतसिंह—(शान्त, पर बेधड़क)—अन्दर चलिये, राणा !

ऊदा—(बिना देखे, स्वध्यान में ही) ऊहुँ ; यहाँ घूमता रहना मैं अधिक पसन्द करता हूँ। तुम समझते हो, जीवन असीम

यात्रा है ; बढ़े जाओ, बढ़े जाओ—उसका अन्त ही नहीं ! हाँ, कहो, चोर की तरह इतनी रात गये आने का कारण ?

जैतसिंह—ऊदा, सोच विचार कर बोला करो। मैं सब समझता हूँ—

ऊदा—मुझे इसकी खुशी है, कि तुम सब समझते हो पर अन्दर आने के पूर्व तुम्हें ख़बर पहुँचवानी चाहिए थी ; तुम्हें पता होना चाहिए, तुम मेरे जागीरदार हो—

जैतसिंह—(सव्यंग)—ख़बर पहुँचवाता न, तो क्षेमकर्ण और तुम्हारी गुप-चुप कैसे सुन पाता, ऊदा ? तुमने उसे सेनापति क्यों बनाया ? क्या मैं मर गया था ?

ऊदा—(जैसे कानोंपर विश्वास न हुआ हो)—सेनापति ? तुमको, उँह—हँ-हँ-हँ !

जैतसिंह—क्यों ? हँसते क्यों हो ? मेवाड़ की सेना क्या जैतसिंह की नहीं है ?

ऊदा—(चौंककर)—तुम्हारी ?...

जैतसिंह—हाँ, महाराणा, मेरी। क्यों नहीं ? खून की धारा में दो चीजें बहती मिलीं ; एक सिंहासन और दूसरी तलवार ! सिंहासन तुमने लिया ; क्या तलवार पर मेरा अधिकार नहीं है, ऊदा ?

ऊदा—(कुछ विचलित)—जैतसिंह, जैतसिंह !!

जैतसिंह—मैं कुछ नहीं समझता—समझना चाहता। । क्षेमकर्ण को भेजी जानेवाली तलवार कल मेरे यहाँ भेज देना राणा !

ऊदा—यह हो नहीं सकता—हो नहीं सकता !.

जैतसिंह—(कुछ मुस्करा) नहीं हो सकता ? हो सकता है ; तुम स्वयं यह करोगे—

ऊदा—(दाँत पीसकर)—कदापि नहीं ।

जैतसिंह—(पास आकर आँखों से आँखें मिला)—कुम्भा की छाती पर कटार ने गरम-गरम रक्त से सिंहासन का अधिकार लिखा है, यह भूल न जाइए महाराणा । हँ-हँ, यों क्या भूल जाते हो बातों को ऊदा ? वह छाती इन हाथों पर सोई थी, भूल गये ? तुम्हारी कटार की नोंक उस कोमल कलेजे के आर पार होकर इस भाग्य-रेखा में गड़ गई है, देखा तुमने ? ह-ह-ह-ह, आज मैं जीवन को इन्द्रजाल की जादूवई हड्डी समझता हूँ—यों क्या घूर रहे हो मेरी ओर ?

ऊदा—क्या किसी पिशाच ने तुम में प्रवेश कर लिया है, जैतसिंह ?...

जैतसिंह—हाँ, (भयानक अट्टहास-चेष्टा)—जो कुछ समझो मेदपाट का सच्चा मालिक मैं हूँ—मैं, जैतसिंह, राजराजेश्वर ! और तुम ? तुम मेरे राज्य के गुलाम रखवाले भर हो । राज्य की मेरी ज़मींदारी के काश्तकार, समझा तुमने ? मेरी तलवार मुझे भेज दो, बस ! मैं तुम्हें यह हुकुम देता हूँ ; मेरी तलवार !...

ऊदा—(बीच ही में)—मन में आता है, तुम्हारी गरदन काट डालूँ ; पर क्या करूँ, बँधा हूँ ।

जैतसिंह—जैतसिंह मौत से नहीं डरता । जब वह मारने से

न डरा, तब मरने से डरेगा क्यों ? हुँ ? (दाँत पीस, मानो नोच लेगा) पिशाच, राक्षस ! उस दिन तूने मेरी गरदन पकड़ ली, चूस गया मेरा अमृत और मुझे उस देवता के आग भरे लहू से रँग दिया—रँग दिया ! कि मैं भी पिशाच बन जाऊँ, (कुछ आगे बढ़ता है, ऊदा पीछे हटता है) कि मैं जिन बन जाऊँ (वैसे ही) कि मैं वैताल—

ऊदा—(ठिठक)—जैतसिंह !...

जैतसिंह—(विक्षिप्त और भयानक)—चुप ! जैतसिंह मर गया। यह वह रुण्ड है, जिसमें अब न हृदय रहा, न भय, न डर, न प्रेम, न जीवन ! प्रति रात अग्नि ज्वालाओं को लिये एक अंधी नृशंस राक्षसी आती और मेरा रोम-रोम जला जाती है ! तलवार भेज देना ; समझा, मेरी तलवार भेज देना कल, नहीं तो परसों सुबह मेवाड़ का बच्चा-बच्चा जान जाएगा कि ऊदा, मेवाड़ का महाराणा, मेदपाट का यह एकलिंगावतार बाप का हत्यारा ख़ूनी है ; नर-पिशाच है ! समझा तुमने ! जैतसिंह मरने से नहीं डरता अब। (दम लेकर) काँधल की तलवार के झटके मुझे तेरा नाश करने से न डरा जायेंगे—चुप रह, डाकू। मुझे बोल लेने दे ! मैं कहता हूँ, अपना भला चाहता हो तो अपने इस काल को सदा प्रसन्न रखे जा; सदा अपने इस यमदूत को, इस भैरव पूत को मदिरा, मातंगिनी और मुद्रा, ये तीन म-कार देता चला जा—

ऊदा—जैतसिंह, जैतसिंह ! चुप रहो—चुप !

जैतसिंह—(सहसा सहज ही हँसकर)—क्यों ? आगये न रास्ते पर, हुजूर ! अच्छा चलता हूँ, अब अधिक तंग नहीं करना चाहता। अपने अनत पथ पर मज़े में घूमा करो, अब ! (प्रस्थान)

(महल के मन्दिर में शयन की आरती होती है)

ऊदा—(थोड़ी देर घूमकर)—प्रभात क्षितिज पर झाँक रहा है शान्ति और आनंद का मधुर सपना लिये और आकाश एकाकार है। क्या यह असमय का मेघ-जाल है ? (आहभर कर) कौन जानता है, सूर्य प्रकाशित होगा ही ! (सिर झुकाये हुए) इस रात के साथ तुम भी जी रहे हो, उदय ! यह धीरे-धीरे सघन होती जाती निशा प्रभात में परिवर्तित होगी—मंगल कलरवों में आनंद मयी हो ; पर क्या तुम प्रभात का दर्शन कर सकोगे ? कौन जाने, काले जीवन की यह मूर्च्छना-मूढ़ रात्रि प्रकाश पावेगी ही—? पर ऊदा, उसकी चिन्ता क्यों, परवाह क्यों ? (चुपचाप घूमता है ; फिर रुक कर उत्तेजित) उफ़ ! कैसी विडम्बना है ? इससे तो अच्छा था मैं वचन ही न देता ; पर मैं क्या जानता था ? ओह, कितना अच्छा था, मैं पीतम को वचन न देता, कितना अच्छा था—! (हथेली मलता है) इस जघन्य नीच के तमाचे खाते रहना, उसकी ललकारों को सुन मूक काँपते रहना ! ऊदा, तुम्हारे जीवन की यह विवशता ? मर जा—नहीं, मैं राजा जन्मा हूँ, शाशन के लिये पैदा हुआ हूँ मैं राज करूँगा।

जैतसिंह—(सहसा सहज ही हँसकर)—क्यों ? आगये न रास्ते पर, हुजूर ! अच्छा चलता हूँ, अब अधिक तंग नहीं करना चाहता। अपने अनत पथ पर मजे में घूमा करो, अब ! (प्रस्थान)

(महल के मन्दिर में शयन की आरती होती है)

ऊदा—(थोड़ी देर घूमकर)—प्रभात क्षितिज पर झाँक रहा है शान्ति और आनंद का मधुर सपना लिये और आकाश एकाकार है। क्या यह असमय का मेघ-जाल है ? (आहभर कर) कौन जानता है, सूर्य प्रकाशित होगा ही ! (सिर झुकाये हुए) इस रात के साथ तुम भी जी रहे हो, उदय ! यह धीरे-धीरे सघन होती जाती निशा प्रभात में परिवर्तित होगी—मंगल कलरवों में आनंद मयी हो ; पर क्या तुम प्रभात का दर्शन कर सकोगे ? कौन जाने, काले जीवन की यह मूर्च्छना-मूढ़ रात्रि प्रकाश पावेगी ही—? पर ऊदा, उसकी चिन्ता क्यों, परवाह क्यों ? (चुपचाप घूमता है ; फिर रुक कर उत्तेजित) उफ़ ! कैसी विड़म्बना है ? इससे तो अच्छा था मैं वचन ही न देता ; पर मैं क्या जानता था ? ओह, कितना अच्छा था, मैं पीतम को वचन न देता, कितना अच्छा था—! (हथेली मलता है) इस जघन्य नीच के तमाचे खाते रहना, उसकी ललकारों को सुन मूक काँपते रहना ! ऊदा, तुम्हारे जीवन की यह विवशता ? मर जा—नहीं, मैं राजा जन्मा हूँ, शाशन के लिये पैदा हुआ हूँ मैं राज करूँगा।

यदि मैं अपने पिता को राज के लिये मार सका, तो उसकी रक्षा के लिये इसे क्यों नहीं ! क्यों नहीं, ऊदा ?...कोई है ?

[महाराणी का प्रवेश ।]

पीतम—आ पहुँची, स्वामि !

ऊदा—(घूमकर)—तुम ? अच्छा हुआ, जो तुम आ पहूँची ।

पीतम—हाँ, क्यों ? सोचा, चलो पकड़ लाऊँ । दिनरात काम, काम, काम ! इतना फिर कौन काम रहता है सदा ? क्या महाराणा को काम करनेवालों की कमी पड़ गई ? या फिर कुछ तबियत ख़राब हो गई है ?

ऊदा—हाँ, हाँ—मेरा जी अच्छा नहीं है । (एक चक्कर काट) क्या तुम उस अकेले तारे को देखती हो ?

पीतम—(पास आ, हाथ पकड़, आँखों में देखती हुई)—फिर वही ? कितना दफा कहा, गई-गुजरी बातों को भूल जाओ ; मत सोचो बीती पर । मैंने कह न दिया, उस दिन से तुम निर्मल हो, पवित्र हो, शुद्ध हो ; पर माने कौन ? अब यों जलते रहना—चलिये, अन्दर ! मेरे अंक में सिर रखकर सो जाओ । मैं प्रार्थना करूँगी ; तुम सुनते-सुनते सो जाना, अच्छा ?

ऊदा—इन आँखों में नींद अब कहाँ, राणी ?...

पीतम—फिर क्या हुआ ?

ऊदा—राणी, मैं पहाड़ की तरह अचल रहना चाहता हूँ, पर...

पीतम—(व्यग्र)—पर क्या ?

ऊदा—यही कि वज्र मुझे टुकड़े-टुकड़े कर डालना चाहता है...

पीतम—समझी। सावधान, महाराणा! बाल भर भी डिगने का यह समय नहीं है। (आकाश में देख) वज्र को गिरने दो—टुकड़ा-टुकड़ा हो जाओ ; पर अपनी अचलता मत छोड़ो।

ऊदा—जीवन और मरण का प्रश्न है! जैतसिंह सेनापति बनकर सिंहासन हथियाना चाहता है ; उत्तेजित प्रजा, शंकित षड्यंत्र-बँधे उमराव, बागी काँधल! तुम नहीं जानती, राणी! मैं मृत्यु, सर्वनाश और प्रलय के भूतों से घिर गया हूँ !!......

पीतम—मैं मर जाना पसन्द करूँगी, सती हो जाऊँगी ; पर राणा, यह समझ लो, मैं तुम्हें वचन के विपरीत कुछ न करने दूँगी।

ऊदा—(असहाय)—राणी, पीतम ?

पीतम—(सकष्ट हँस)—मैं स्पष्ट कह दूँ, राणा ? हमें राज्य को भोगने का वहीं तक अधिकार है, जब तक सब कुछ प्रगट नहीं हो जाता। समझते हैं ? यह भी इसलिए कि यह सिंहासन यों ही आपका था ; नहीं तो—

ऊदा—(बीच ही में)—यह बात तुमने उस समय तो न कही।

राणी—तो अब कह दी। चिन्ता क्यों करते हैं! कुँवर, मैं और आप पहने कपड़े निकल चलेंगे। भाग्य बेंच नहीं खाया है हमने! इस राज्य में अब सुख-शान्ति भी कहाँ है, राणा! जंजाल से बचे, निशि-दिन एक चिता में जलते रहने से जान बची!

किसी जंगल में नदी के किनारे कुटिया बनाकर शेष जीवन काट देंगे। छोड़ो यह पंचात, होगा वह सामने आएगा।

ऊदा—पर वे मुझे मार डालेंगे।

राणी—तो मैं सानन्द आपसे परलोक में आ मिलूँगी; कुँवर अपने भाग पर जी जायगा। सच बात तो यह है राणा, पाप ने हमें मँझधार में डाल दिया है—जिधर वह ले जाय।

ऊदा—पीतम! पीतम!! मैं यों मर नहीं सकता। तुम तो देवी हो, देवी! पर मैं—मैं, ओह राणी, मैंने क्या नहीं दिया इस सिंहासन के लिए?......

राणी—अभी क्या दिया है? अभी तो और देना पड़ेगा। यह सब कुछ नहीं, अन्दर चलिये और चुपचाप सोइये—(हाथ पकड़कर खींचती है)—चलिये!

ऊदा—(चलने को उद्यत)—चारों ओर आँधी उठ रही है और तुम मुझे सो जाने को कहती हो! पर मैं तो मौत की अबाध होती जाती चेतना में जगना, अधिक तीव्रता पूर्वक जगना चाह रहा हूँ! कैसे यह तूफ़ान, यह निशीथ—यह निर्भय झंझावात शम जाये? मुझे इस असीम अंधकार में ही जाग्रत हो जाने दो, राणी! इस रुदन भरे तमपूर्ण मृत्यु के साथ मुझे, इस अंधकार में भी मुझे लड़ने दो—मैं यम से भी लड़ूँगा, क्यों नहीं—

राणी—मैं तुम्हें न लड़ने दूँगी। यह मोह छोड़िए; अब भी मोह का जाला न टूटा आपसे? तो मैं तोड़ूँगी। धर्म की इस

जीवन-यात्रा में मैं आपको कैसे खोदूँ ? यह नहीं हो सकता।

ऊदा—तुम वसन्त ही वसन्त हो ; मैं शिशिर ही शिशिर। तुम जीवन ही जीवन और मैं नाश ही नाश; ह, ह, ह ! हमारा तुम्हारा साथ कैसा ? (सिर धुन कर) नहीं, यह नहीं, राणी !...

राणी—(अन्दर ठकेलती हुई)—अन्दर चलिए ; मरना ही चाहते हो, तो वीर की तरह, मनुष्य की तरह मरो।

ऊदा—(अन्दर चलता हुआ)—मैं योद्धा हूँ, अन्त कर युद्ध करता रहूँगा—मैं सोऊँ कैसे ?

(दोनों नेपथ्य से अन्दर जाते हैं; पर्दा बदलता है।)

दृश्य तीसरा (दूसरे दृश्य का उत्तरार्द्ध)

[ऊदा का शयनागार]

राणी—(प्रवेश कर)—जैसे अग्नि में इंधन, पानी में वड़-वाग्नि—समझी ? होगा ; यदि यह राज चला ही जाय, तो बला से, पर अपने वचन पर रहो राणा ! यों मैं तुम्हें पुनः सम्पूर्ण पा लूँगी (बिठाकर) शान्त हूजिये। राज्य, ऐश्वर्य सब कुछ आत्मा से बढ़कर नहीं। समझ लेना, जब तक भाग्य में था, तब तक राजा रहे। यों सन्तोष क्यों नहीं करते ?

ऊदा—राणी, (आह भरकर) राणी—(बैठता है)

राणी—(पानी लाकर)—किसकी हिम्मत है, जो तुम्हारा बाल भी बाँका करे ? मैं मेवाड़ के चरणों में गिरकर तुम्हें माँग लूँगी।

ऊदा—राणी, तुम नहीं जानतीं, मैं कहता हूँ, तुम नहीं

जानतीं—(सिर धुन, असहाय-सा स-तार अन्धकार में देखता है)

राणी—(पास बैठकर)—मैं सब कुछ जानती हूँ। पर कृपया कुँवर के लिए, मेरे लिए, ईश्वर के लिए यह निर्बलता दूर करिये। सब कुछ भूल जाओ और सब एकलिंग की इच्छा पर छोड़ दो।

ऊदा—तुम-सी धीरज, सहनशीलता कहाँ से लाऊँ! जान बूझ कर मरा कैसे जाये—

राणी—(सरोष)—तुम समझते हो, मरना तुम्हें अकेले ही को है अब क्यों? पर मैं अपने कर्त्तव्य को, पाप के प्रायश्चित्त को जानती हूँ। इसे अपना प्रायश्चित क्यों नहीं मान लेते? कोई है, गंगा—

[गंगा का प्रवेश]

गंगा—आज्ञा मालकिन?

पीतम—विलासी को बुला ला, जा! तुम दोनों कुछ गाओ—

गंगा—जो आज्ञा, अन्नदाता! (प्रस्थान)

राणी—हास्य और सुख के दिवस के बाद अब कराहट और रुदन की रात प्रारम्भ हो गई, राणा! गाना हमारे उद्-भ्रान्त मन को शान्त और सबल कर देगा। दुःख को संगीत में भुला दें। (आह भरकर) एक विलीन होती हुई कातर रागिनी के समान आओ; हम भी कहीं खो जायें—

[गंगा और विलासी का साज के साथ प्रवेश]

हाँ, वही गीत गाओ जिसपर राणा ने उस दिन तुम्हें मुद्रिकायें दी थीं।

विलासी—(साज जमाती हुई)—जो आज्ञा, सरकार !

(ध्वनि-गूँज से वायुमण्डल भरता है)

राणा—मैं क्या करूँ ? राणी, यों मरने से क्या फ़ायदा ? ओह, क्या करूँ ?......

विलासी और गंगा—जीवन-नैया डोले हमारी—(आलाप के साथ धुन)

ऊदा—(उठकर)—सच है यह, कैसा नग्न सत्य है यह ? ऊदा, आज जीवन की नाव स्थिर कहाँ है ? इस विषम तूफ़ानी रात में हमारी नाव डोल रही है—(जड़-सा खड़ा रहता है)

विलासी—'तीर ढँका है लहरों में प्रभु ! अखियाँ रो-रो अंधी, माई !'

राणी—(सिर धुन, गहरे निसास के साथ)—इच्छा होती है सब कुछ छोड़ कर कहीं चली जाऊँ। कैसी माया है इस जीवन में, कैसा दुःख ! पर सब वृथा। ओह, कहीं मैं यह करुणामय गुञ्जार हो पाती ?......

गंगा—'विपद भँवर में झूर रहे हैं, मन के सुख सपने सब माई !

विलासी—बिना खेवों के डूब रही है सुख की नाव हमारी...! (पुनरावृत्ति)

ऊदा—(सजग हो, घूमता हुआ)—क्या करूँ ? किधर जाऊँ—मारूँ या मारा जाऊँ ? (कुछ दूर झरोखे के पास जा) इतनी दूर पहुँचकर केवल एक छलाँग के लिए रुक जाऊँ ? मार कर अपने को क़तई मार डालूँ, या मर कर नव-जीवन की उमङ्ग पाऊँ ? जीवन-मृत्यु ? पूरा खोऊँ अपने को या पूरा पा जाऊँ ? ऊदा ! उस भयानक विचार मात्र से खूँखार सपनों के अजगर करवट लेने लगे । ओह, राम—

विलासी—सागर-तीर सुखद कुञ्जों में प्रेम-काकली गावे—

राणी—कितना मधुर गाती हैं ये ? काश, मैं भी ऐसा गा सकती ! मन होता है, इन वाद्यों में घुस जाऊँ ; कण्ठ में रम जाऊँ और यह गीत बनकर सदा गूँजती रहूँ—कितना मीठा दर्द है इस जीवन में—(झलझली के साथ स्वर्लीन) ओह ! (हथेली पर सिर टेक देती है ; ध्यान मग्न)

गंगा—मन स्मृतियों में डूब-डूब रे ! नित ही सावन बरसे— (धुन, आलाप आदि)

ऊदा—(झरोखे के पास खड़ा हो) पत्थर की रेखा के समान मुझे निश्चय करना ही होगा—करना ही । यों फेन-सा दो लहरों में दोल नहीं सकता । पीतम एक बार और कृपा कर सकती है । (निस्वास रखकर) न भी करे, तो—तो उस घृणा की आग में जलना इससे कहीं अच्छा होगा । मृत्यु की दाढ़ों में हाथ-पैर मारने से तो अच्छा हो सिर झुकाये जीवन की रोटी खाता चलूँ । मैं रहूँ वा न रहूँ, यह जैतसिंह रह नहीं सकता । ओह, अब क्या

मैं तितली के पर भी काटना चाहता हूँ? इस समय इस दिल में कैसी कटारियाँ चल रही हैं, यह कोई मेरी धड़कन से पूछे। ओह, सुख के समय भरे बादल में यह विपदा की बिजली? ईश्वर, क्या तुममें इतनी शक्ति नहीं है कि इसी समय जैतसिंह का हृदय बन्द कर दो? (विफल घूमता हुआ, रुककर) कैसा मनोहर गीत, पर कैसी विषम ऋतु में!

विलासी—(सालाप)—इन्द्रधनुष मेरी आशा का मन-अंबर में विलसे—

गंगा—मन का मूक पपीहा पीयू, मन ही मन तरसे!

राणी—मैं भी गाना सीखूँगी! दोनों को रिझाऊँगी—भीख माँग लाऊँगी; उन्हें कभी बाहर न जाने दूँगी—हाँ; ओह, क्या से क्या होने जा रहा है?

विलासी—राव कभी मैं, रंक कभी मैं; पर नैया एक हमारी—

ऊदा—जैतसिंह से पराजित होना मूर्खता होगी। कैसा सत्य है यह? राव और रंक दोनों ही के लिए एक नाव। भगवन्...!

गंगा—जीवन-मृत्यु बाँट रहे हो मालिक बारी-बारी!

राणी—(रोती हुई)—ठीक है; ठीक! अब यह हमारी बारी है—

ऊदा—राणी के पैरों पड़ूँगा; फिर वह कहेगी वही करूँगा। पर इस जैतसिंह को तो—ऐं? यह रो क्यों रही है? (पास जाकर) रो रही हो? (गंगा और विलासी गाना बन्द कर देती हैं)

जाओ—(दोनों का अभिवादन के साथ प्रस्थान) तुम यों रो रही हो, क्यों ?

राणी—(उसके वक्ष में मुँह छिपा)—कुछ नहीं ; योंही। आओ, सोएँ। (सो जाती है)

ऊदा—(चांद को कृष्ण-घटाओं तथा बादलों में छोते देखता है। फिर सहसा राणी की ओर देख)—सो गई ; बच्चे की तरह सो गई। (उठकर घूमता हुआ) क्या करूँ, क्या न करूँ ? क्या शिशिर के सर्वनाश की कल्पना में वसन्त को खो दूँ ? तब जैतसिहजी सकता है, मैं नहीं ? क्या मौत का प्रायश्चित्त मेरे ही लिए है, उसके लिए सुख, और सुख ? सुख उसका भाग है, और मेरा यह भीषण सर्वनाश ? कदापि नहीं, ऊदा ! किन आंखों से तू उसे राजा देख सकेगा ? फिर किन हाथों से अपना कलेजा मसलेगा ?... ओह, यह कैसा सन्ताप है ? आग है ; ज्वालाओं के साथ युद्ध है, उदय ! निश्चय कर—राणी ! क्या तुम मेरी आँखों से भावी देख सकती हो ? सो रही हो मीठी शान्त निद्रा में और मैं ही जाग रहा हूँ यों अकेला। (आह रखकर) न मालूम कब-तक यों लड़ता चला जाऊँगा, कबतक ? किसे पता, किसे पता ? ओह, मृत्यु की वह नींद कहाँ है, जिसमें—जिसमें पुनर्जीवन का स्वप्न ही न हो ? मुझे वैसी अखण्ड निद्रा चाहिए। (विस्फारित आँखों में) कौन दे सकेगा वह मुझे ? सिंहासन ? नहीं ; पीतम ? नहीं ; यह तलवार—वह भी नहीं। तब कौन ? कोई नहीं, कोई नहीं !! राणी, मैं यों जग रहा हूँ और तुम सो रही

हो ? कबतक, कबतक यों जगता चला जाऊँगा मैं ? जैसे, जैसे मैं अनादि से लड़ता ही आ रहा हूँ ; जागता ही। यों सहस्त्रों अँधेरी रात्रियों में लड़ता, जागता ! अब नहीं, (सिर धुन) अब नहीं ; मैं थक गया। (बैठकर) पर जैतसिंह ? ओह ! अन्तिम, सदा के लिए अन्तिम एक लड़ाई और सही—चाहे कुछ भी हो ; पर अवश्य ! मैं उस तरह क़ैदी अपमानित मर नहीं सकता। या तो जैतसिंह ही या मैं ही—अवश्य......

चौथा दृश्य

[जैतसिंह का आवास ।]

गोपालसिंह—कुछ समझ में भी तो आये, मेरे जीव ! मैं आजकल रमल डालना सीख रहा हूँ, जैतसिंह ! कल 'राजा' क्या होता है मरकर ?' इस पर जो बजाकर रमल फैंका तो जानते हो क्या उत्तर आया ? भूत ! यह आया जवाब । ओ बापरे ! क्यों, क्या यह भी कभी हो सकता है ?

जैतसिंह—(कुछ क्रान्त)—मरकर वह भूत हो या देव, मुझे मतलब ? रात हो गई और अभीतक तलवार न आई । क्या समझता है वह ? बचा, तुम्हारी चुटिया मेरे हाथ में है...'

गोपालसिंह—(कुछ अपने आप)—भूत की चुटिया मेरे हाथ आ जाय तो तपाक से काट जाँघ चीर उसमें सी लूँ । फिर तो, जैत ! एक बाल जलाओ, भूत तैयार ! जो चाहे मँगवालो

उससे। कुछ समझ में भी तो आये? मैं रोज़-रोज़ भूत की खोज में जाने का विचार करता हूँ, पर नींद आ जाती है, मेरे जीव...

जैतसिंह—(बोखला कर)—चुप रहो! (घूमता-घूमता) मुझे ग़ुस्सा मत दिलाओ, समझते हो? चुपचाप बैठे रहो। मैंने तुम्हें यहाँ अपनी बुद्धिमानी छौंकने नहीं आने दिया है, ध्यान रहे। (वापस हाथ मसल) तलवार क्षेमकर्ण को भेज दी तब, क्यों? (रुक) अच्छा; अच्छा मैं भले ही नष्ट—

गोपालसिंह—तलवार चाहिए? अभी लाता हूँ—(अन्दर जाता है)

जैतसिंह—तेरा सिर, नालायक कहीं का। तलवार! वह तलवार मुझे चाहिए, जिसके इस हाथ में आते ही मेवाड़ की सेना मेरी मुट्ठी में हो जाती है—मुट्ठी में! मत भेज, मैं भी देखता हूँ किस तरह तू सुख की नींद सोता है। (दाँत किटकिटा) नस नस रँस न दूँ तो मेरा नाम जैतसिंह नहीं। पता पड़ जायगा सबको कि—

गोपालसिंह—(तलवार लाकर)—यह लीजिये हुजूर!

जैतसिंह—(झल्लाकर)—तेरा सर लूँ? चला जा यहाँ से नालायक, बेवकूफ़ पोंगा कहीं का! (तलवार छीन ज़मीन पर फेंक देता है) कुम्भा के वीर्य से ऐसे गधे कहाँ से पैदा हुए? मूर्खाव-तार कहीं का—तलवार लाया है। पिल्ले! काट ले अपनी नाक अपने हाथों, इस से।

गोपालसिंह—मेरे जीव, गाली दे रहे हो तुम जैत ! मुझे—बाप की गाली ?

जैतसिंह—(चिढ़कर)—दे रहा हूँ। अब ? साला तलवार लाया जाकर ! चर्ख कहीं का—

गोपालसिंह—मैं चर्ख, गधा, पोंगा ऐं ? मेरे जीव ! कुछ समझ में भी तो आये ! देख मैं कह देता हूँ, मेरा अपमान न कर : अपमान न कर, नहीं तो—कह रखता हूँ, ठीक न होगा। मैं मूर्ख, मैं ? जिसने पाकशास्त्र, रमलशास्त्र, कोकशास्त्र, अलंकार, नायिका-भेद, सामुद्रिक, और—और न जाने क्या पढ़ा है, वह मूर्ख ? तू कहता किसे है यह......

जैतसिंह—(अधिक झल्लाकर)—तुझे। जायेगा यहाँ से या धक्का खायेगा ?

गोपालसिं—(धक्के से ढेला खाते)—धक्का क्यों दे रहा है पर, पर मैं गिर पड़ूँगा कि नहीं ? अरे—अरे, पर—पर (मुट्ठियाँ भींस) धक्के क्यों मार रहा है ?

जैतसिंह—काला कर यहाँ से कमबख्त अपना मुँह ! जा यहाँ से—

गोपालसिंह—मेरे जीव ! मेरे जीव !! कुछ समझ में भी तो आये ! यह अपमान ! मेरा यह अपमान !!! अच्छा, अभी यह जाता हूँ चेत्रसिंह के पास और उसे बुला लाकर तेरी हड्डी पँसली ठीक करवा देता हूँ। नीच, मेरा अपराध क्या था ? जो बाप की गाली दी ; चेत्रसिंह तेरा सिर तोड़कर रख दूँगा। दिनों से वह

तुझे पूछ रहा है। और तू तो वही है न, वही ?. जिसने जशदेवी को गोली बना रखा है। तू तो वही न ? व्यभिचारी कहीं के—

जैतसिंह—(लपककर एक चाँटा जड़ देता है)—चला जा जल्दी यहाँ से हीजड़े। बुला ला जा अपने बाप को। जा, मैं यमराज से भी नहीं डरता। जा—नपुंसक, निकल जा मेरे अवास से इसी दम, नहीं तो सूअर का भुर्ता कर दूँगा। (घुड़ककर) जाता है कि नहीं—

गोपालसिंह—(मारे रोष के)—यह चला तेरे बाप के पास। तू भी देख ले कि मेरा अपमान करने का क्या फल होता है! वृषल कहीं के—इस अपमान का बदला न लूँ तो भूखों मर जाऊँगा—मेरे जीव !......(त्वरा से प्रस्थान)

जैतसिंह—निरर्थक कहीं का, उल्लू, गधा और क्या नहीं ? मैं किससे डरता हूँ, किससे ? किसी से भी नहीं। बस तलवार मेरे हाथ में आ जाने दो, फिर देखो मेरे जौहर। एक-एक को चुन-चुन कर न मारूँ तो मेरा नाम नहीं। खून पी जाऊँगा, रग-रग से प्राण चूस लूँगा काँधल, क्षेत्र सब का। मुझे समझ क्या रखा है सब ने ? मैं वही जैतसिंह हूँ, वही ऊदा सिंहासन का स्वामी ! फिर मैं क्या करूँगा ? मैं—ऊदा ? अब तक तलवार न आई !......

[जश देवी का प्रवेश]

जशदेवी—अन्दर पधारिये ?

जैतसिंह—(न सुनता हुआ) क्षेमकर्ण को भेज ही दी तब।

यों ही मैं कुम्भा को कुण्ड तक ले गया था तब, यों ही ? मैं कहता हूँ, तू ने किया क्या है, ऊदा ! कटारी भोंकने में रखा क्या है ? इन हाथों पर वह विशाल छाती सोई थी—

जशदेवी—(चौंककर) स्वामी !

जैतसिंह—(घूम कर) तू है ! तू (झपट कर) जो किसी से कुछ कहा—तो जबान खींच लूँगा, आँखें निकाल लूँगा। समझती है ?

जशदेवी—(हिचका कर) जो, जो आज्ञा ! आपानक तैय्यार है।

जैतसिंह—हा-हा-हा ! उतर गया आज गुमान न ? मैं आपानकी नहीं हूँ ? हा-हा-हा ! अच्छा, कुछ दिनों में मैं तुझे साम्राज्ञी बना दूँगा। पर आपानक तुझे ही तैयार करना होगा, नहीं तो छट्ठी का दूध याद आ जायेगा......जा यहीं ले आ (फिर घूमता हुआ) इतनी हिम्मत तेरी हत्यारे !...(जशदेवी का प्रस्थान) अब मैं एक पल की देर नहीं सह सकता। रात हो गई, पर तूने तलवार मुझे न भेजी ! तो कल सुबह मेवाड़ का बच्चा-बच्चा जान जायेगा कि ऊदा ने कुम्भा की छाती में कटार भोंकी है, पत्ता-पत्ता, कंकर-कंकर जान जायेगा यह।

[जशदेवी का मदिरा-साज लिये प्रवेश]

जशदेवी—हुजूर !

जैतसिंह—(अपने में डूबा हुआ] क्षेमकर्ण सेनापति ! अच्छा

बाप के हत्यारे, तेरा काल अब आ पहुँचा—

जशदेवी—यह, यह शराब हुज़ूर !

जैतसिंह—(घूम) ऐं, तू, शराब ! चली जा, ले जा सब यहाँ से। तलवार, तलवार ! ऊदा, तूने समझा मैं धमकी दे रहा था; पर—पर (जशदेवी को) तूने सब सुन लिया क्या ?

जशदेवी—(काँपकर) न मालूम हुज़ूर क्या क्या बोल रहे थे—

जैतसिंह—जो सुना, वह इसी दम भूल जा। नहीं तो कान और जीभ दोनों काट लूँगा—

जशदेवी—(प्याला भर कर) भूल गई; मैं किसे कहने जाती हूँ ? लीजिये—(प्याला देती है)

जैतसिंह—ला (पीकर) और ला ! (जशदेवी भरती जाती है; प्याले पर प्याला पी, एक भरे प्याले को योंही थाम स्थिर-सा) आखिर न भेजी। पिशाच, कल मैं तुझे कुत्तों की मौत मरवा डालूँगा। मैं मारा जाऊँ, बला से; पर तुझे तो मज़े न करने दूँगा—नहीं ! (पीकर) तू यहीं है ? किसी से कुछ कहा तो बोटी-बोटी काट डालूँगा; ला, और ला; और ला, ला—

जशदेवी—समाप्त हो गई; और ले आती हूँ।

जैतसिंह—समाप्त हो गई ? कैसे हो गई ? हरामज़ादी ! जानती नहीं, मैं कितनी पीता हूँ ? जल्दी ला ! देखती नहीं (प्याला मारकर) कितना प्यासा मर रहा हूँ ! तुझे चूस कर अपनी प्यास बुझाऊँ क्या ? जल्दी ला, नहीं तो मारते-मारते—

जशदेवी—(तन कर) मुँह सँभाल कर बोलिये। गोली नहीं हूँ,

कहते हो करती हूँ, तो मान-अपमान वेंच कर नहीं। नहीं लाती; देखती हूँ क्या कर लेते हो? वहुत सहा; अब मार भी डालिये, तो यह गोलापा न करूँगी, कोई वात है! पीने की ग़रज़ हो, तो वुला लो अपनी रखेलों को। यहाँ लौंड़ी नहीं हूँ।

[सरोष प्रस्थान]

जैतसिंह—(दाँत पीसकर) नीच, रण्डी, कुतिया! कल डोली में वन्द कर वाप के यहाँ भेज देता हूँ। मुझसे ही म्याऊँ-म्याऊँ? हम्माम में वन्द करवा देता हूँ; मुझसे अकड़ना? ठहर, तेरी हड्डी-पँसली ठीक कर देता हूँ! (सहसा) हूँ! अब क्या आवे तलवार! वस ऊदा...

(नकावपोश ऊदा का प्रवेश।)

ऊदा—(नकाव उतार कर) जैतसिंह......

जैतसिंह—(भीत, पर चौंक, घूमकर) तुम, ऊदा! अभी?

ऊदा—हाँ, मैं। अभी, यहाँ!

जैतसिंह—(आतुर) तलवार तुम ख़ुद लाये हो ऊदा?

ऊदा—किसकी क़लाई में इतना जोर था मेरे सिवा, जो तुम्हारी तलवार लाता! (घूमता है)

जैतसिंह—कहाँ है? मुझे दो, ऊदा! मैं किसी से यह न कहूँगा। तलवार मुझे दो; फिर देखो क्षण भर में मैं वाग़ियों को पछाड़ मारता हूँ कि नहीं! उनके काले रक्त से मेवाड़ की नदियाँ रँग दूँगा! कहाँ है तलवार?

ऊदा—(रुककर)—वह मेरी छाती के म्यान में बिजली बन कर सोई पड़ी है...

जैतसिंह—क्या ? छाती में तलवार ?

ऊदा—(सकष्ट हँसकर)—हाँ छाती में। जैतसिंह मैं तुमसे द्वन्द्व-युद्ध करने आया हूँ...

जैतसिंह—समझा—

ऊदा—(स्थिर, दबंग और गम्भीर)—इस संसार में हम तुम दोनों एक साथ जी नहीं सकते, रह नहीं सकते—बस नहीं सकते। या तो तुम चल बसो, वा मैं। जैतसिंह ! आज मैं अन्तिम निपटारा करने, यों चोर की तरह अपने कलेजे को चिता में झोंक तुम्हें ललकारने आया हूँ। उतर पड़ो ! या तो तुम मुझे मार डालो ; या मेरी तलवार से टुकड़ा-टुकड़ा हो जाओ—

जैतसिंह—ऊदा !

ऊदा—(अपने आप से जैसे)—यह अभी तक सुनसान रात है ; सवेरा होने पर कुछ नहीं। उठा तलवार ! रक्त-रंजित सुख के पात्र को दो दैत्य एक साथ मुँह पर लगा नहीं सकते। एक साथ हम राज नहीं कर सकते। समझते हो, जैतसिंह ! इस निर्जन प्रहर में आओ, हम तुम अपना-अपना निर्णय कर लें। या तो तुम, वा मैं—तैयार !...समझते हो ?

जैतसिंह—(घृणा और भय पूर्वक)—अच्छी तरह ! तुम—तुम मुझे मार डालने आये हो !

ऊदा—(उसके कुछ पास जा)—नहीं। मैं तुमसे द्वन्द्व-युद्ध

करने आया हूँ। हम दोनों ने एक महात्मा का रक्त बहाया। अब आपस के घाव अधिकार का भी निर्णय कर लें। आधा मैं नहीं चाहता; क्योंकि वह हो नहीं सकता। और पूर्ण तो एक का है दो का नहीं। मैं सिंहासन को प्रेम करता हूँ अतः मैंने अपने को जीवित चिता बना दिया है। यदि तुम भी उससे प्रेम करते हो तो सिर हथेली में ले लो—जैतसिंह, अन्धा समय भागा जा रहा है; और जीवन धड़कनें गिन रहा है। समय रहते सावधान; नहीं तो सब खतम!...उठा तलवार (पड़ी हुई तलवार देता हुआ) मुर्दे! सिंहासन को चूमने के पहले इसे चूम ले—

जैतसिंह—ऊदा!

ऊदा—(कुछ सुलफ)—भयभीत हो रहा है, कायर! इसी बूते पर मुझे राज्य का रखवाला कहने आया था? इसी हिम्मत पर चला था मुझे तलवार का हुकुम देने? तो मैं तलवार लाया हूँ; ले—

जैतसिंह—हुम्। ऊदा, ऊदा—

ऊदा—(और निकट आ)—मैं तेरी रग-रग पहचान गया हूँ, जैतसिंह! रक्त ने तुझे सूरमा बना दिया है, यह मुझसे ले। मर्द, मर्द की तलवार तौल ले—

जैतसिंह—(घूमता हुआ)—मैं समझता हूँ; अच्छी तरह समझता हूँ—

ऊदा—कि भैरव तुझ में आ प्रविष्ट होंगे; तेरे द्वारा मुझसे द्वन्द्-युद्ध करेंगे—

जैतसिंह—भैरव ? ठीक है, ऊदा ! तुम मुझसे अधिक ताक़तवर हो—हुम्, भैरव !

ऊदा—ताक़तवर ? नहीं । जैतसिंह, मैं घायल हूँ—रग-रग में रोम-रोम में । भाले भोंके पड़े हैं, हृदय के अणु-अणु में । मैं अपने में ही मृत हूँ—ओह, पिशाच ! बातों में यह अनमोल समय क्यों नष्ट कर रहा है ? मैं काँप रहा हूँ । जैतसिंह, इस तलवार से मुझे गिरा दो, राज्य तुम्हारा है ; मुझ से गिर जाओ, आजीवन महाराज्य छोड़ दोगे । यदि कुंभा के रक्त-तर्पण में तुम अपनी भी अंजली का दावा करते हो, तो आ जाओ ! समझे ? मूक' बिना चिल्लाये हम इस भयानक सुनसान रात में लड़ेंगे, कभी जीवन से, कभी मौत से । ह-ह-ह !! कितनी विचित्र पल है यह हमारे-तुम्हारे जीवन में, जैत !

जैतसिंह—तुम—तुम मुझे लुभा रहे हो, ऊदा ! तुममें न जाने—न जाने क्या है ? मैं न लड़ूँगा ; भैरव मुझमें नहीं जाग रहे । कहाँ जाग रहे हैं तुम्हीं बताओ—?

ऊदा—मूर्ख ! यह जीवन समर-भूमि है, जहाँ हम सर्वदा लड़ते आये हैं—प्रेम घृणा से ; सुख दुःख से ; देवता राक्षस से । कामना के भूत हुंकार करते रहते हैं यहाँ ! तुम्हें लड़ना ही होगा, अवश्य । आवाहन करो भैरव का ; भीषण शक्तियों का वह स्वामी तुम्हारे रक्त में ऐरावतों का बल बहा देगा—पुकारो भैरव को जैतसिंह ! इस जड़ पल में हल्की आह भी उन्हें जगा देगी ।

जैतसिंह—एक ख़ून से तृप्ति नहीं हुई, ऊदा ?

ऊदा—मैं तुम्हें मारने नहीं आया ; मार डालने का अवसर देने आया हूँ। तुम मर्द हो ; जान पर खेल मुझे मार डालो। तुम राज करना चाहते हो, तो पहले मुझे हरा दो—तुम्हें अवश्य लड़ना पड़ेगा।

जैतसिंह—द्वन्द-युद्ध...लड़ना ही पड़ेगा ! (कुछ घूम) बिना लड़े अब कोई चारा नहीं—अच्छा, आजा ! मैं मरने की परवाह नहीं करता ! भैरव मुझमें आ रमेंगे, मैं नहीं डरता।

ऊदा—शाबाश ! वीर की यही शोभा है ; जीवन के योद्धा का यही धर्म है ! तैयार—

जैतसिंह—(घूम) मैं जीवन की तृण भर भी परवाह नहीं करता। बहुत पहले ही वह तो खून के समुद्र में डूब गया है, ऊदा ! अब क्या जीना, क्या मरना ? मैं लड़ूँगा—

ऊदा—द्वन्द-युद्ध, समझते हो ? मरतेदम तक किसी को मदद के लिए न बुलायेंगे ; न चिल्लायेंगे ; न आह् ही करेंगे ! इस गंभीर अवाक् अथाह तम-अन्ध समय में दो-प्यासी तलवारें चमचमाएँ। उनकी झनकार से अदृश्य भूत हहर उठें ! समझते हो जैतसिंह ?

जैतसिंह—मैं कुछ नहीं जानता, राक्षस ! मैं लड़ूँगा, बस ! ओह, भैरव !...

ऊदा—(तलवार छू)—द्वन्द-युद्ध की मर्यादा, जैतसिंह ! प्रतिज्ञा करो—

जैतसिंह—(झपटकर तलवार उठा लेता है)—भैरव ! आ

जा—अब मैं ही भैरव हूँ, भैरव। मौत क्या खाकर मुझे छूयेगी? तेरे घाव लौट जायेंगे, ऊदा!

ऊदा—कितना चाहता हूँ यह हो। कितना चाहता हूँ यह? जय एकलिंग! (तलवार निकालता हुआ) राणी, तुमसे कह आया हूँ, शिकार के लिए जाता हूँ; अब यदि इस अन्तिम युद्ध में मैं खप जाऊँ—ओह! कितना सुख होगा उस मर मिटने में?—तो तुम समझ लेना, पीतम! भाग्य का भेड़िया मुझे उठा लेगया। (आधी तलवार निकाल, रुक) यही होना था क्या? हाँ यही, ओह्, ऊदा! कितनी निराशा, कितनी विडम्बना? क्या, क्या मैं सच-मुच तलवार निकाल रहा हूँ—?

जैतसिंह—मैं तैयार हूँ—तैयार! निकालो तलवार! मेरी मुट्ठी वज्र के समान कठोर हो रही है। भैरव ने मंत्र की अदृश्य-शक्ति से उसे फूंक दिया है—तैयार!

ऊदा—(सहसा स्वलीन)—यह क्या? राणी, तुम यहाँ कहाँ से? मेरे पीछे आईं क्या? (चारों ओर देख) यहाँ भी, वहाँ भी? हज़ार-हज़ार बन कर आईं? अंधकार! इस प्रकाश को, इस मूर्ति को अपनी अथाह छाती में छिपा लो। या, या मुझे अंधा कर दो। मैं लड़ने आया हूँ, मारने नहीं—

जैतसिंह—कायर! इस बकवाद से क्या फ़ायदा है अब? मैं झूमने के लिए अधीर हो रहा हूँ। झूम में धूज रहे हैं भैरव मुझमें अब। हुम्, घुमा तलवार, घुमा!

ऊदा—(सहसा तलवार खींच)—हुँ? तब होने दो!

[दोनों लड़ाई करते हैं]

जैतसिंह—भैरव! भैरव मुझ में जग गये हैं! लड़ रहे हैं वे ही—यह ले पापी। (घा करता है) घुमा तलवार! यों खाली क्या घूम रहा है?

ऊदा—(बचाकर)—कुँवर! तू—राणी, इसे भी गोद में उठा लाई? चिता, चिता—दौड़ (बचाकर) ऐं आग में जलने जा रही हो? राणी ठहरो! (खड़ा रहकर) ओह् जैतसिंह, मुझे मार डाल; मैं लड़ नहीं सकता।

जैतसिंह—कायर! मुर्दे! खड़ा क्या रहा यों—यह ले! (घाकरता है) मरणीया, मरणीया हो गया हूँ, भैरव!

ऊदा—(आप से आप घा बचा)—घुमाये जा; घा किये जा। कितने मीठे ये घाव हैं? राणी? कुँवर—पीतम! गई अंधकार—केवल अंधकार...(घूमकर) शाबाश खून लड़ रहे हो! खून के तर्पण ने तुम्हें मर्दानगी प्रदान कर दी तब! यह क्या? (बचकर) पुनः तुम? काँपती हुई, आग्नेय? जैतसिंह—जैतसिंह!! किये जाघा; मैं खड़ा हूँ—मुझे मार डाल! मैं राक्षस हूँ—(तलवार पर घाव बचाता है)

जैतसिंह—(पैंतरा साधते हुए)—अवश्य मार डालूँगा। न छोड़ूंगा; यमदूत! मुझे मार डालने आया था? टुकड़े-टुकड़े कर डालूँगा—भैरव यह करेंगे! (घा)

ऊदा—(उछल तलवार तोल)—हुम्! गायब, तमचुर की पुकार गायब! उषा की आभा भ्रान्ति! (घा बचा) सवेरा दुराशा—

जैतसिंह—(कुछ थम)—लड़ नहीं रहा ? बक रहा है तब ? यह ले—(पुनः घा)

ऊदा—(घा खाकर)—ओह, मार डालेगा ! (बचाता हुआ) चेत गये हो। अब मैं लड़ूँगा ; जय भैरव ! विश्व (तलवार घुमाता हुआ) अन्धेरे में ! मरते दम तक लड़ूँगा—

जैतसिंह—तलवार मारने का (घा का प्रयत्न कर) मौका कौन देगा ? (फिर प्रयत्न कर) अभी काम तमाम कर देता हूँ हत्यारे ! देखता हूँ, कैसे मार डालता है मुझे ! (प्राण पण से लड़ता है)

ऊदा—(बाकायदा लड़ता हुआ)—यह क्षण मानो—(घा बचा)—अनन्त—(पैंतरा बदल) असीम क्रन्दन से (बचाता हुआ) भरा है। (घा खा) आह् ! खूब मारा ! शायद (सचेष्ट) तुम जीतो। (उछल घा करने का प्रयत्न) ओह, कदापि नहीं ; यह ले—(घा करता है)

जैतसिंह—(लड़खड़ा कर)—आह्, आह् ! मा—र—डा—ला ! मार डाला—(चक्कर खा) दौड़ो, दौड़ो कोई ! पिशाच ने मार डाला—

ऊदा—(रुककर)—कट गया क्या ? चुप, द्वन्द युद्ध, प्रतिज्ञा ! जैतसिंह, घा कर, मैं यह खड़ा। जैतसिंह ! चुप रह, दूसरा घा अब न करूँगा। उठ और वार कर। एक घाव में कामना का कलेजा नहीं कटता ; उठ मुर्दे !

जैतसिंह—(उठने की चेष्टा कर)—बचाओ, कोई बचाओ—

ऊदा मार डाल रहा है। दौड़ो। ऊदा—ऊदा—हत्यारा!

ऊदा—(अस्तव्यस्त)—ले डूबेगा कहां। विश्वासघाती, यह ले—(दूसरा घा)

जैतसिंह—(अन्तिम)—ओ—ह्—ह्—(शान्त)

ऊदा—(चकित सा)—मर गया! अभी तक चीख गूँज रही है। भाग, ऊदा—उल्कापात! (त्वरा से प्रस्थान)

[जशदेवी का एक ओर से त्वरा के साथ प्रवेश]

जश देवी—ऊदा? कहाँ है ऊदा? ओ मेरी माँ! यह क्या हुआ (स्तम्भित सी)

[दो चार दासियों तथा भृत्यों का प्रवेश]

१ लौंडी—सरकार! (ठिठक) अरे बाप रे खून!

१ भृत्य—खून? किसने मारा?

[चेत्रसिंह के साथ गोपाल का प्रवेश]

गोपाल सिंह—वह रहा! ओ, ऐं? यह क्या मेरे जीव ...

चेत्रसिंह—(त्वरा से आगे बढ़) यह क्या? भाभी! किसने काट डाला इसे? भाभी?

जशदेवी—(सजग हो) कौन? चेत्रसिंहजी! अरे आप जल्दी क्यों न पधारे? हाय, मार गया, काट गया। अरे उस अभागे ने मेरी चूड़ियाँ फोड़ डालीं! (जैतसिंह के शव के पास बैठकर) कितना गहरा घाव किया है रे तूने हत्यारे! (चिल्ला, ललाट पीट) कौन जनम का बैर लिया मुझसे, जो इन्हें दो टूक कर गया! हाय राम रे! (फुफुक फुफुककर रोने लगती है)

गोपालसिंह—इस हाथ दे, उस हाथ ले। हुं, ले! मुझे बाप की गाली दो, धक्के मारे—ले। पर महाराणा क्यों मार गये इसे? मेरे जीव, कुछ समझ में तो आये।

क्षेत्रसिंह—चुप रहो! अच्छा हुआ जो चला आया। न आता, तो यह कैसे जानता! क्यों मार गये राणा अपने इस स्नेही को! क्यों? (सहसा) आपको कुछ पता है?

जशदेवी—(फूट फूटकर रोती हुई) सब जानती हूँ, सब! अपनी ही करनी से मरे हैं ये। मेरे राम, अब मैं क्या करूँगी।

क्षेत्रसिंह—(भृत्यों, दासियों से) शव को उठा ले जाओ। (शव को उठा उनका प्रस्थान) हाँ, धीरज धरो भाभी! सब खोल कर कह दो, रत्ती-रत्ती कह दो। मैं राणा से समझ लूँगा—

जशदेवी—(सिसकती हुई) मेरे भाग फूटे थे! आप से क्या छिपा है? आज शायद, आप से क्या कहूँ देवर! ये दोनों झगड़ रहे थे आपस में! शराब के नशे में बक गये थे ये हो! हाय क्या कहूँ, यह जीभ कट पड़ेगी भाई! दोनों ने मिलकर ससुरजी की हत्या की थी।

क्षेत्र—हैं, कुम्भा की? पिताजी की? समझ गया—सब समझ गया! काँच की तरह सब स्पष्ट हो गया। रहस्य का काला पर्दा फट गया। ओह!

जशदेवी—उसी ने आकर मारा इनको, उसी हत्यारे ने! बिजली गिरे उस पर; भाड़ में जाये वह; नरक का कीड़ा हो; रोम-रोम में कीड़े पड़ें उसके। उसका पूत मर जाय; निकन्दन

निकले उसके वंश का ! हत्यारे को पानी पिलानेवाला कोई न रहे। हाय मेरा भव बिगाड़ दिया ! थे तो मेरे नाथ ! राक्षस, तुझे यमराज उठा क्यों नहीं लेते ?

क्षेत्रसिंह—ओह, ईश्वर ! यह कैसा रहस्योद्घाटन है ! हत्या, बाप की हत्या !'

गोपालसिंह—(रुआँसा)मेरे जीव ! कुछ समझ में भी आवे—

क्षेत्रसिंह—(सहसा जाते हुए)—ऊदा, हत्यारे ! इसी पाप को छिपाने इतना कर रहा था ? कुत्ते, देवता-स्वरूप बाप की उस राज्य के लिए हत्या, जो तेरा ही था ! दुनिया, प्रभात के पहले इस भयानक खबर को सुन ले ! किसकी छाती घृणा से न भर जायगी ? काँधल, तैयार ! रायमल, तैयार !! मेवाड़, तैयार— तैयार क्रांति ! ओह, मनुष्य, तू इतना नीच है ! (प्रस्थान)

गोपालसिंह—(जाने को उद्यत)—भाभी, क्या पता था कि यह दो घंटे बाद मर जायगा ? न मुझे पता था, न आप को ; न उसे ही ! अरे वाहरे, कुदरत ! कुछ भी हो, था अच्छा ! (रोकर) बेचारा मारा गया, क्या हुआ जो मुझे बाप की गाली दी। मर कर कहीं भूत न हो—मुझपर तो चारों हाथ थे इसके ! कुछ समझ में भी तो आये यह सब, मेरे जीव—(प्रस्थान)

—

पाँचवाँ दृश्य

[नगर चौक।]

विमलदान—अब आप लोग मेरी विनती मान कर इस ज़िद् को त्याग दें। छूटने से काम था, छूट गये।

१ नागरिक—नहीं। हम जानना चाहते हैं, राणाजी ने किस अपराध पर इन बेचारों को क़ैद किया था। ज़िद्द त्याग कैसे दें? कोई ठठोल है क्या?

२ नागरिक—क्या हमें प्रस्ताव के रूप में प्रार्थना का अधिकार न था?

विमलदान—था; थोड़ा धीरज रख आपलोग शान्त हूजीये—मैं सब ठीक-ठीक समझा देता हूँ।

३ नागरिक—झूठ-मूठ हम बनना नहीं चाहते! यहाँ सरपर न जाने क्या बीती और बीतेगी!

विमलदान—एक शब्द भी झूठ कहूँ, तो मेरा सिर उतार लेना—

४ नागरिक—अरे चारण है चारण ! राज्य का गुलाम—

दो चार—चुप रहो जी ! सुनो भी—देखें क्या कहता है।

२ नागरिक—मैं पूछता हूँ, भवानीशंकरजी और कवि महेश का अपराध क्या था ? क्या वे निरपराध न थे ? उनपर अत्याचार नहीं हुआ ? और यों हमारे राजर्षि-दत्त अधिकारों पर आघात न हुआ ? और राणाजी ने अधर्म न किया ? इतने प्रश्न हैं, दीजिये जवाब कुछ हो तो—

दो-चार—हाँ, हाँ—दीजिये जवाब !

विमलदान—सब प्रश्न उचित हैं ; इसे कौन मना करता है। पर राणाजी का अनुमान था कि बड़े हुजूर को—

[भवानीशंकर का प्रवेश]

१ नागरिक—यह आ पहुँचा हमारा वीर ! बोलो भवानीशंकरजी की जय !

सब—जय, भवानी शंकरजी की जय !

विमलदान—(किसी तरह संयत रह) पधारिये पंडितजी, ये लोग काफ़ी उत्तेजित हो रहे हैं...

भवानी—तो मैं क्या करूँ ? यहाँ तो अब तक कोड़ों के घाव नहीं सूखे !

दो-तीन नागरिक—कोड़े ?

भवानीशंकर—(सरोष, गंभीर, सओज) हाँ कोड़े ! क्यों,

आप लोग आश्चर्य क्या कर रहे हैं ? वह प्रस्ताव जो बड़े हुजूर की छाती में कटार बन गया ! फिर कोड़ों से होना-जाना क्या था ? मित्रो ! क्या कहूँ, मारे यातना के यह वाणी सूख गई—

विमलदान—(बीच ही में) पण्डितजी, होना था वह हो गया ! अब जनता को अधिक उत्तेजित करने से फ़ायदा ? क्यों ज़्यादे उकसाते हैं इन सब को ? क्या आग कम थी, जो आप घी रेड़ रहे हैं ?

दो-तीन नागरिक—चुप रहो, चुप रहो...

१ नागरिक—तुम कौन होते हो बीच में बक-बक करनेवाले ? भवानीशंकरजी को बोलने क्यों नहीं देते ?

२ नागरिक—राणा इसका बाप लगता है शायद !

३ नागरिक—ऐ गोले ! चुप रह ; नहीं तो...(मुट्ठी दिखाना)

भवानीशंकर—(आगे बढ़ कर) शान्ति रखिये—धीरज ! आप सबकी इस अनुकम्पा के लिये हम दो भाग्य के मारे कितने ऋणी हैं, यह हमारा अन्तर्यामी जानता है। हमारे काले कष्टों का रोमांचकारी इतिहास सुनने के लिए हिमालय-सा धैर्य्य चाहिए ! कपड़ों में बिच्छू ; कम्बल में खटमल ; नमक में तर कोड़ों की मार ; भोजन में धूल और रेत ; भंग में ताँवा ! इनसे भी अधिक, कल्पनातीत असंख्य-असंख्य कष्टों को हमने मूक सहा है। क्यों, किस लिए ? क्या बताना पड़ेगा यह ? आप लोगों के लिए—

विमलदान—(बीच ही में) यह सब कहकर आप करना क्या चाहते हैं, पंडितजी !

भवानी—(न सुनता हुआ) मेरा यह शरीर प्रजा की सम्पत्ति है ! प्रजा की सेवा मेरा साँस है ! अपने ऊपर किये गये अत्याचारों का बदला लेना चाहता हूँ। आप कुछ न बोलिये !

दो तीन—बदला ! बहुत ठीक, बहुत ठीक ! इतना अत्याचार ! अधर्म, अन्याय !!......

[कवि महेश का प्रवेश]

३ नागरिक—जय, कवि-भूषण महेशचन्द्र की जय !

दो-तीन नागरिक—ओ हो, ओ हो, कवि महेश ! (शोर गुल)

१ नागरिक—चुप रहिये ! सुनिये, सुनिये !

भवानीशंकर—आइये कविजी, हम लोग महाराणा से पूछना चाहते हैं, हमें क़ैद क्यों, किस अधिकार पर किया गया था।

कवि महेश—(जाता हुआ) ठीक तो है ! मैं यह आया, अभी—(प्रस्थान)

दो-तीन नागरिक—डर गया, कवि डर गया......

भवानीशंकर—शान्त ! कारागार के कष्ट ने उनको भीरु बना दिया है ; पर उनकी वाणी हमारे साथ है ! हमें सोचना यह है, इस समय हम लोगों का क्या कर्तव्य है ? क्या केवल विरोध दिखाकर ही हम चुप बैठे रहेंगे ? मैं काँधल से मिलकर आ रहा हूँ। उन्होंने हम लोगों के लिए राणा से लोहा लेना विचारा है। समझते हैं, हम लोगों के लिए—

दो-तीन—अच्छी तरह !

विमलदान—पर ज़रा मेरी भी तो सुन लीजिये—यों...

दो-एक—चुप रहो जी, चुप !

१ नागरिक—बोलने भी दो, देखें क्या बकता है !

दो-तीन—हाँ, हाँ सुनो—(शांति)

विमलदान—राजा कुछ भी हो, हमारा पिता है...

१ नागरिक—तेरा बाप होगा ; मेरा तो नहीं गोले !

भवानीशंकर—वह कौन ? (सब चुप रहते हैं) कौन है वह ? जवाब क्यों नहीं देता, बदतमीज़ कहीं का। अच्छा जो हो वह अपने मन ही में शर्मिन्दा हो। जीवन की किसी भी परिस्थिति में हमें विवेक और मर्यादा को ताक़ पर न रखना होगा। विवेक हीन क्रान्ति भेड़ियाधसान है। हमारा कर्तव्य है, हम वयोवृद्ध चारण जी को सम्मान के साथ सुनें। विवेक की बिजली के बिना धर्म के मेघ नहीं बरसते।......

विमलदान—आप लोग मुझे अपना शत्रु क्यों मानते हैं ? मैं तो आप सबका परम मित्र हूँ ; पर ज़रा उम्र में अधिक हूँ। दरबार में मैंने भी इन महानुभावों की सिफ़ारिश की थी। मैं इतना ही कहना चाहता हूँ, कि जो हो गया, वह हो गया। उसके लिए आन्दोलन क्यों किया जाये ? भविष्य में सावचेती रखी जाय और क्या ? महाराणा भी तो मनुष्य हैं ; ग़लती होना उनसे भी सम्भव है। उदार मन से ज़रा—

[नगर कोतवाल का सिपाहियों के साथ प्रवेश]

कोतवाल—मैं चाहता हूँ, आप लोग चुप-चाप बिखर जायें।

क्रान्तिकारियों के कारण महाराज्य भर में सैनिक-न्याय की दुहाई दी गई है। सेनापति की ऐसी आज्ञा पाकर मैं अपना कर्तव्य करने आया हूँ—बिखरिये।

१ नागरिक—सभ्य देश में सैनिक-शासन? आश्चर्य!... अच्छा! (जाता है)

भवानी शंकर—(आगे बढ़कर)—आप लोग शान्ति धरिये! (कोतवाल से) श्रीमन्! आपको पता है, मेदपाट में सैनिक-शासन सत्पुरुष-समिति की अनुमति के बिना—

कोतवाल—मैं यह कुछ नहीं जानता! (रुक्का दिखाकर) सेनापति ने अभी-अभी यह आज्ञा भेजी है। पंचात छोड़कर इन सब को बिखर जाने के लिए कहिये, पण्डित जी!

भवानी—पर यह तो अन्याय है!

कोतवाल—न्याय-अन्याय मैं नहीं जानता; मैं तो चिट्ठी का चाकर हूँ? आप लोग शान्ति से बिखर जाइये—मैं मेरे चला जाऊँगा। नहीं तो—

भवानी—नहीं तो? समझ गया! (कुछ उत्तेजित) आप हमें कुत्तों की मौत मार डालेंगे! बकरों की तरह काट डालेंगे, क्यों? उफ्! इतना बाकी था! नागरिको, देखो, आप लोगों की यह दशा है! इस हेय, पराधीन और जड़ अवस्था में जीने से तो मर जाना अच्छा!

एक नागरिक—ग़ज़ब! महाराणा यह कर क्या रहे हैं?

दूसरा नागरिक—विनाश काले विपरीत बुद्धिः! (जाता है)

दो तीन—मरें क्यों ? मार डालें न !

एकाध—अवश्य ! हो—हो !!

विमलदान—भाइयो ! आप लोग फिर अशान्त हो रहे हैं ! काँधल के विद्रोह के कारण महाराणा ने—

पहिला नागरिक—चुप रहो ! काँधल हमारे देवता हैं। चुप रहो !

चार-पाँच—काँधल ! काँधल !! देवता है हमारा—

दूसरा नागरिक—कौन कहता है वे विद्रोही हैं ? जो कहे उसका मुँह काला !

भवानी शंकर—यदि काँधल विद्रोही हैं, तो किसके लिए ? हमारे लिए, मेद-पाट माता के गौरव के लिये ! हमारे लिए उन्होंने अपनी कमल पूजा करना विचार लिया है ! हम लोगों के लिए वह महात्मा आज अपने स्वदेश तक में आ नहीं सकता ! जिसके बाहुओं पर इस महाराज्य की विभूति इतरा रही है, जिसकी वीरता का डंका त्रिभुवन में बजता है, वही आज अपनी मातृ-भूमि से निकाल दिया गया है ! पर उछल पड़ो यह सुनकर, कांधल ने मेरे द्वारा यह सन्देश भिजवाया है कि—

कोतवाल—पण्डित जी, यदि आप काँधल के एक शब्द को भी यहाँ उच्चारेंगे, तो मैं राज्य-द्रोह के अपराध में आपको बन्दी बना लूँगा ।

भवानी शंकर—मैं इस हेय असभ्य सैनिक-आज्ञा को नहीं झुकता ! काँधल ने कहलवाया है, बादल फट गये हैं ; सूर्य निकल

आया है—क्रान्ति का झण्डा धर्म के हाथों में फहरा रहा है—तैयार ! यह रहा वह पूज्य प्रातःस्मरणीय सन्देश—(पत्र निकालता है)

कोतवाल—(आगे घँसकर)—पण्डित जी, राज्यद्रोह के अपराध में—

विमल०—(बीच ही में)—श्रीमन् ! ज़रा रुकिये ; धीरज ! धीरज ! लोग काफी उत्तेजित हैं। कहीं दंगा न हो जाय—

भवानी०—(वेपरवाह पत्र पढ़ता है)—मेदपाट की स्वतंत्रताभिमानिनी प्रजा ! राजर्षि कुम्भा के स्वाधीन नागरिको ! शृंगमाल का झण्डा सारे मेदपाट का धर्म-ध्वज है ! उसकी गगन चुम्बी फर्राहट के नीचे—

कोतवाल—चारणजी, पंडित को रोकिये, रोकिये, नहीं तो मैं कहता हूँ—

भवानी शंकर—आपकी इच्छा हो, वह कीजिये। काँधल का सन्देश है, उस प्रतापी झण्डे के नीचे खड़े हो ! वह हमारी स्वाधीनता की समर-भूमि की शोभा, हमारे कीर्ति-स्तम्भ का गौरव है ! ऐसे अन्यायी, अत्याचारी, उच्छृंखल, पक्षपाती राजा के विरुद्ध विद्रोह !

वहुत से—विद्रोह ! विद्रोह !!...

कोतवाल—(लपकता हुआ)—अब मैं धीरज नहीं धर सकता। सैनिको, पकड़ लो पण्डित को ; कस लो मुश्कें ! आप लोग विखरते हैं या नहीं ? विखरिये ! नहीं तो मुझे घेरा डालना

पड़ेगा! मैं इस सम्मेलन को नीति-विरुद्ध और विद्रोही घोषित करता हूँ। इसके प्रत्येक भागी का दण्ड कठिन है! बिखरिये—

भवानी०—एक बच्चा भी अपनी जगह से न हिले! मेरी गिरफ्तारी की चिन्ता न कीजिये। धर्म और स्वाधीनता की रक्षा के लिए कारागार क्या, फाँसी, कुम्भ-मृत्यु, अंग-भंग सब कुछ सहना पड़ेगा। जिस जाति में दुःख और कष्ट-सहन की क्षमता नहीं, वह स्वाधीन हो नहीं सकती; स्वाधीनता की रक्षा नहीं कर सकती! बलिदान का फल स्वाधीनता है; बलिदान स्वाधीनता का कवच है—अड़े रहो! काँधल आ रहे हैं—

दो-तीन—अड़े रहो, अड़े रहो। काँधल आ रहे हैं!

भवानी—वह देखिये, राष्ट्र-वीर काँधल आ रहे हैं—

[घण्टनाद करते हुए काँधल और क्षेत्रसिंह का प्रवेश।]

क्षेत्रसिंह—हत्या, बाप की हत्या!

कुछ—हत्या? किसकी हत्या? सुनो, सुनो—हत्या!

काँधल—अत्याचारी ऊदा ने राजर्षि कुम्भा की अपने सिंहासन के लिये हत्या की थी—

क्षेत्रसिंह—हृदय थामकर यह सुनलो! हत्यारे ऊदा का सत्यानाश हो—

दो-तीन—हत्या? कुम्भा की? किसकी?? ओ—हो—(शोर गुल)

कोतवाल—क्या, काँधल? आप—श्रीमान्—यहाँ—हत्या—पर—'

काँधल—(तलवार पर हाथ रख) वहीं ! आगे बढ़ा, तो ज़मीन पर लोटेगा ! (कूदकर मंच पर जा खड़ा होता है)

बहुतेरे—किसने हत्या की ? सुनो, सुनो ! काँधल बोल रहे हैं...

चेत्रसिंह—(घण्टा बजा कर) राष्ट्र वीर काँधल की जय !

सब—जय........

काँधल—(एक हाथ उठाकर) नागरिको ! (चारों ओर शान्ति) तुम्हारे परम प्रिय महाराणा कुम्भा को याद करो—याद करो कीर्ति-स्तम्भ के निर्माता को ! याद करो उस दिव्य राजर्षि को ! कुम्भा ! उस देवता को, स्वाधीनता के सच्चे उपासक को ! ओह, तुम्हारे ऐसे महान् पिता की वर्तमान महाराणा ने हत्या की, राज्य के लिए, उस सिंहासन के लिए, जो उनका था ही। इससे बढ़ कर जघन्य दुष्कर्म और क्या होगा—

चेत्रसिंह—जैतसिंह भी शामिल था ! कल रात को स्वयं ऊदा ने उसे टुकड़े-टुकड़े कर डाला ! हत्यारे आपस में लड़ पड़े।

दो-तीन—ओ ! राम ! कैसी भयानक खबर है ! दुष्ट, बाप की हत्या !..

काँधल—मैं पता पाते ही प्रगट हुआ ; राणा को धर दबाया। पर वह पापी, वह पिशाच उल्टा और घुड़का। बोला, जाओ, हो वह कर लो ! जब जान ही गए हो, तो मैं भी कहता हूँ, उस घोषणा के नाश के लिए, साम्राज्य की रक्षा के लिए मैंने हत्या

की थी। पर इससे क्या! हम कुम्भा के लिए त्रिभुवन को लात मार सकते थे! क्या मुझे क्रान्ति करना न आता था? पर उस महात्मा के विरुद्ध क्रान्ति? भगवान रुद्र की साक्षी, नागरिको! महाराणा युद्ध के बिना सिंहासन त्याग न करेंगे। उन्होंने अन्तिम उत्तर दे दिया है!

विमलदान—ईश्वर! यह कैसा वज्राघात है? इस घोर पाप के लिए भी तर्क की कसौटी दी गई है। ओह, जगदम्बे! कलियुग में पाप भी पुण्य!

दो-तीन नागरिक—हत्यारे को लात मार कर सिंहासन से उतार दो—

एक—नीचे गिरा दो; कुचल दो। बाप की हत्या!

कुछ—अवश्य, अवश्य। काट डालो नर-पिशाच को!

क्षेत्रसिंह—(कुछ आगे आकर) किसे काट डालोगे? महाराणा ऊदा को? उसे, जिसकी कटार परमात्मा के प्रेम से भरी छाती में तीन तसु गहरी उतर गई, जिसने जैतसिंह को कुत्तों की मौत मार डाला, उस नर-राक्षस के कान पकड़ने की हिम्मत किसमें है?......

काँधल—(तलवार निकाल) इसमें! मेदपाट पितृ-घाती को अपना राणा नहीं मान सकता। न्याय और धर्म हीन राजा भेड़िया है! हम युद्ध करेंगे, युद्ध! धर्म की रक्षा के लिए युद्ध! जो कुत्ते हैं, कायर हैं, नीच और पापी हैं, उन्हें हत्यारे का पक्ष लेने दो। पर हम प्राण रहने तक लड़ेंगे, भगवान् रुद्र की साक्षी! सत्य की

तलवार धर्म का पानी पिये विद्रोह के गगन में खिचीं खड़ी है—

चेत्रसिंह—अवश्य, हम लोग युद्ध करेंगे! हत्यारा हमारा राणा नहीं रह सकता।

१ नागरिक—पर हमारे पास सेना कहाँ है, धन? राणा के पास सब कुछ है!...

दूसरा नागरिक—तब हम कर ही क्या सकते हैं?

काँधल—हम सब कुछ कर सकते हैं! यह सच है कि राणा के पास धन है; सेना है; सब कुछ है! पर हमारे पास समस्त राष्ट्र का धन है! सारा राष्ट्र इस समय से एक महाशिविर है। राजर्षि कुम्भा की दिवंगत आत्मा हमारी शक्ति है। धर्म हमारी भूमि, सत्य हमारा शस्त्र है! शृङ्गमाल के तीर कमान लिये हुए पहाड़ी वीर हमारा मोर्चा हैं......

चेत्रसिंह—और वीराग्रणी काँधल सेनापति हैं!

कुछ—सेनापति काँधल की जय!......[जय घोष]

काँधध—मेरे सैनिक आप सब हैं! मेदपाट का प्रत्येक नागरिक इस समय से इस धर्म-युद्ध का सैनिक है। सैनिको, जिस समय राष्ट्र की बागडोर अधर्मी, पापी, अन्यायी के हाथ में हो, जिस समय धर्म और न्याय की देवियों की छाती में कटारियाँ भिदी पड़ी हों, जब घोर पाप से प्रजा का भाग्य काला हो गया हो, ओह! सैनिको, जब कल्याणमयी क्रांति के मेघ घिर रहे हों, उस समय प्रत्येक साँस लेता हुआ नागरिक सैनिक है, सैनिक!......

बहुतेरे—सच है ! हम मर मिटेंगे, हत्यारे को राज्यच्युत करने पर मिटेंगे !

कुछ—धर्म की रक्षा के लिए हम सब कुछ करेंगे, जान दे देंगे !

क्षेत्र—पर याद रहे, मर मिटना सहज नहीं है ! विष बुझे तीर छाती में, बाहू में, आँख में—रोम-रोम में घुस जायँगे ! दुधारी तलवार गरदन रेंत देगी एक ही झटके में ! बरछी की तीक्ष्ण नोंकें अँतड़ियाँ लूमा देंगी बाहर ; और छाती से खून का धोध फूट पड़ेगा ।

काँधल—परवाह क्या है इसकी ! धर्म के लिए ऐसी हजार हजार मौतें क्यों नहीं मिलतीं ? मरना तो है ही सैनिको ! फिर राष्ट्र के लिए, स्वर्गादयी गरीयसी जन्मभूमि के लिए, अपनी स्वाधीनता की रक्षा के लिए क्षण-क्षण क्यों न मरना पड़े ? क्षण-क्षण क्यों न मरना पड़े ? क्या तुम लोग चाहोगे एक अधर्मी, हत्यारा, नराधम, तुम पर राज करता रहे ?

दो—एक—नहीं, नहीं ! यह कदापि नहीं हो सकता ।

काँधल—क्या तुम चाहोगे तुम्हारे अधिकार छीन लिये जायें, तुम्हें वन्दी और अत्याचार के कोल्हू के तिल बना दिया जाएँ ?

बहुतेरे—ओह, नहीं ! हम अधिकार के लिए मर मिटेंगे ।

क्षेत्रसिंह—रणभूमि की मौत महाभयंकर है ! चिघाड़ते हुए हाथी भारी-भारी पैरों से उदर फोड़ डालेंगे ; कलेजे पिचक

जायेंगे उनकी रौंद से ! रथ के नाचते हुए पहिये के नीचे गर-दन पिचल जायगी ! तैय्यार हैं न ?

काँधल—उत्तर दीजिये ! हमें सर्वस्व त्याग कर शरणीया होना पड़ेगा। जीवन की ममता काच के खिलौने के समान टूक-टूक कर देना होगा। अधर्मी के रास्ते में लोथों का पहाड़ चुन देना होगा ! बोलिये, अधर्म की विकराल लपटों को अपने पवित्र महँगे रक्त से बुझाना होगा। उत्तर दीजिये ! तैय्यार है मेरा शंख आह्वान ध्वनि के लिए ! देखो, हमारा धर्म-ध्वज गगन में काँप रहा है, उत्तर दो !...'

[शोर गुल। फिर शान्ति। कुछ घोंघाट।]

चैत्रसिंह—चुप क्यों हैं आप सब ? उत्तर दीजिये, जल्दी ! सूर्य क्षितिज के पार डूब रहा है ! जल्दी कीजिये ! (सब पर शान्ति छाई हुई है)

काँधल—बस ? यही हमारा जोश था ? कुम्भा की उस प्रेम भरी छाती को याद कीजिये ! याद कीजिये उस गहरे घाव को ! महाराणियों के काले वैधव्य-वेश का स्मरण कीजिये। याद कीजिये, उस महात्मा की आजीवन सेवा को ! धिक्कार है हमें, जो हम इस समय यों जड़ हैं ! मौत से डर गये हम तब ? तब राजर्षि की शिक्षा क्या वृथा हुई ? अब तक भोगी हुई दिव्य स्वाधीनता तब कोरा पानी ही थी ! यही था हमारा कर्त्तव्य उस हुतात्मा के प्रति ?

चैत्रसिंह—जिसने अपनी प्रजा को अपनी संतान से भी

अधिक प्यार किया, उसके प्रति हमारा यही धर्म था कि मौत का भय हमें मूढ़ कर जाये !

विमलदान—यह हमारा उस प्रातः स्मरणीय के प्रति विश्वास-घात है ! ऐसी प्रजा आसुरी प्रजा होती है !

भवानी शंकर—जिसका सर्वनाश यमराज का वरदान है !

काँधल—निमक हराम कृतघ्न जाति पशुओं से भी गई बीती है। जवाब दीजिये।

क्षेत्रसिंह—क्या हम कृतघ्न हैं, पशु हैं ?

काँधल—जागो और उत्तर दो ! जो मरना नहीं जानता, क्या वह भी जीता है ? और फिर धर्म-युद्ध में मरने का क्या डर ? पाप की मृत्यु मौत है ; धर्म की मौत तो अमर होना है ! मेरा शंख आत्मा की वाणी से भर रहा है—

बहुतेरे—(सहसा)—हम लड़ेंगे !

कुछ—मर मिटेंगे !

एक-दो—कुछ भी हो जाय, हम युद्ध करेंगे ! यही उत्तर है हमारा—

क्षेत्रसिंह—(घंटनाद करता हुआ)—क्रान्ति अमर हो !

भवानी—स्वाधीनता के मंगल के लिए, धर्म के लिए—

क्षेत्रसिंह—यह पवित्र क्रान्ति अजर-अमर हो ! देवताओं को हमसे ईर्षा करने दो ! देखो, गन्धर्व हमारा यशोगान करेंगे ; सुरगण पुष्प वर्षा ! इतिहास में प्रत्येक का नाम अमर हो जाने दो ! हे जागृत जाति ! तुझे नमस्कार हो ! तेरी क्रांति अमर हो !

बहुतेरे—हो, अमर हो !

कांधल—स्वाधीनता-संग्राम के सैनिक, धर्म के व्रती हम अमर हैं ! हमारा शरीर भले ही मर जाये ; पर हम स्वाधीन आत्मा कभी नहीं मरते ! हे क्रान्ति ! हमारा प्रतिपल धर्म से, सत्य से, कल्याण से, मंगल कर ! सैनिको ! आगे बढ़ो— (शंखध्वनि)

आधे से अधिक—जय ! जय मेदपाट-माता की !

कुछ—आगे बढ़ो, राजर्षि कुम्भा की जय !

कुछ—हत्यारे ऊदा का नाश हो !

एक-दो—मारो, काटो—

कांधल और चैत्र—विद्रोह ! समर-भूमि को प्रज्वलित करें !

सब—जय, जय एकलिंग ! हर हर महादेव !

[घंटनाद और शंखध्वनि के साथ खलभल]

—

छठाँ-दृश्य

[ऊदा के महल की तिवारी]

ऊदा—नहीं आ रही ? बार-बार बुलाने पर भी नहीं आती...कैसे आवे ? एक बार क्या वह मुझे सर्वदा के लिए क्षमा नहीं कर सकती ?

[गंगा का प्रवेश]

गंगा—हुज़ूर ! क्षेमकर्णजी श्रीचरणों में उपस्थित होना चाहते हैं—

ऊदा—लिवा ला, (गंगा जाती है) युद्ध ! युद्ध, अपनी प्रजा के विरुद्ध युद्ध ! राजा के जीवन में यह कैसी विडम्बना है ! पर (विवश क्रोध के साथ) वे मुझे अपमानित करना चाहते हैं। राज्यच्युत ! मुझे, मेदपाटेश्वर उदयसिंह को राज्यच्युत ! यह हो नहीं सकता ; यह राज्य मेरा है—

[क्षेमकर्ण का प्रवेश]

क्षेमकर्ण—क्षमा किया जाऊँ, अभी कष्ट दे रहा हूँ, हुजूर ! पर क्या करूँ ? परिस्थिति उलझ रही है ; हमारे पक्ष के लोग भी धीरे-धीरे उनमें मिलते जा रहे हैं। अपनी सेना में घृणा और अविश्वास के भाव भरे जा रहे हैं। यों विखरी भिड़न्तें आदमियों का नाश भर कर रही हैं। तंग आकर हुजूर के पास आया हूँ ! मालूम होता है सारा मेदपाट उलट गया है—

ऊदा—(घूमता हुआ) हूँ ! ठीक है।

क्षेमकर्ण—(मन ही मन झुँझलाहट दबाकर) राणाजी, अधिक सोचने-विचारने का समय अब नहीं रहा। अन्तिम युद्ध के लिए रण-वाद्य बजवा दीजिये ! भवानीपुर का रण-मैदान कब तक राह देखता रहे, हुजूर ?

ऊदा—(रुक, विचार मग्न) ठीक है ; युद्ध होगा ही तब। अन्तिम युद्ध...अच्छा ! क्या सेना में अविश्वास पैदा हो रहा है अब ? फूट पड़ रही है ? अच्छा ! ठीक ही तो कर रहे हैं वे ! हाँ...

क्षेमकर्ण—(बीच ही में) आज प्रातःकाल ही मैंने तीन सैनिकों को षड़यंत्र करते हुए पकड़ पाया। शत्रुओं से मिल जाना चाहते थे। मैंने उसी दम यमपुर भेज दिया ; और क्या करता ? कब तक घेरा डाले पड़ा रहूँ ?

ऊदा—क्षेमकर्णजी, मुट्ठियाँ भर-भर धन बाँटिये ; पर किसी की भी छाती यों तीरों से न भेदिये—नहीं, सेनापति ! यह अब

न होगा ! जो मन से अपनी ओर रहना नहीं चाहता, उसे उस ओर जाने दीजिये। धन यदि उन्हें इधर रख सकता हो, तो अवश्य रखिये।

क्षेमकर्ण—यह मैंने पहले ही कर देख लिया, अन्नदाता ! पर क्षणिक जोश भरने के सिवा और कुछ नही होवा ! मोहर सिपाहियों का मन नहीं खरीद सकती। मेरे विचार से भवानी-पुर मैदान की ओर बढ़ जाना ही ठीक होगा। बीच में रसद और आदमी दोनों ही मिल सकेंगे। हमारे मार्ग में काफ़ी गाँव पड़ते हैं ; छापा मार लूँगा !...

ऊदा—यह भी न होगा ! राव, अविश्वास का रोग नाबूद कीजिये। घृणा की सर्वनाशी बाढ़ रोकिये और सब कुछ ठीक हो जायेगा। मैं नहीं चाहता, हमारे अश्वों की धूल से खपरैलों के केलू भर जायें। नहीं ! मैं नहीं चाहता, हाथियों की चिंघाड़ों से जुगाली करते पशु भयभीत हो उठें। ओह नहीं, उस स्वर्ग को रक्त-रंजित नहीं करना चाहता मैं...अब यह न होगा !

क्षेमकर्ण—तब फिर हुज़ूर ही बतायें, मैं क्या करूँ ? सेना में भंग ज़ोरों से पड़ता जा रहा है ; दुश्मनों ने कवियों की फ़ौज की फ़ौज छोड़ रखी है। धर्म और देश-प्रेम के गीत ललकारते वे घूमा करते हैं। भाट कुम्भा की कीर्ति कहा करते हैं—एक नशा छाया हुआ है उन सब पर—क्या वे त्रिभुवन को जीतना चाहते हैं, मैं सोच-सोच कर हैरान हो रहा हूँ !

ऊदा—(उसके पास आ निरखते हुए)हुँ, तब आप भी निराश हो गये, क्यों ?

क्षेमकर्ण—मैं ? निराश ? हर्गिज़ नहीं—मैं जानता हूँ, कुम्भा ने मुझे तबाह करने में कुछ उठा न रखा था। मैं वे अपमान और सर्वनाश के डँसते हुए दिन नहीं भूला ! खून की एक बूँद रहते तक मैं पीछे न हटूँगा। आज्ञा हो, तो कुछ अन्य उपायों से काम लूँ ?

ऊदा—समझा ! पर सेनापति, उपाय युद्ध मर्यादा के विरुद्ध न हों, समझते हैं ? यह युद्ध है—(घूमता हुआ)—युद्ध, राजा और प्रजा का युद्ध, समझते हैं ! हम दिल खोल कर लड़ेंगे—और क्या ? है न ? (खड़ा रह कर) हम दोनों अन्त तक मर मिटेंगे, और क्या ? देखो, संध्या के नारंगी मुखड़े पर अँधेरी का काला पर्दा खिंचा आ रहा है—देखा आपने ? सहनाई कहाँ है ? सेनापति, मुझे ऐसा मालूम हो रहा है यह रात कभी न बीतेगी। कूच कर दो आज दूसरा पहर बैठते-बैठते और कल प्रभात को एक लोमहर्षक दृश्य को देखने चौंक जाग जाने दो ! जाइये, मैं पीछे-पीछे हूँ—जब युद्ध ही हमारा ध्येय है, तो तलवार सोती क्यों रहे ? फतह, सेनापति ! मेरी घुड़-टापें प्रतिध्वनि से प्रतिध्वनि मिलाती रहेंगी—परवाह मत करो, पक्षी घोसलों में लौट रहे हैं तो !'...

क्षेमकर्ण—यही तो मैं चाहता था, राणाजी ! अन्तर्केतन्त युद्ध !... (प्रस्थान)

ऊदा—क्या विश्रान्त सेना पर धावा बोल दूँ ? धर्म-भ्रष्ट कर दूँ उसे क्या ? नहीं—नहीं ! ऊदा मरने के लिए लड़ रहा है, जीने के लिए नहीं। जब मैंने सर्वस्व खो दिया है, तो मुझे मर ही जाना चाहिए ! मैं लड़ रहा हूँ ; कठपुतली की तरह राज्य छोड़ना नहीं चाहता ; अपमानित होना नहीं चाहता। वे नहीं जानते, मैं कितनी लपटों में जला हूँ...ओह ! यदि वे जानते—गंगा ?

[गंगा चुप-चाप आती है ।]

जा, महाराणी से कह कि बीमार कुँवर को लिये तैयार हो जायें। हमें यहाँ से कूच कर देना होगा। तू भी चलेगी ; जवाहरात ले लें, जा ! बाग़ी महलों तक अवश्य बढ़ आयेंगे। सूने प्रासाद की ईंट प्रतिहिंसा की आग में चटख उठेगी, जा ! (गंगा जाना चाहती है) ठहर तो ! (गंगा ठहर जाती है)

ऊदा—राणी तुझसे कुछ कहती थीं ?

गंगा—सरकार...

ऊदा—डर मत ; कह दे ! मैं नाराज़ न हूँगा ; कह दे तो !

गंगा—कुछ नहीं, अन्नदाता ! माजी सरकार जब रायमल हुज़ूर के यहाँ पधार गईं, तो मालकिन इतना ही बोलीं मैं भी चली जाऊँगी ; और फिर—

ऊदा—फिर ? और फिर ??...

गंगा—कुछ नहीं हुज़ूर ! फूट-फूट कर रोने लग गईं। कह आऊँ, अन्नदाता ! (प्रस्थान)

ऊदा—कितनी विजन रात है—(घूमता है)

[नेपथ्य में—महाराणा उदयसिंह की जय हो ! कूच—(रणवाद्य)]

ऊदा—सेना कूच कर रही है ! रणभूमि की ओर उठ चली मृत्यु से प्रेम करती रक्त-प्यासी सेना ! मृत्यु का यज्ञ प्रज्वलित होगा कल सुबह, जब जंगल के किसी कोने में फूल खिलेंगे ! ऊदा, कितना अपार अन्धकारमय यह आकाश है !

[नेपथ्य में—मेवाड़ माता की जय ! सैनिको, कूच ! शत्रु-सेना युद्ध भूमि की ओर, कूच ! राष्ट्रवीर काँधल की जय ! धर्म वीर रायमल की जय। महाराणा कुम्भा की जय !!]

ऊदा——महाराणा कुम्भा ? कैसा परिवर्तन—मैं लड़ूँगा, अवश्य लड़ूँगा ! देखता हूँ, कैसे कोई मेरा सिंहासन ले लेता है ? कैसे, देखता हूँ—ओह ! ऊदा, क्या, सब यों वृथा हो जायेगा ?

[नेपथ्य में—अजर हैं, अमर हैं ; न जीते-न मरते ! (कूच फिर रुक) देश के लिए, निज देश के लिए—(कूच) लड़ेंगे, लड़ेंगे ; लड़ेंगे, लड़ेंगे...]

ऊदा—आन पर लड़ मरो। अब उसके बिना इस जीवन में बचा ही क्या है.! मैंने सर्वस्व खो दिया है ; पर अपने आप को नहीं। देखता हूँ जीते जी मुझे कोई कैसे सिंहासन से नीचे उतारता है ! ओह, देखता हूँ, कैसे ?...

[नेपथ्य में—धर्म के लिए, निजदेश के लिए (कूच फिर रुक) मरेंगे, मरेंगे ; मरेंगे मरेंगे ! (कूच) अजर हैं, अमर हैं ; न जीते न मरते...]

ऊदा—पराजित ही मरूँगा, तो भी महाराणा ही रहूँगा। च्युत जीवित रहूँगा भी, तो शव की तरह!! ओह! तब यह जीवन आज के साथ समाप्त क्यों न हो? मैं अवश्य लड़ूँगा—

[महाराणी का प्रवेश]

ऊदा—राणी! (आगे बढ़कर) आखिर तुमने मुझे क्षमा—

राणी—वहीं! एक पैर भी आगे न बढ़िये......

ऊदा—(रुक, आतुर उद्वेग के मारे देखता हुआ) महाराणी...?

राणी—नहीं, नहीं! कुछ नहीं—मैं कुछ नहीं! मैं? एक तुच्छ निराश हतभागिनी! और, और कुछ नहीं!

ऊदा—(आगे बढ़) राणी, प्रीतम! प्रिये—पर...

राणी—(सहसा घूम, सघृणा) चुप रहो! कह न दिया, मुझे राणी न कहो, न कहो! कह न दिया? प्रिये! उँह, प्रिये! (आँखों में आँसू) दो-दो बार मेरा प्राण लेकर अब प्रिये! (तीव्र आवेश के साथ जोर से) दूर हटो तुम! ओह्, विश्वासघाती! (सिर कूट) मैं मर गई! (पुनः गर्ज) न हटे मेरे सामने से? मैं तुम्हारे साथ चलने नहीं आई। तुमको, तुमको—जैतसिंह को मारने जाने के पहले मुझे दो टूक क्यों न कर गये तुम? (विक्षिप्त-सी) तुमने मुझे दो-दो बार मार डाला!

ऊदा—राणी, राणी! ईश्वर के लिए इस समय मुझ पर दया करो। देखो सिर पर युद्ध हुंकार रहा है! सुनो तो, राणी सुनो भी, मैं जैतसिंह को मारने नहीं गया था। द्वन्द्व-युद्ध, समझो! उधर क्या देख रही हो? मेरी ओर देखो, सुनो तो...

राणी—क्या देखूँ तुम्हारी ओर ? मेरा और मेरे पूत का काला लहू रँगा है तुम्हारे मुख पर, क्या देखूँ अब ? अब वहाँ है ही क्या ? तुमने मुझे मार डाला। प्रेम करता हूँ, प्रेम ! यही था न तुम्हारा प्रेम, यही न कि मुझे दो-दो बार मार डालो ? ओह् राणा ! मैं अब जीकर क्या करूँ ? मेरा सारा बल हर गया; सर्वस्व लुंट गया; अब किसके लिए जीऊँ ?...

ऊदा—किसके लिए जिओ अब तुम ? ठीक ही तो है—

राणी—(सर्वांग काँपती हुई) ठीक है न तब ? ठीक है न ? शर्म न आई यह कहते हुए ? बाप को मारा, भाई को मारा और अब सारी प्रजा का रक्त बहाने जा रहे हो ! शर्म भी नहीं आती राणा ? राक्षस का अवतार हो, अवतार ! पाप को छिपाने पाप ! तुम मर क्यों न गये ! पापी, यह धरणी आज तुम्हारे भार से काँप रही है।

ऊदा—राणी, आज तुम भी यों कोस रही हो !

राणी—तो क्या करूँ ? चरण पखार कर पिऊँ ? बड़े आये हैं उलहना देनेवाले ! तुम्हारा मुँह देखना भी पाप है ! पाप—तुम पाप की घिनौनी मूर्ति हो !

ऊदा—(आघातित-मूढ़-सा)—पीतम—

राणी—एक बार नहीं, हजार बार ! लाख बार, करोड़ बार !! ओह्, इस जलने से तो मर जाना अच्छा ! मैं जीवित नहीं रह सकती अब। आँखें अंधी; मन जला; ऐसी मैं इस अन्धेरे में कैसे जीऊँ ? ओह भगवन् ! जिसे मैं देवता की तरह पूजती थी,

उसी ने मुझे दो-दो बार मार डाला! अब जीकर क्या करूँ—क्या? (विष की डिबिया निकालती है) ज़हर! जीवन का यह विष हर ले—

ऊदा—(दौड़कर हाथ पकड़ लेता है)—राणी, राणी! पीतम! क्या ग़जब कर रही हो? क्या ग़ज़ब! मुझे—मुझे मुँह दिखाने योग्य तो—पीतम, क्या गजब...

राणी—(हाथ छुड़ाने की प्राणपण से चेष्टा करती हुई)—मुझे सुख से मरने तो दे! दूर हट हत्यारे!......

ऊदा—हत्यारा—! (सहसा दूर हट जाता है) ओह ऊदा! (सिर धुन, मूर्च्छित-सा जड़ रह जाता है)

राणी—प्रेम करता हूँ! झूठ! कायर, विश्वासघाती, नृशंस! ओह! हत् भागिनी! तेरी आराधना का यह फल? यह वरदान जीवन भर की साधना? (पुड़िया खोलकर) मर जा, मर जा (पुड़िया फाँक जाती है) ओह, कुँ—व—र! मे—रा—लाल—(नेपथ्य की ओर चक्कर खाती हुई भागती है)

ऊदा—(सहसा जाग्रत होता हुआ)—सपना, भयानक सपना! आघात—नहीं! (घूम) राणी? क्या? तब, तुमने—विष?... (त्वरा से अन्दर प्रस्थान)

सतवाँ दृश्य

[रणभूमि का एक भाग । ऊदा का तम्बू । सामने छोटा मैदान]

[नेपथ्य में, सुदूर—मारो, जय ! काटो, हरहर महादेव ! शोर गुल । गहरा युद्ध ।]

ऊदा—(ध्यान में)—जैसे कोई कभी भी पाप नहीं करता। मैं ही अकेला पापी हूँ, इस दुनिया में। मैं ही ! दिन हो गये लड़ते लड़ते ! आज अन्तिम खेल है, अन्तिम ! क्षेमकर्ण हटते दिखे कि मैं वह छिपा जत्था, अन्तिम आशा, अन्तिम वह बल लेकर टूट पड़ूगा । कुँवर ऐन मौके पर अड़ बैठा ! जल्दी मरता भी नहीं । ओह ! उसका कष्ट देखा नहीं जाता—

[गंगा का प्रवेश ।]

गंगा—हुजूर, अन्दर चलिये, कुँवर का जी अच्छा नहीं है । एक बार देख लेते । अब तो माँ-माँ की रट भी धीमी पड़ गई, अन्नदाता ! (गद्‌गद्) मालकिन ! होगा, हजूर !

ऊदा—(वैसे ही)—कल मरता हो, तो आज मरजाने दे। तू जा ; बार-बार मुझे तंग न कर। कैसा पूत, कैसी राणी ! सब वृथा है, सब ढोंग है। सब पत्थर के पुतले हैं—पत्थर के कठोर ! गंगा ! तू जा, तू मुझसे घृणा नहीं करती ? मेरा सर्वस्व रक्तरञ्जित है, शरीर मन—सब कुछ। तब तू मुझसे घृणा नहीं करती क्या ? बोल गंगा, तेरी मालकिन तो मुझ पर मर गई... (स्थिर खड़ा रह जाता है।)

गंगा—हुजूर को चाकर हूँ। अन्नदाता से घृणा कर कहाँ जाऊँगी ? मालकिन ने बहुत बुरा किया ; बहुत ही बुरा ! जैसे उनको किसी की माया ही न रही ! दुनिया में कौन भूल नहीं करता, मेरे अन्नदाता ? मुझे तो यही दिखता है कि पाप ही से हम सब जन्मे हैं। भगवान के सिवाय और कौन पाप नहीं करता ?

ऊदा—(घूम, अविश्वास-भाव से)—यह—यह तू बोल रही है, गंगा ? तू ! इस निर्मम संसार में यह तू बोल रही है ? नहीं—यह मेरा सपना है ! (वापस घूम जाता है)

[तम्बू में क्षीण क्रन्दन]

गंगा—मेरे लाल—(तम्बू की ओर भागती है। अन्दर)

ऊदा—(उधर देखकर)—कदाचित् वह अब न बचेगा ! माँ के बिना कौन जीवित रहता है भला ? मैं भी जैसे माँ से हीन हूँ, अकेला ! समस्त संसार में अकेला, विजन ! मेरा कोई भी नहीं—कोई भी नहीं ; लेकिन मेरा कोई था भी तो नहीं ! सब स्वार्थ

के सगे थे—हैं ! मूरख मैं था, जो सबको अपना समझे हुए था । ओह, ऊदा, यह कैसा विषम सत्य है !

[नेपथ्य में—जय कांधल की ! मारो-मारो ! जय रायमल की !...]

ऊदा—शायद मैं हार रहा हूँ—हार !

[नेपथ्य में पास ही—मर मिटो ! शत्रु भाग रहे हैं—
धंसो आगे ! फतह !!]

ऊदा—क्या युद्ध का अन्त निकट है ? ऊदा, युद्ध का अन्त निकट है !...

[नेपथ्य में दूसरी ओर—मर मिटो सैनिको !...]

ऊदा—यह तो क्षेमकर्ण का स्वर है ! शायद अन्तिम धावा—चलूँ—

[नेपथ्य में बहुत पास—कट गये हत्यारे ! कहाँ है ऊदा ?
मारो—जय ! जय !!]

ऊदा—कुँवर ? गंगा ? मैं चला, छिपे जत्थे के साथ मैं—

[सहसा क्षेत्र, काँधल, सलूंबर, भवानी कुछ सैनिक आदि का शीघ्रता पूर्वक प्रवेश]

क्षेत्रसिंह—कहाँ है हत्यारा ? (सैनिकों से) उस तलेटी में एक जत्था छिपा है, काट डालो—जाओ !

सैनिकगण—जय ! जय !!... (प्रस्थान)

क्षेत्रसिंह—कहाँ है वह ?

सलूंबर—यह रहा—

काँधल—ऊदा ?

ऊदा—(रुक, घूम)—कौन काँधल ? हाँ, कहो—

नागोर—पितृघाती ! किस मुँह से बोल रहा है ?

भवानी—प्रजा के शत्रु ! अत्याचारी ! (कुछ आगे बढ़ आता है)

काँधल—तुम्हारी सेना कट गई। बेईमान कुत्तों की मौत मारे गये। आत्म-समर्पण करो ! तुम्हारी सब चेष्टा कालकवलित के समान वृथा हैं।

चेत्रसिंह—एक जत्था छिपाये बैठे थे ! हा-हा-हा ! वह भी अब तक स्वाहा हो गया होगा। नीच, तुझे जन्मते ही ज़हर क्यों न दे दिया गया ?

ऊदा—काँधल, तुम भूलते हो। अभी सेना में एक योद्धा बचा है। वह मैं हूँ ! संख्या शून्य में समाप्त होती है ; अभी तक तो एक मौजूद है। आत्म-समर्पण ? तुम लोगों को ? मूर्खो, मैं कभी का अपने को विधाता के हाथों सौंप चुका हूँ !...

भवानी—ओहो ! हत्यारे भी अब शंकराचार्य बनने लगे—हा-हा-हा !

चेत्रसिंह—आज्ञा हो तो अभी मुश्कें कस लूँ, काँधल !

काँधल—तब तुम लड़ना चाहते हो, क्यों ? बहुत अच्छा। इनमें से किसी एक को चुन लो। अपनी अन्तिम कामना भी पूरी कर लो, ख़ूनी !.....

सिंहपुर—बेशर्म कहीं का !

ऊदा—मुझे स्वीकार है, काँधल ! इच्छा तो थी, तुम सब और मैं अकेला रहता। यों तो कामना हमेशा अमर है—कामना ही जीवन है, काँधल !......

भवानी—यथार्थ है, भगवन्! हा-हा-हा!......

काँधल—ऊदा, सभी को अपने जैसा मत समझो। हमें ईश्वर का डर है!...

ऊदा—और मुझे भी! यदि वह हो तो—कहाँ है वह ईश्वर इस दुनियाँ में? यदि है, तो भी मैं नहीं जानता! होगा, इस समय किसी को क्यों कोसूँ? तुम्हीं आओ, काँधल! मेवाड़ भर में तुम्हीं वीर हो! तुम्हारे झटकों का स्वाद चखने की इच्छा बाकी रह गई है अब!......

काँधल—तब आओ, ऊदा। जय एकलिंग—

ऊदा—(तलवार निकाल)—यह मेरा अन्तिम युद्ध है; अंतिम स्वप्न जीवन का; अन्तिम संगीत! तब दीपक हीन और अन्धा मैं किसी अन्य लोक में प्रकाश देखूँगा! काँधल! मुझे टुकड़े-टुकड़े कर दो! आओ, मुझे इस जीवन की ज्वाला से उबार लो। जय एकलिंग।......

[दोनों दिल खोलकर लड़ते हैं]

काँधल—ऊदा! ऊदा!! तुम बचाव भर करते हो! वा करो—मैं कितने किये जाऊँगा?...

ऊदा—(बचाता हुआ)—जितने चाहो, असंख्य! मैं मर मिटने के लिए लड़ रहा हूँ।

(तम्बू में—हुज़ूर! हुज़ूर! दौड़िये कुँवर शान्त हो गये। हाय राम रे।)

ऊदा—हैं! कुँवर गया? मेरे पहले गया? (तलवार फेंककर) मैं हार गया काँधल! (तम्बू में झपटता है)

(रायमल का सरदारों के साथ प्रवेश)

सब—महाराणा रायमल की जय !...(नेपथ्य में विजय-गान)

रायमल—महाराणा रायमल ? सूरज क्या हुआ ?...

क्षेत्रसिंह—राजकुँवर सूरज कुछ ही पल पहले स्वर्ग सिधार गये, श्रीमान् !

रायमल—शोक ! असीम शोक !...

सिंहपुर—हत्यारा पुत्र शोक में विकल तम्बू में है, महाराणा !......

रायमल—उसे अपने भाग पर छोड़ दो। हारे हुए को और क्या हराना ! सेनापति, यह विजय अन्त में मेदपाट के सच्चे उत्तराधिकारी की मृत्यु से विषादमयी हो गई ! सैनिकों से कहो, अपना विजय गान बन्द कर दें। और कुँवर का फूल सा शरीर लेकर सब लौट चलो ! मेरे लिए तो वह उस दिन से महाराणा ही थे—

क्षेत्रसिंह—अवश्य, वही हमारे महाराणा थे। शोक है, हमारे विजय गान यों बन्द हो गये !

विमलदान—पर क्या किया जाय ? उनका अन्तिम संस्कार हो जाना चाहिए !.....

रायमल—अवश्य विजयिनी सेना ही लौटती हुई उन्हें श्मशान में पधराती चले ! आँसुओं में ही हम इस विजय का उत्सव मनावें !

[कुँवर के शव को छाती से चिपकाये ऊदा का प्रवेश, पीछे-पीछे गंगा]

ऊदा—मेरा धन, मेरा सिंहासन, मेरा सर्वस्व यह, गंगा! इसे मैं किसी को न दूँगा!

गंगा—मेरे मालिक, सुनो तो—सुनो तो—

चैत्रसिंह—(आगे बढ़कर)—वहीं खड़ी रह, छोकरी! उसे मत छू! दानजी, आप शव को ले लीजिये। मैं उसे देख नहीं सकता!

रायमल—और मैं भी नहीं! आँसुओं के समुद्र में आँखें देख नहीं सकतीं!

दानजी—(आगे जा, शव लेने को उद्यत)—उदयसिंह जी! यह शव मुझे दे दो—

ऊदा—हूँ! मेरा हृदय चाहते हो! कलेजा? आँखें? क्या? मेरे पास कुछ नहीं है! कुछ नहीं—

दानजी—(रोते हुए)—सुख-दुःख तो जीवन का धर्म है, जिवड़ा! शव पर रोकर क्या करोगे! कर्मों पर रोते, तो आज यह न होता—

चैत्रसिंह—उस नीच से बातें कर वाणी दूषित न करो, दानजी! शव छीन लो—

भवानी—मैं करता हूँ, यह!......(आगे बढ़कर सहसा शव छीन लेता है)

ऊदा—उसे मत लेजा, मत लेजा! मुझे दे दे—दे दे!! मेरा सिंहासन ले गये; सर्वस्व छीन लिया; उसे तो दे दो! दे दो—गंगा, उसे ला दे!! ला दे—(मूर्छित)

रायमल—प्रस्थान ! मेदपाट का इस अपवित्र से कोई संबंध नहीं है !

क्षेत्रसिंह—चारण-भाटों को चाहिए उसका इतिवृत्त ही न लिखें हत्यारे का इतिहास कैसा !

[सबका प्रस्थान । काँधल अकेला रह जाता है ।]

काँधल—संध्या हो रही है, मैं भी चलूँ ! इसके साथ इसका पाप है; मैं क्या करूँ ? पर मैं जाऊँगा कहाँ ? एक महाराणा यह मूर्च्छित पड़ा ; एक का शव इन आँखों से देखा ! और दूसरा यह अभी गया ! राजाओं का यह चक्र चलता ही रहता है। मैं क्या करूँ, यही सोच रहा हूँ। भगवान् रुद्र ! यह काँधल कहाँ जाये ? प्रजा का राज तो आज स्वप्न है ! और उसके बिना जैसे मैं अब जीना नहीं चाहता ! यह मृत्यु का वैभव, अत्याचार और पक्ष-पात पर स्थित शासन मुझे नहीं चाहिए ! कुंभा, तुम्हारे संदेश का सत्य इस शान्त सुनसान रणभूमि पर सजीव हो रहा है ! मैं अज्ञात वास लूँगा—(प्रस्थान)

गंगा—(मूर्छित ऊदा को टटोल)—मेरे मालिक ! अन्न-दाता !......मैं तुम्हें छोड़ कहाँ जाऊँ ? यों मूर्च्छित अकेले त्यक्त पराजित मेरे धणी ! तुम्हें छोड़ मैं कहाँ जाऊँ ? (हवा बहती है) हवा ! मेरे पैरों को शक्ति दो, इनके साथ चलती रहूँ ! (सूर्य डूबता है) डूबते हुए सूर्य ! अपना बल मुझे दे जाओ, मैं इनकी चाकरी करती हूँ—अन्नदाता ! उठो, संध्या ढल रही है।

आठवाँ दृश्य

[गोधूलि ; मार्ग । आगे-आगे ऊदा ; पीछे-पीछे गंगा]

गंगा—(जाते हुए ऊदा को रोकती हुई)—अन्नदाता ! एक पल ठहरिये । ठहरिये, मालिक !...

ऊदा—(रुक, घूम)—जाओ, चली जाओ—चुपचाप चली जाओ ! मेरा मुँह मत देखो ; मत देखो !...(भगाने की चेष्टा करता है ; हवा बहती है ; आकाश में बादल ।)

गंगा—मेरे मालिक ! मेरे राजा, सुनो भी ? शिविर में चलो । यों पागल की तरह मैं न जाने दूँगी ! नहीं, इस आते-आते आँधी-पानी में यों न जाने दूँगी...

ऊदा—(उसकी ओर स्थिर देखकर)—कौन मुझे अब रोक सकता है ? मैं गति ही गति हूँ—वेग, एक अंधा अविराम वेग !

मैं आग की दुनिया में हमेशाँ जलने वाला एक सपना हूँ, गंगा ! मत रोक—(सहसा चुप)

गंगा—इतनी विपदायें सिर पर आईं ; पर चूँ तक न किया—अब यों दुःखी होने से फ़ायदा ? शिविर में चलिये, अन्नदाता, और आगे के लिए शान्त चित्त से कुछ सोचिये—

ऊदा—स्वप्न ! तुम एक सुन्दर स्वप्न हो। दासी—गंगा दासी ? ऐसी देवियाँ भी दासी ? हा-हा-हा, मूर्खानंद ! हत्यारे को प्रेम करनेवाली देवी दासी ! शिविर ? ना, ना ! यह अँधेरा मार्ग ही मेरा पथ है—आँधी-पानी ! ओह, गंगा, तुम चली जाओ। तुम जाओ ! तुम जाओ—हेली, एक तूफ़ान, फिर दूसरी हेली ! तुमने न देखा गंगा ! आँधी मेरा भाग्य, मृत्यु मेरा विनोद है—तुम जाओ मैं आज्ञा देता हूँ !

गंगा—कहाँ जाऊँ ? (रोती है)

ऊदा—जहाँ सुखी जाते हैं ; पुण्य-भागी जाते हैं—जहाँ मनुष्य जाता है ! तू जा—ओह, कहाँ हैं वे प्रेम-थिरके बाहू, शान्ति भरी अँखियाँ, ममता-मधुर गोद ? कहाँ है वह गोद ? कहाँ है वह स्वर्ग, कहाँ ? उड़ गया, निशाचर की फूँक से सब उड़ गया ! उड़ गया—(मेघगर्जन) बादल भी यही कहते हैं, गंगा ! सुना तुमने ? पीतम की कुछ बात कहते हैं—कोसते हैं क्या मुझे ? गंगा !

गंगा—ईश्वर ! इन्हें क्या हो गया ?

ऊदा—ईश्वर ! ईश्वर !! कहाँ है ईश्वर !!! कहीं नहीं, कहीं

नहीं—कहीं नहीं ! जीवन विष है ; घृणा की ज्वाला है ; निविड़ अंधकार है । ईश्वर कहाँ है ? चारों ओर अंधकार उमड़ रहा है ; भूत नाच रहे हैं और मैं जल रहा हूँ—जल रहा हूँ, गंगा ! किस उज्वल समुद्र में डूब मैं बुझ जाऊँ, तू ही कह ? मैं जाता हूँ । सुख के उद्यान में मैं एक अनादि पतझर हूँ—छोड़ ! मुझे जाने दे—

गंगा—(पकड़ कर)—मेरे धणी ! मेरे अन्नदाता ! विपदा में यों धैर्य खोते हैं ? धीरज धरो ! (रोती है) मालकिन ! जहाँ कहीं हो, आकर इन्हें शान्ति दो !......

ऊदा—(घूम, जैसे याद कर रहा हो)—तुम रो रही हो ? क्यों, जाओ—गाना बन्द करो !

गंगा—(आँसू पोंछती हुई)—मैं नहीं रो रही, अन्नदाता !

ऊदा—(स्वयं ही)—कुछ नहीं राणा, आओ सोयें !...सो गई (घूमते हुए) बच्चे की तरह सो गई ! पर—पर, मैं जाग रहा हूँ ! कौन है ? तुम, जैतसिंह ! चोर की तरह आने का मतलब ? जीवन एक अनन्त मार्ग है, जैतसिंह ! सपने में सपना ; कामना में कामना !

गंगा—हे भगवन् ! ये पागल हो गये ! अब मैं क्या करूँ ?...(मेघ-गर्जन)

ऊदा—राणा, राणा ! महाराणा ! वहीं—एक पैर भी आगे मत बढ़ो ! वहीं—(नाट्य करता हुआ) सुना नहीं—इस दीपक पर मत घा कर ! मत कर !

गंगा—अब क्या करूँ ? [मेघ-गर्जन के साथ हवा] शायद पानी आ रहा है !

ऊदा—आओ, (बैठ जाता है) मेरे अंक में सिर रखकर सो जाओ। मैं प्रार्थना करूँगी। चलो ! (फिर घुटनों पर) हे, हे ! मेरे स्वामी को प्रकाश—(उठकर) प्रकाश ! गंगा, क्या सवेरा हो रहा है ?

गंग—अन्नदाता, चलो शिविर में, यह तो रात हो गई है—

ऊदा—रात ? तब आओ राणा, सोयें—(लेट जाता है)

गंगा—(हाथ मलती हुई)—दुःख ने धैर्य के दाँत तोड़ दिये। तुम दया के अवतार हो, तो एक जीव को इतना दुःख क्यों देते हो ? रात हो गई; इस घने भयानक जंगल में अब मैं क्या करूँ ? कहाँ जाऊँ इन्हें छोड़ कर—

[मशाल लिये गंगा के पति का प्रवेश।]

गंगा का पति—(ध्यान से गंगा को देख)—मिल गई। रांड़ हत्यारे के पीछे-पीछे मारी-मारी फिरती है, पापिनी ! (धक्का मार) आगे हो—नहीं, मसाल से मुँह झुलस दूँगा।

गंगा—जरा दया करो। एक दिन इन्हीं को झुक-झुक कर प्रणाम करते थे। अब तक इन्हीं के अन्न से पले हो। दुःखी पर कलंक का पहाड़ न लादो। वह तो पहले ही पिचल गया है।

गंगा का पति—अबे, शासतर की बहू ! आगे हो, आगे। पलते थे तब पलते थे ; आज तो मैं इसे जन्मभर तक पालूँ। हत्यारा कहीं का!! संत का रकत बहाया ! राज के लिये हत्या की !

(आकाश की ओर देख) चल, खोजते-खोजते पैरों में पानी उतर गया। चल, पानी आया ही समझो!

गंगा—परमात्मा! क्या करूँ?

वह—परमात्मा की बच्ची! (हाथ पकड़ घसीटता हुआ) चलती है या नहीं! क्षेत्रसिंह जी हज़ूर ने फरमान निकाला है। हत्यारे को रखेगा, उसे मौत मिलेगी! चल, आगे हो।

गंगा—पर, पर! इस अँधेरी में इनका फिर कौन है! मुझे छोड़ दो—

वह—छोड़ कैसे दूँ? आई है बड़ी भगतन! चल— (घसीट कर ले जाता है)

ऊदा—(नींद ही में उठता है) हाँ, चला आ रहा हूँ। कहाँ तक चलना होगा, राणी! राणी! (वर्षा की प्रथम बूँदें) राणी! मुझे छोड़ कर कहाँ जा रही हो, कहाँ? (हड़बड़ाकर आँखें खोल देता है) गंगा! (बिजली होती है) गगा! (मेघगर्जन) कोई नहीं? घुमड़ते बरसते बादलों के सिवा कोई नहीं? (अट्टहास्य) मेवाड़-नाथ, छत्रपति! महाराणा!! तुम्हारी पुकार का उत्तर बादलों के सिवा कोई नहीं देता आज? ओह ऊदा! इतनी जल्दी हार गया? युद्ध में हार गया इतनी जल्दी? जीवित है तब हार कैसे गया? कैसे? नहीं, मैं नहीं हारा—नहीं? मैं पुनः लड़ूँगा, पुनः (हेली) परवाह नहीं आँधी-पानी की। जीवन विपदा की बारिश है, पर मैं कौंधनेवाली बिजली हूँ, बिजली! अँधेरे बादलों में मैं वह प्रकाश हूँ, गंगा! ओह, तू भी छोड़कर चली गई? तू भी गंगा?

दुःखी, विजन, एकाकी पतित—पतित ? ऊदा, क्या तुम पतित हो ? नहीं, नहीं, नहीं ; कौन पतित कहता है तुम्हें ? कौन ? जबान खींच लूँ उसकी ! सारी दुनिया पापी कहती है तुम्हें ? अच्छा, ऊदा बता देगा कौन पापी है ? (बिजली, मेघ-गर्जन, वर्षा) बता दूँगा, जाता हूँ सुल्तान के पास, सेना लाता हूँ ; लड़ता हूँ—सिंहासन, मेरा सिंहासन ! राणी, कुँवर—दूर हट हत्यारे !...राणी ! तुम भी... ओह !

[बिजली की कड़कड़ाहट]

ऊदा—(पागल) बिजली, अँधेरा और मूसलाधार वर्षा और मैं अकेला ! पर, पर मैं क्या परवाह करता हूँ ! (इधर भाग) सेना दो सुल्तान ! लाओ, अब मैं अवश्य जीतूँगा ! (उधर भाग) किधर जाऊँ ? कहाँ जाऊँ ? सैनिको ! इधर चलो, इधर (पागल-सा इधर-उधर भागता हुआ) कूच जारी रखो ; अभी पहुँच जाते हैं, अभी ! (मूसलाधार वर्षा) जल्दी करो ! परवाह मत करो भीजने की ; मत करो ! यह तो होता ही रहता है ! एक उद्देश्य ! कूच जारी रखो ! प्रतिहिंसा ! (विद्युत् की कड़कड़ाहट) वह रहा सिंहासन ! मेरा सिंहासन ! दौड़ो, जल्दी करो ! कौन लेता है उसे मैं देखता हूँ। तू, रायमल ! ओह, सैनिको ! जल्दी करो ! राणी, क्या समझती है तू, मैं परवाह नहीं करता ! (मेघ गर्जन, तुमुल वर्षा) चली जा ! तू भी गई गंगा ! सोता, अकेला यों छोड़कर ! शाबाश, पहुँचने में ही हैं ; वह रहा द्वार, सैनिको ! अन्धकार की परवाह मत करो। प्रकाश ही प्रकाश है

वहाँ । ओह, वह खुला है, खुला—दरवाज़ा ! धाये जाओ ! मर मिटो सैनिको ! बता दो तुम क्या हो ! जीवन कुछ नहीं है ; कुछ नहीं ! वह रात में दिन का सपना, अँधेरे में प्रकाश वह युद्ध है, युद्ध ! जय नहीं, पराजय नहीं—लड़े जाओ, लड़े जाओ । सैनिको ! यह रात समाप्त होगी, होगी समाप्त मैं कहता हूँ, मैं ! और—और सवेरा—स-वे-रा—(बिजली का कड़कड़ाकर उसपर गिरना)

[ख़ाक हो जाना । मूसलाधार वर्षा का होते रहना ।]

यवनिका